Printed by Chintaman Sakharam Deole at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Home, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Brahmchari Sitalprasad, Editor Jainmitra, Hirabag, Girgaon, Bombay.

भूमिका।

वर्तमान समयमें पाठकोंकी रुचि उपन्यासोंकी ओर दिनपर दिन झुकती जाती है। अनेक लोगोंको तो उपन्यासोंका एक व्यसनसा हो गया है। थाली परोसी हुई रक्खी रहती है, परन्तु वे साहब उसकी ओर देखते भी नहीं है। हमारे जैनभाइयोंमें भी उपन्यासके सैकड़ों भक्त है। परन्तु वे व्यर्थ समय खोने और भिन्नधर्म भिन्नवासनाओंसे वासितहृदय होनेके सिवाय कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते है। ऐसी अवस्थामें उपन्यासोंके द्वारा लोगोंको यदि चरित्रसंशोधनकी तथा धर्मभावकी शिक्षा दी जावे तो सहजहीमें बहुतसा लाभ हो सकता है। इस ही विचारसे तथा संसारका झुकाव किस ओरको हो रहा है, यह देखकर इस उपन्यासके लिखनेका प्रारंभ किया गया।

यह जैनियोंमें सबसे पहला और स्वतन्त्र प्रयत्न है। इसलिये इसमें अगणित दोष दिखाई देंगे। परन्तु "यह एक नई चीज है," इस विचारसे आशा है कि पाठकगण प्रसन्न होंगे और इसमें जो दोष हों उनकी ओर दृष्टि

सुशीला उपन्यास।

मंगलाचरण।

सकल व्रतनिमें अग्रसर, सकल कर्म क्षयकार।
सकल निकल जासों भये, नमों शील शिवद्वार॥

प्रथम पर्व।

अर्द्धरात्रिका समय है, चारों तरफ सन्नाटा छा रहा है। पूर्णमासीका चन्द्रमा पूर्ण रूपसे आकाशके मध्य भागमें तिष्ठता अपनी किरणोंसे समुद्रको क्षोभित कर रहा है। कभी समुद्रकी लहरें किसी चट्टानसे टकरा कर तूफानकी आरं[illegible] उत्पन्न कर देती है और कभी जलचर जीव पानीमेंसे अपना भयानक मुख निकाल ऐसा भाव दिखाते है, मानों हाथसे निकली हुई शिकारकी खोजमें व्यग्र हो रहे है। देखते २ पूर्वकी ओरसे एक घनघोर काली घटाने धीरे २ बढकर चन्द्रमाको ढक लिया, सर्व जगत् अन्धकारमय भासने लगा। मेघराज घोर रूपसे गरजने लगे, और इस श्यामवर्णरूप विश्वव्यापी अन्धकारमें कभी २ चपला अपने चञ्चल चमत्कारकी विचित्र छटा दिखाने लगी। ऐसे समयमें समुद्रके बीचमें एक छोटासा जहाज अपनी मन्दगतिसे गमन कर रहा है, जिसमें एक स्त्री और

दो पुरुष तो प्रधान हैं, बाकी चार पांच सेवक तथा आठ दश मल्लाह हैं; जो बारी बारीसे जहाजको खे रहे है । थोड़ी देरमें पवनने जोर पकड़ा और समुद्रकी लहरोंके झकोरोंसे जहाज डगमगाने लगा और धीरे धीरे जहाजमें पानी भरने लगा । इतने हीमें एक छोटेसे चट्टानसे टकराकर जहाज फट गया और उसके डूबनेमें अब कुछ भी सन्देह नहीं रहा। मल्लाहोंने बड़ी फुर्तीके साथ एक छोटीसी डोंगीमें उस स्त्रीको बिठाया और जल्दी २ खे कर ढोंगीको एक तरफको चलाना शुरू किया। इतनेमें जहाज डूब गया और सब मनुष्य पानीमें गोते खाने लगे।

इन तीन प्रधान व्यक्तियोंमेंसे एक पुरुषका नाम जयदेव, दूसरे का भूपसिंह और स्त्रीका नाम सुशीला था । जयदेव सुशीलाका पति और भूपसिंह जयदेवका मित्र था। जयदेवकी अवस्था अनुमान बीस वर्षके और भूपसिंहकी २५ वर्षके होगी । सुशीला अभी नवयौवना है, उसकी अवस्था लगभग पंद्रह सोलह वर्षकी है। नागिनके समान काले केशोंकी लट मुखके ऊपर छिटक रही है, जिसको देखकर चंद्रमा भी लज्जित हो जाता है । मृगीके समान चंचल नेत्रोंकी शोभा ही निराली है, कुच कलशोंकी शोभा देखकर चक्रवाकयुगल शरमा जाता है, उदरकी त्रिवली त्रिवेणीकी शोभाको धारण कर रही है, केलेके स्तंभ समान जंघावाली—गजगामिनी कोमलांगी, पिकवयनी उस अबलाको एक डोंगीमें बैठाकर कितने ही मल्लाह किनारेकी तरफ ले चले। मार्गमें सुशीला मल्लाहोंसे पूछती है कि जयदेव और भूपसिंह कहां है? तब मल्लाह कह देते

हैं कि पीछेसे दूसरी डोंगीमें आ रहे हैं। मल्लाहोंके वचनको सुनकर कुछ देरके वास्ते सुशीला आश्वासन रख फिर फिर रख पीछेको देखती है, परंतु अपने साथियोंके आगमनके चिह्न न देखकर फिर व्याकुलचित्त हो जाती है। इस तरह नाना विकल्प जालोंमें उलझती हुई, कभी नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाती है और कभी अपने साथियोंके शीघ्र आ पहुंचनेकी आशासे धैर्य्य धारण कर लेती है। डोंगी बड़े वेगसे चली जा रही है। सवेरा होते २ समुद्रके एक तटके निकट जाकर ठहर गई। तब मल्लाहोंने सुशीलाको डोंगीसे उतारकर एक म्यानेमें बिठाया और दरवाजा बन्द करके उसे रवाना किया। इस सब व्यवस्थाको देखकर सुशीला भयचकित हो पूछने लगी कि—यह म्याना कहां जाता है? और हमारे साथी कहां हैं? परन्तु सुशीलाको इन प्रश्नोंका कुछ भी उत्तर नहीं मिला। धीरे २ सुशीलाका कोमल चित्त भयसे कम्पायमान होने लगा, अश्रुधाराकी झड़ीसे सब वस्त्र भींज गये। निदान एक गहरी सांस लेकर हाय जयदेव! हाय जयदेव! कहती हुई सुशीला मूर्छित हो गई। थोड़ी देरमें म्यानेके झरोखोंमेंसे आती हुई ठंडी हवाके लगनेसे होशमें आई, परन्तु फिर भी जयदेव और भूपसिंहकी याद करके रोने लगी। दो पहरके समय म्याना एक बागमें पहुंचा। म्यानेसे उतार कर सुशीला बागके बीचमें बने हुए दुमँजले बंगलेमें पहुंचाई गई। बंगलेके उस दूसरे मंजिलमें बीचोंबीच वह देखती क्या है कि झाड़, फानूस, आईने, पलंग वगैरह हर तरहके ऐशोआरामके सब सामानोंसे सजा हुआ एक खूबसूरत दीवानखाना (कमरा) बना है। दीवानखानेके

चारों तरफ एक दालान है और दालानकी दूसरी तरफ चारों-ओर कई कोठरियां बनी है, जिनमें हर तरहके जरूरतके सामान मौजूद है। वहां पहुंचते ही एक दासी स्नानके वास्ते गरम जल तथा दूसरी एक सुवर्णके थालमें नाना प्रकारके भोजनके व्यंजन ले आई; परन्तु सुशीलाने जयदेव और भूपसिंहकी यादमें भोजनकी ओर झांका तक नहीं। कभी सोचती है कि यह देश किसका है और ये मनुष्य कौन है। कभी विचारती है कि कहीं यह देश मेरे श्वशुरका न हो। क्योंकि बंदरपर म्याने वगैरहकी सब तय्यारी ठीक थी, उस ही प्रकार यहां भी रहनेको मकान तथा भोजनादिक समस्त सामग्री यथोचित है। परन्तु वे दोनो अबतक क्यों नहीं आये ? फिर हृदयमें विचार उठता है कि यदि यह देश हमारा होता, तो समस्त सेवक वगैरह हमारी आज्ञाका पालन करते, परन्तु वैसा कुछ दीखता नहीं है। इस तरह बड़े ही सोच विचारमें पड़ी। भयसे उसका सर्व अङ्ग कापने लगा। सुशीलाके संग सदा कितनी ही सहेलियां रहा करती थीं, परन्तु आज इस बंगलेमें बेचारी अकेली बैठी हुई जयदेव और भूपसिंहकी याद कर करके आसू बहा रही है। इतने ही में अकस्मात् वहां एक मनुष्य आ पहुंचा और कहने लगा-"हे प्रिये। तुम्हारे विरहमें मै इतने दिनोंसे अत्यन्त व्याकुल हो रहा हूं—आज तुम्हारे दर्शनसे मैं अपनेको धन्य समझता हूं। कृपा करके अब शीघ्र ही मेरे हृदयसे लगकर विरह-ज्वालाको शान्त करो—बड़े परिश्रम और सौभाग्यसे यह आजका दिन प्राप्त हुआ है। तुम्हारे विरहमें मैने जो कुछ दुःख सहे है, उनका वर्णन नहीं कर सकता। अब

कृपा करके शीघ्र ही प्रणयदान देकर मुझे कृतार्थ करो। सुशीला इस मनुष्यके चहरेको देखकर और उसकी बातोंको सुनकर न मालूम क्या स्मरण करके भयभीत स्वरसे एक चीख मारकर मूर्छित हो गई

द्वितीय पर्व ।

प्रातःकालका समय है। पूर्व दिशाकी ओर कुछ २ लालिमा दिखाई पड़ रही है। थोड़ी ही देरमें सूर्यदेवका उदय होनेवाला है। जिस प्रकार सम्यक्त्वके प्रादुर्भावसे कुछ पहले करणलब्धिके प्रभावसे मिथ्यात्व दूर भाग जाता है, उस ही प्रकार सूर्योदयके पहले संध्याकी लालिमासे अंधकार विदा हो गया। समुद्रके तटपरके वृक्षोंपर घोंसलोंमेंसे चिड़िया निकल २ कर इधर उधर कुंदक कुंदक कर चुहचुहा रही है और दानेकी खोजमें जाते समय अपने घोंसलोंके द्वारपर अपने बच्चोंकी चोंचसे चोंच मिलाकर निसर्गज मातृकप्रेमका नमूना दिखा रही है। ऐसे समयमें एक तख्तेपर बैठा हुआ जयदेव कभी डूबता कभी उतराता सूर्यके निकलते निकलते समुद्रके किनारे जा लगा। समुद्रतटकी भूमिकी शोभा देखते ही जयदेवका चित्त हराभरा सा हो गया। वह बड़ी शीघ्रताके साथ तख्तेको छोड़कर पास ही एक वृक्षके नीचे एक सुन्दर शिलापर जा लेटा। तीन दिनकी भूख प्यासके मारे सब शरीर और इन्द्रियां शून्य हो गई थीं, अतः वह समुद्रमें बहनेके दुःखोंको याद करके मूर्छित हो गया। समुद्र तटकी ठंडी २ हवा लगनेसे कुछ देरमें होशमें हुआ, तो सुशीला और भूपसिंहकी याद करके जोर जोरसे रोने लगा। थोड़ी देरमें स्वयं ही कुछ धीरज बांधकर चुप हुआ। चुप होते ही निद्राने धर दवाया,

और फिर दो तीन घंटे खूब सोया। आंख खुलनेपर थका हुआ शरीर हलका मालूम होने लगा, परन्तु साथ ही क्षुधाकी वेदनासे चित्त व्याकुल होने लगा। धीरे २ शौच स्नानसे निवृत्त होकर संक्षेपमें सन्ध्यावन्दन सामायिकादि क्रियाकाण्डपूर्वक मनमें पंचपरमेष्ठीका ध्यान करके वृक्षके नीचेसे उठकर आहारकी चिन्तामें एक ओरको गमन करने लगा, परन्तु शरीर शिथिल होनेके कारण थोड़ी दूर चलता है और फिर किसी वृक्षके नीचे बैठकर विश्राम लेता है। इस प्रकार बड़ी कठिनतासे दुपहर तक धीरे २ चल कर समुद्र तटसे दो कोसकी दूरीपर एक छोटेसे ग्राममें पहुंचा। तलाश करते २ जिनचैत्यालयमें पहुंच भगवत्के दर्शन करके बैठा ही था, कि इतनेमें एक वृद्ध पुरुष दर्शनार्थ चैत्यालयमें आया और दर्शन करके जयदेवसे पूछने लगा कि आपका निवास कहां है? और यहापर किस प्रयोजनसे आपका आना हुआ? जयदेवने उत्तर दिया कि मै एक मुसाफिर हूं और मार्ग भूलकर यहां आ निकला हूं। यह सुनके वृद्ध पुरुषने जयदेवसे प्रीतिपूर्वक अपने स्थानपर चलनेको कहा। जयदेवने स्वीकार कर लिया। वृद्ध जयदेवको अपने घर लाया और भोजन कराकर एक झोपड़ीमें चारपाई बिछा दी, जिसपर कई दिनका थका हुआ जयदेव आनंदके साथ फिर सो गया। चार घंटेमें जयदेवकी नींद खुली। चारपाईसे उठ हाथ मुंह धोकर जल पी, वृद्धसे बिदा मांग पश्चिम दिशाको रवाना हुआ। धीरे २ एक मंजिल पूरी करके कञ्चनपुर पहुंचा। शहरके बाहर ही धर्मशालामें उतर कर शौच स्नान संध्यावंदनसे निवृत्त होकर श्रीमंदिरजीमें इष्टदेवके दर्शन

करके बाजारमें शैर करनेको चला। पैसा गांठमें नहीं है, जठराग्नि उद्विग्न कर रही है, सुशीला और भूपसिंहकी यादके मारे चित्त जुदा व्याकुल हो रहा है। कभी इधर जाता है, कभी उधर जाता है और कभी खड़ा होकर आंसू बहाने लगता है। इसकी ऐसी अवस्था देखकर एक जौहरीने अपनी दुकानपर बुलाकर प्रेमपूर्वक पूछा कि तुम ऐसे उदास होकर क्यों इधर उधर घूम रहे हो? जयदेवने उत्तर दिया कि रोजगार-की तलाशमें। फिर जौहरीने पूछा, तनख्वाह क्या लोगे? जयदेवने उत्तर दिया कि रोटी कपड़े। यह बात जौहरीने स्वीकार की और जयदेव भी हर्षपुर्वक उसके पास रहने लगा। जयदेव रत्न–परीक्षामें बहुत निपुण था। उसने धीरे २ जौहरीकी दूकानका सब कामका भार अपने ऊपर उठा लिया। जयदेवकी इस योग्यताको देखकर रतनचंद जौहरी ऐसा प्रसन्न हुआ कि जयदेवको अपने निज पुत्र हीरालालसे भी अधिक प्यार करने लगा। परन्तु हीरालालको यह बात सह्य न हुई, और उसके चित्तमें जयदेवकी ईर्षाका अंकुर जड़ पकड़ गया। वह इस बातकी चिन्तामें लगा कि जयदेवको किस प्रकार घरसे बाहर करूं। रतनचंद कञ्चनपु-रके जौहरियोंमें बड़ा श्रीमंत समझा जाता था। उसकी पहली स्त्री रामप्यारी अपने एक पुत्र हीरालालको छोड़कर दश वर्ष पहले ही परलोकको गमनकर चुकी थी। इस समय रतनचन्दकी उमर ४० वर्षके और हीरालालकी करीब १५ वर्षके होगी। पाच वर्ष पहले रतनचंदका दूसरा विवाह हो चुका है। उसकी दूसरी स्त्री रामकुंवारीकी अवस्था इस समय अनुमान अठारह वर्षकी है। जय-

देव रतनचंदके चौकेमें ही भोजन करता था। इसके स्वरूप और लावण्यको देखकर रामकुंवरि मोहित हो गई। निरन्तर जयदेवका ही ध्यान करने लगी। परन्तु क्या करे ? क्योंकि जयदेव केवल भोजन करने मात्रको कभी रतनचंदके साथ और कभी हीरालालके साथ आया करता था, अतः उसे कभी एकान्तका मौका ही न मिलता था। अकस्मात् एक दिन रतनचंद और हीरालाल शीघ्र ही व्यालू कर आये, परन्तु जयदेवको कार्यवश विलम्ब हो गया और वह व्यालू करनेको सबसे पीछे गया। व्यालू करनेके स[illegible], एकान्त पाकर रामकुंवरिने जयदेवका हाथ पकड़ लिया और उसके साथ कामचेष्टा करने लगी। यह अवस्था देखकर जयदेव चकित हो गया और धीमे स्वरसे विनयपूर्वक कहने लगा "आप मेरी धर्मकी माता हैं—यह अनुचित व्यवहार मुझसे कदापि नहीं हो सकता।" इस प्रकार निराशाके वचन सुनकर रामकुंवारि लज्जित होनेके बदले धृष्टतापूर्वक कहने लगी "यदि तुम मेरी अभिलाषा पूर्ण न करोगे, तो मैं तुमपर उलटा दोषारोपण करके तुम्हारा फजीता करूंगी और तुमको घरसे निकलवा दूंगी।" यह सुनकर जयदेवने गंभीर स्वरसे कहा कि आप जो उचित समझें सो करें; परन्तु मैं यह अधम कार्य कदापि नहीं करूंगा। ऐसा कह बलपूर्वक अपना हाथ छुड़ा घरसे बाहर निकल आया, और दूकानपर जा अपना मामूली काम करने लगा।

इसकी इस निठुराईको देखकर रामकुंवरि हाथ मलती रह गई और अपनी आशाकी पूर्णता दुःसाध्य समझ इसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने

का विचार करने लगी। घरके सब कामकाज यों ही छोड़कर पलंगपर पड़ रही। रात्रिको जब रतनचंद आया, तो फूटफूटकर रोने लगी। इस अवस्थाको देखकर रतनचंद घबड़ाया और रामकुंवरिसे रोनेका कारण पूछने लगा। ज्यों २ वह पूछता था, त्यों २ रामकुंवरि हिचकियां ले लेकर रतनचंदके घबडाहटको बढाती जाती थी। आखिरकार बहुत कुछ समझाने बुझानेपर उसने इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया कि-"यह जयदेव जिसको आपने घरमें रख छोड़ा है और जिसके ऊपर आपका बहुत बड़ा विश्वास है—बडा ही धूर्त और बदमाश है। प्रतिदिन जब आपके साथ भोजन करनेको आता था, तब तिरछी निगाहोंसे मेरी तरफ देखा करता था, परन्तु अब तक आपके भयसे वह कुछ साहस नहीं कर सका। दैवयोगसे आज शामको कुछ कार्यवश ब्यालू करनेके लिये वह सबसे पीछे आया और ब्यालू करनेके बाद एकांत पाकर मुझ अबलापर बलात्कारपूर्वक शील भ्रष्ट करनेकी चेष्टा करने लगा। मेरी चोली फाड़ डाली और पशुकर्म करनेको उपस्थित हुआ। जब मैं चिल्लाई और पडोसियोंको बुलानेकी उसको धमकी दी, तब वह अधम शीघ्र ही भाग गया। अब मैं अत्यन्त लज्जित हो रही हूं—मेरी लाज आपके हाथ है, या तो इस घरमे मैं ही रहूंगी, या वह ही रहेगा। यदि आप इसका ठीक २ प्रबन्ध नहीं करेंगे, तो मैं कुएमे गिर पडूंगी अथवा विष खाकर मर जाऊंगी।" इतना कहकर रामकुंवरि बिलख २ कर रोने लगी।

इस अवस्थाको देखकर रतनचन्द बड़े चक्करमें पडा। वह कभी

अपनी प्रियाकी दुःख भरी बातोंको सुनकर भ्रममें पड़ जाता है और कभी जयदेवकी योग्यता और सौजन्यका स्मरण करके स्तंभित हो जाता है। रतनचंद विचारशील और नीतिनिपुण था। अतः उसकी विचारशक्तिने असली बातको खोज निकाला। वह रामकुंवरिके षड्-यन्त्रको समझ गया। परन्तु मौका देखके उस समय जयदेवको धम-कानेका वचन देकर गुस्सा दबाके रह गया। परन्तु रामकुंवरिको इससे कब संतोष होता था, उसने रतनचन्दको इस विषयमें उदासीन देखकर हीरालालको जयदेवके विरुद्ध भड़कानेका प्रयत्न किया। हीरालाल पहलेसे जयदेवके विरुद्ध था ही, अब रामकुंवरिकी सहा-यता पाकर उसका साहस द्विगुणित हो गया और इस प्रकार वह जयदेवका जानी दुश्मन बन गया। मौका पाकर एक दिन वह आधी रातके समय खड्ग लेकर जयदेवके पलंगके पास जा खड्ग म्यानसे बाहर करके जयदेवपर चलानेको ही था कि इतने ही में पीछेसे आकर किसीने हीरालालका हाथ पकड़ लिया और हीरालाल भय-चकित होकर हाथ पकड़नेवालेकी सूरत देखने लगा।

तृतीय पर्व।

मध्याह्नका समय है। सूर्य अपने पूर्ण प्रतापसे पृथ्वीको संतप्त कर रहा है। पशुपक्षी छायाकी खोजमें इधर उधर व्याकुल हो रहे है। भोले जीव संसारिक दुःखदावाग्निसे भयभीत होकर संसारमें इसी प्रकार सुखकी छाया खोजनेमें आकुलित रहते हैं। तृषातुर पांथजन आसपास जलाशयोंके न मिलनेसे भटकते फिरते हैं। उन बेचा-रोंको उस प्रचंड ग्रीष्ममें किसी बतलानेवालेके भी दर्शन नहीं होते।

सम्यक्त्व सलिलके न मिलनेसे मिथ्यात्व–आतप–दग्ध दूरभव्य संसारमें इसी प्रकार चक्कर खाते रहते है। उस समय उन्हें किसी सम्यग्दृष्टिका समागम भी नहीं मिलता। प्यासे मृगोंके समूह मृग-तृष्णामें जलका संकल्प करके दौड़े जा रहे है, पर बेचारे उस प्रयत्नमें कृतकार्य नहीं होते। दुःखोत्तप्त संसारी जीव विषयोंमें इसी प्रकार सुखका संकल्प करते हैं, और उनके सेवनसे परिपाकमें निराश होते है। तप्त पवनके झकोरोंसे छोटे २ वृक्षोंकी सुकुमार कोंपलें मुरझाकर खिन्न हो रही है। व्याघ्रादिक हिंस्रजीव कहीं झा-ड़ियोंमें पड़े हुए जोरसे हाफ रहे है। उनके भयावने शब्द मार्ग-क्रमण करनेवाले पथिकजनोंको भयभीत कर देते हैं; चारों तरफ सन्नाटा खिंच रहा है।

जंगल बड़ा डरावना है। दूर २ तक मनुष्योंकी आबादी नजर नहीं आती। जिधर देखते है, उधर विस्तृत पर्वतमालायें दूर तक पैर फैलाये पड़ी है।

एक छोटीसी पगडडीपर ऐसे समयमें एक भाग्यका मारा हुआ पथिक चल रहा है। उसके चंचल नेत्र चारों तरफका दृश्य देख रहे है, परन्तु वह न जाने क्यों आंसुओंकी धारा बहा रहा है। वह पथिक अश्रुधाराको दशपांच कदम चलके दुपट्टेसे पोंछ लेता है, परन्तु धारा बन्द नहीं होती।

पाठको! यह और कोई नहीं है, आफतका मारा हुआ बेचारा भूपसिंह है। कई दिनका भूखा प्यासा जयदेव और सुशीलाकी खो-जमें इस जंगलमें आ फँसा है।

जंगलकी विस्तीर्णता देखकर भूपसिंहको उससे शीघ्र पार होनेकी चिन्ता हुई। अतः वह द्रुतगतिसे चलने लगा, और संध्या होनेके कुछ पहले एक नगरमें जा पहुंचा। वहां भोजनादिककी चिन्तासे निवृत्त होकर नगरके बाहर एक सुन्दर उद्यानमें कुछ लोगोंको आपसमें वार्ता करते देखकर उनके पास जा खड़ा हुआ और बात-चीत सुनने लगा। उनके द्वारा जो कुछ सुना उसे भूपसिंहने आँ-खोंसे भी देख लिया। अर्थात् देखा कि एक चतुरंग सेना बड़े वेगसे इस नगरकी ओर चली आ रही है। रथ, सैनिक, पदातियोंका महासमुद्र उमड़ा आ रहा है, भगवती पृथ्वी विपुल धूल उड़ाकर उसका स्वागत कर रही है।

यह खबर विद्युद्वेगसे सुवर्णपुर नगर भरमें फैल गई। वहांके महाराजाने परचक्रसे अपनी रक्षा करनेके लिये अपने सेनापतीको सचेत किया। सेनापति तत्काल ही सेना तयार करके मुकाबिला करनेके लिये सुसज्जित होकर नगरके बाहर पड़ावमें आ डँटा।

इन दोनों चक्रोंमें रणचण्डीको नृत्य करती हुई देखकर घोर हिंसाके दृश्यका अनुमान कर अनुकम्पा—कम्पित सूर्यदेव अस्ताचल की ओटमें हो गये। उनके अस्त होते ही पश्चिम दिशामें संध्याकी लालिमा युद्धस्थलवाहिनी रक्त नदीका नमूना दिखाने लगी। धीरे २ लालिमा विलयमान हो गई और चारोंओर अंधकारने अपना राज्य जमा लिया। मिथ्यात्व उपशमसम्यक्त्वके अस्त होनेसे इसी तरह अपना अधिकार जमाता है। विषयकषायरूपी चोर और व्यभिचारी क्षमाशीलादि रत्नोंकी लूट करनेमें दत्तचित्त होने लगे।

भूपसिंह यह सब चरित्र देख सुनके नगरमें लौट आया। एक सरायंकी कोठरीमें नाना चिन्ताओंमें रात पूरी की और सवेरे प्रातःकालीन क्रियाओंसे निश्चिन्त होकर समर-समाचार पानेकी इच्छासे नगरमें घूमने लगा।

आज सवेरे ही सुवर्णपुरके महाराजका आलीशान दरबार भरा हुआ है। संपूर्ण राज्यकर्मचारी यथास्थान बैठे हुए है। परन्तु किसीके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकलता—ध्यानस्थ हो रहे है। इतनेमें एक सॉड़नीसवारने आकर इस शातिताको भंग की, सब लोग उसकी तरफ देखने लगे। उसने महाराजको अदबके साथ प्रणाम करके एक चिट्ठी दी और वह एक ओर जा खड़ा हुआ। महाराजने वह चिट्ठी मंत्रीको देकर पढ़नेको कहा; मंत्री पढ़के सुनाने लगे। उसमें यह लिखा हुआ था,—

श्रीवीतरागाय नम

स्वस्ति श्रीसुवर्णपुर शुभस्थाने विराजमान राजनीति—नैपुण्यादि विविधगुणसम्पन्न राजेश्री विजयसिंहजी योग्य रामनगर नरेश नाहरसिंहका यथायोग्य बंचना। अपरंच आपको इस विषयमें अनेक वार लिखा गया कि आप अपनी कन्या मदनमालतीका विवाह हमारे कुमार प्रतापसिंहके साथ कर देवें, परन्तु आपने हमारे पत्रोंका कुछ भी सत्कार नहीं किया। आप विचारशील और दूरदर्शी हैं, चाहें तो अब भी चेत सकते हैं। इसलिये एक वार पुन सूचना दी जाती है कि आप मदनमालतीका सम्बन्ध हमारे पुत्रके साथ करनेका शीघ्र ही प्रबन्ध करें। अन्यथा बलात्कारविवाह कराया जावेगा और तब आपको व्यर्थ लज्जित होना पड़ेगा। इत्यलं विस्तरेण।

ज्येष्ठ शुक्ला ६ गुरुवार। } भवदीय—हितैषी नाहरसिंह।

पत्रके सुनते ही विजयसिंहके नेत्र लाल हो गये। भुजा फड़कने·

लगी। भृकुटी वक्र हो गई। क्रोधको संभालके वहां बैठना कठिन हो गया। अतः बुद्धसेन मंत्रीको उत्तर लिखनेकी आज्ञा देकर वे राजभवनको चले गये। मंत्रीने महाराजकी आज्ञानुसार पत्र लिखके मुहर हस्ताक्षर पूर्वक दूतके हवाले किया। साँड़नीसवार पत्र लेकर अपने दरबारमें पहुंचा। सब लोग उत्कंठित हो रहे थे कि देखें क्या उत्तर मिलता है। महाराजने चिट्ठी लेकर मंत्रीको पढ़नेके लिये दी। उसमें लिखा था,—

नमः श्रीजिनाय।

स्वस्ति श्रीरामनगरनरेश नाहरसिंहजी योग्य सुवर्णपुरसे विजयसिंहका यथा-योग्य वंचना। आपका अत्यन्त अविचारितरम्य पत्र मिला। वृत्त अवगत हुए। हमारी मदनमालती कन्याका विवाह आपके पुत्रके साथ नहीं हो सकता। यह सम्बन्ध मुझे सर्वथा इष्ट नहीं है। आपकी बलात्कारकी धमकीका उत्तर युद्धस्थलमें देना ही हम समुचित समझते हैं। इत्यलम्।

भवदीय—

ज्येष्ठ शुक्ला ६ } विजयसिंह।
गुरुवार। }

पत्रके पूर्ण होते ही नाहरसिंह क्रोधके मारे उछल पड़ा। सेना-पतिको उसी समय युद्ध प्रारंभ करनेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही रामसेन सेनापतिकी दशहजार सेना तयार हो गई और कूचका डंका बजते ही रवाना होकर मैदानमें जा डटी।

इधर विजयसिंह महाराजका सेनापति कुंवरसिंह भी गाफिल नहीं था, पांच हजार सेना लेकर पहलेसे ही आ जमा था। अब क्या था, रणदुन्दुभि बजने लगी, दोनों ओरके अस्त्र शस्त्रोंसे मारकाट

होने लगी। दो घंटे तक भयानक युद्ध हुआ। रणभूमि मुर्दोंके मारे स्मशान सी दिखने लगी। इस दो घंटेकी घमसानके बाद अपनी पक्षके बहुत लोगोंको मृत देखकर कुवरसेनकी सेना पीछे हटनेकी चेष्टा करने लगी और उधर प्रतिपक्षियोंका बल आगे बढ़ने लगा। यह देख कुंवरसिंहने अपने शूरवीरोंको ललकार कर कहा, "खबरदार! बहादुरो! यह पीछे हटनेका समय नहीं है—देखो हम थोड़ी ही देरमें विजय पानेवाले है।" स्वामीकी ललकारसे शूरवीरोंने अपना बल फिर आगे बढ़ाया, परन्तु आखिर पीछे हटना पड़ा। शत्रुकी दश हजार सेनाके साम्हने विजय पा लेना खेल नहीं था। दो हजार सेना कट मरी और शेष तीन हजारके पैर उखड़ गये। अतः रामसिंहने ही विजय पाई। यह देखकर नाहरसिंह फूलके कुप्पा हो गया। उसकी सेनामें आनन्दभेरी बजने लगी।

दिन भरके थके मांदे सूर्यदेव अस्ताचलशिखरशायी हो गये। प्रतीची देवीका कपोलमंडल अपने नाथके स्वागतमें मनोहर रक्तिमा-युक्त हो गया। इसे देख कुटिल चिड़ियॉ चुहचुहाहट मचाने लगीं, और कुन्दकलिकाओंने दांत निकाल दिये।

थोड़ी देरमें चारों ओरसे अंधेरा दौड़ आया। गगनमंडलमें पष्ठीका खंडित चन्द्रमा और उसके साथ तारागणोंने अपने २ आसन आ जमाये। दिन भरकी गर्मीसे जिस जगत्‌ने पजावेका रूप धारण किया था, उसमें इन थोड़ीसी मूर्तियोंके कारण शीतलताका संचार होने लगा और शीतल पवनका प्रवाह भी होने लगा। उधर निद्रा देवीका दौरा शुरू हुआ और क्रम क्रमसे सारे जगतने उनकी गोदमें अपना

सिर रख दिया। कुंवरसिंहके लश्करके सैकड़ों योद्धाओंको आज रात्रिभर निद्रा नहीं आई।

चतुर्थ पर्व।

दूसरा दिवस हुआ। प्रातःकाल होते ही दिवाकर महोदय युद्धकांडके दर्शक बनकर आ विराजे। उनके इस निष्ठुर दर्शक कार्यसे प्राचींदेवी अतिशय अप्रसन्न थी, परन्तु ये माननेवाले देवता नहीं थे। देवी लाल २ नेत्र करती ही रह गई, पर ये अपनी इष्टसिद्धिमें नहीं चूके। दोनों ओरके योद्धा अपनी २ प्रातःकालकी क्रियाओंसे निश्चिन्त होकर और सर्व प्रकारसे सुसज्जित हो, स्वामिआज्ञाकी [illegible]ने लगे।

[illegible] [illegible] [illegible]यसिंहकी वारह हजार सेना और नाहरसिंहकी [illegible] हजार [illegible] [illegible]क्षेत्रमे अवतीर्ण हुई, और रणदुंदुभि वजते ही आपसमें [illegible] [illegible] कुंवरसिंह और उसकी सेना कलकी हारसे वहुत लज्जित हो रही थी, इस कारण आज भूखे सिंहकी तरह शत्रुपर टूट पडी। उधर रामसिंह और उसकी सेना कलके घमंडमें जैसी चाहिये, वैसी सावधान नहीं थी, इस कारण सम्मुखकी मार न झेल सकनेसे पीछे हटने लगी। अवसर पाकर कुंवरसेनने सिपाहियोंको उत्साहित करते हुए दवाना शुरू किया। इतनेमें रामसिंहकी फौज भागने लगी। यह देख नाहरसिंहने अपने पुत्र प्रतापसिंहको मददके लिये भेजा। रामसेनकी सेना अपने पक्षकी वृद्धि देखकर लौट पडी और जोशसे मार करने लगी। इस वार प्रतापसिंहके खड्गसे कुंवरसेन घायल होकर धराशायी हो गया। सेनापतिके गिरनेसे

सेना कुछ शिथिल हुई, परन्तु तत्काल ही कुंवर रणजीतसिंहको दश हजार फौजके साथ सहायताको आया देखकर जी तोड़कर लड़ने लगी ।

रणजीत और प्रतापसिंहका एक पहर युद्ध हुआ । अन्तमें लड़ते २ प्रतापसिंहकी तलवार मूठसे निकलकर गिर पड़ी । यह देख रणजीतसिंह भी अपनी तलवार फेंक शस्त्रयुद्ध छोड़ मल्लयुद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ । कुछ समय लड़नेके पश्चात् रणजीतसिंहने प्रतापसिंहको निष्प्रताप कर छातीपर सवार होकर उसकी मुश्कें बांध लीं और कैद कर लिया ।

प्रतापके कैद हो जानेकी खबर पाते ही नाहरसिंह अपनी पचास हजार फौज एक साथ लेकर रणजीतपर आ कूदा और उसे चारों ओरसे घेर लिया । रणजीत दो घंटे तक बड़ी बहादुरीसे लड़ता रहा, परन्तु अन्तमें शस्त्रहीन होकर नाहरसिंहके द्वारा कैद हो गया । प्रतापसिंह छुड़ा लिया गया । नाहरसिंहका लश्कर विजयका डंका बजाता हुआ पड़ावको लौट गया । आज नाहरसिंह और प्रतापके आनन्दका कुछ ठिकाना नहीं है । प्रतापसिंह मदनमालतीके समागमके मीठे २ स्वप्न देखने लगा और नाहरसिंह पुत्रविवाहकी तयारियोंकी उधेड़ बुनमें लग गया ।

पुण्योदयके क्षय ह[illegible]पर प्रतापवानोंकी भी अधोदशा होती है । ऐसा उपदेश देते [illegible] मरीचिमाली सूर्य अस्ताचलकी ओटमें हो गये । संध्यादेवी [illegible]ों ओरसे खिलखिलाके हंस पड़ी । उसकी हास्यप्रभासे थ[illegible]यके लिये संसारमें पीताम्बरसा बिछ गया ।

उधर मानों ताक ही में बैठे थे, इस तरह अंधकार देव आ धमके। आप संसारको दिखलाने लगे कि अन्यायी और जुल्मी राजाओं-का भी अस्तित्त्व कुछ समय पृथ्वीपर रहता है। थोड़ी देरमें गगन-मंडपमें चंद्रज्योत्स्ना और तारिकाप्रभा खिलने लगी।

आज रात्रिको ही विजयसिंहका प्रतापशाली दरबार भर रहा है। सम्पूर्ण मंत्री सरदार योद्धा और नागरिक धीमान् लक्ष्मीवान् यथा स्थान विनयसहित बैठे हुए है। महाराजकी मूर्ति किसी घोर चि-न्तामें मग्न होनेकी साक्षी दे रही है। सब लोग चुपचाप बैठे है। थोड़ी देरमें मंत्रीने महाराजकी आज्ञानुसार घोषणा की कि, जो शूरवीर कल ही नाहरसिंहको जीवित कैद करके रणजीतको छुड़ा लावेगा, उसको मै अपनी कन्या मदनमालती व्याह दूंगा और दहे-जमें आधा राज्य देके उसे संतुष्ट करूंगा। इस घोषणाको सुनके अनेक शूरोंके मन राजकन्याकी ललित लालसासे फड़कने लगे। परन्तु नाहरसिंहके पराक्रमको देखकर ज्वर चढ़ आता था। इस कारण घंटे भर तक दरबारमें सन्नाटा खिंचा रहा—कोई भी साहस करके आगे नहीं आया।

पाठकोंको याद होगा कि भूपसिंह सुवर्णपुरमें ही है। रणसमाचा-रोंके पानेकी इच्छा उसे निरन्तर ही रहती थी। इसलिये आजके दर-बारमें भी वह दर्शकोंके साथ आ खड़ा हुआ [illegible] सभाकी इस मूक अवस्थाको देखकर उससे नहीं रहा गया। [illegible] प्रवेश करके महाराजके रक्खे हुए उक्त घोषणाके बीड़े [illegible]। दरबारके लोग आश्चर्य दृष्टिसे उसकी ओर देखने लगे [illegible] इस क्षत्रिय

पुत्रके साहसको देखकर प्रसन्न हुए। उन्होंने उठके उसे छातीसे लगा लिया और आशीर्वाद देके दरवारको वरखास्त किया तथा मंत्री और सेनापतिको युद्धकी उचित व्यवस्था कर देनेकी आज्ञा देकर राजभवनको चले गये।

बुद्धसेन मंत्री भूपसिंहको अपने साथ ले गये और एक पृथक् महलमें उनके रहनेकी राज्योचित व्यवस्था कर दी। भूपसिंह भावी युद्धके उत्साहकी तरंगोंमें डूबता उछलता हुआ सुखशय्या-पर सो गया।

पञ्चम पर्व।

प्रातःकाल हुआ। सूर्यदेव नाहरसिंहको विजयलाभसे उन्मत्त देखकर व्यंगरूपमें हंसने लगे। अभ्रपटल फटके इधर उधर बिखर गये। परन्तु नाहरसिंहने नहीं जाना कि ये मुझे भावी पराभवकी सूचना देते हैं।

सब लोग प्रातःकालीन क्रियाओंके करनेमें दत्तचित्त हुए, दोनों ओरका सैन्य सुसज्जित हो गया। भूपसिंह पचीस हजार सेनाके साथ युद्धक्षेत्रमें पहुंचा। उसने सम्पूर्ण सेनाको ५ टुकड़ोंमें विभक्त किया। जिनमेंसे तीन टुकड़े तीन दिशाओंमें कर दिये, एक टुकड़ा अपनें साथ लिया और एक अपनी रक्षाके लिये कुछ पीछे रक्खा। उधरसे नाहरसिंहका प्रधान सेनापति रामसिंह दश हजार सैन्यके साथ युद्धको प्रस्तुत था। रणभेरी बजते ही युद्धारंभ हुआ। भूपसिंहने घंटे भरमें रामसिंहकी सेनाको विव्हल कर दिया। वह जिस ओरको अपना धावा करता था, उसी ओरकी फौज काईसी फट जाती

थी। आज नवीन संचालकके मिलनेसे उसकी सेनामें भी अपूर्व उत्साह था। रामसिंहकी सेना हिम्मत हारके पलायनोन्मुख हो गई। यह देख रामसिंह अपना घोड़ा बढ़ाकर भूपसिंहके सन्मुख हुआ और ललकारके बोला—'यदि तुझमें कुछ शक्ति है, तो मेरे सन्मुख आ, देख! मै कैसी शीघ्रतासे तुझे यमपुरका रास्ता बतलाता हूं।' इन शब्दोंके सुनते ही भूपसिंहका शौर्य भभक उठा। वह घोड़ेपरसे कूदके रामसिंहपर जा टूटा। वारको बचाकर उसने रामसिंहको ऐसी ठोकर लगाई कि वह जमीनपर आ रहा। परन्तु फिर संभलके उठ बैठा और लड़ने लगा। दो ही हाथमें रामसिंहकी तलवार बेकार हो गई। तब उसने भूपसिंहपर सेल चलाया, परन्तु भूपसिंह उसे बचा गया, और बदलेमें एक हाथ तलवारका ऐसा मारा कि रामसिंहका सिर धड़से जुदा हो गया।

सेनापतिके गिरते ही सेना भागने लगी, परन्तु पन्द्रह हजार सेनासहित प्रतापसिंहके आ जानेसे फिर जम गई। एक घंटेके युद्धमें प्रतापसिंह कैद हो गया। भूपसिंहकी फिर विजय हुई। अब नाहरसिंहकी स्वयं बारी आई। वह आग बबूला होकर अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ भूपसिंहपर आ टूटा। परन्तु भूपसिंह गाफिल नहीं था। इस समय इशारा पाकर उसकी सेनाके तीन टुकड़ोंने तीनों तरफसे नाहरसिंहको घेर लिया, और पीछेका टुकड़ा भी खास सेनामें आ मिला। घनघोर युद्ध होने लगा। एक प्रहर तक बराबर युद्ध होता रहा। ग्रीष्मसे चिरसंतप्त रणभूमि नररक्तसे प्लवित हो गई। भूपसिंहकी बहादुरी देखकर शत्रुकी सेनाके छक्के उड़ गये। आखिर नाहरसिंहको स्वयं सम्मुख

होना पड़ा । भूपसिंहका एक तलवारका वार ढालको फोड़कर नाहर-सिंहके कंधेमें गहरा घाव कर गया । उसकी कुछ परवाह न करके नाहरसिंहने भूपसिंहपर सेल चलाया, परन्तु उसके पहले ही भूपसिंहका सेल माथेपर जा लगा । जिसकी चोटसे वह तलमलाकर धराशायी होकर भूपसिंहकी कैदमें हो गया ।

मालिकके परतंत्र हो जानेसे सेनाने हथियार डाल दिये और अधीनता स्वीकार कर ली । रणजीतसिंहको वंधनसे छुड़ाकर प्रताप तथा नाहर दोनों कैदियोंको लेकर भूपसिंहने विजय पताका उड़ाते और आनंद दुंदुभी वजाते हुए सुवर्णपुरमें प्रवेश किया । भूपसिंहकी विजय-ध्वनि नगर भरमें गूंजने लगी । उनकी वहादुरीकी यत्र तत्र प्रशंसा सुनाई देने लगी । सुवर्णपुर आनन्द कलरवसे आकीर्ण हो गया ।

महाराज विजयसिंह विजयध्वनि सुनकर स्वयं अगवानीके लिये आये । भूपसिंहने महाराजको प्रणाम किया और रणजीत चरणोंपर गिर पड़ा । महाराजने दोनोंको छातीसे लगा लिया और आनन्दाश्रु-ओंसे उनका अभिषेक किया । भूपसिहको सम्बोधन करके कहा "आजका यह सौभाग्य तुम्हारे निमित्तसे ही प्राप्त हुआ है । इस राज्य की लज्जा आज तुमने ही रक्खी है । तुम्हारे समान हितू दूसरा नहीं है ।" भूपसिंहने इसके उत्तरमें नम्र होके कहा-" महाराज यह सब आपके पुण्यका प्रताप है । " इस प्रकार वार्तालाप होनेके पश्चात् सब लोग अपने २ स्थानपर गये और नाहरसिंह वगैरह कैदखानेमें भेज दिये गये । यह देख दिवाकर महाराजको वैराग्य हो आया । जो कल आनन्दसे फूला नहीं समाता था, वह आज जैलकी हवा खा रहा

है। छिः ऐसा संसार! मुझे नहीं चाहिये! ! ऐसा सोच निशानाथको राज्य देकर अस्ताचलकी गव्हर गुफाओंमें एकाकी विहार करने लगे।

षष्ठ पर्व।

सुवर्णपुरमें घर २ आनन्द मंगल हो रहे हैं, जहां तहां सदावर्त खुल रहे है, जिनालयोंमें मंगलविधानोंकी मनोहर ध्वनि गूंज रही है। सब लोग उज्ज्वल वस्त्राभूषणभूषित गलियोंमें आते जाते दिखाई देते हैं। आज महाराज विजयसिंहकी प्रतिज्ञानुसार मदनमालतीका विवाह भूपसिंहके साथ होगा—प्रजा आज इसी आनन्दसे उत्फुल्लित हो रही है।

मदनमालती भूपसिंहके गुण और रूपको सुनकर पहलेसे ही मुग्ध हो रही थी, आज उसी अभीष्ट युवाके साथ शुभ लग्नमें आर्षविधिपूर्वक उसका पाणिग्रहण हो गया। उस वक्तके मदनमालतीके आनन्दकी सीमाका अनुमान पाठक ही कर सक्ते है।

इधर मदनमालतीके स्वरूप और लावण्यको देखकर भूपसिंहका मन उनके हाथसे ही निकल गया। उन्हें मदनमालतीके विना अब एक घड़ी वर्षसी सूझने लगी, पर क्या करते? लोक बन्धन दुर्निवार है!

विवाह होनेके तीसरे दिन सुहाग रात्रिकी तयारी होने लगी। एक स्वतंत्र भवन ऐशोआरामके सम्पूर्ण सामानोंसे सुसज्जित किया गया और सखीजनोंके साथ मदनमालती उस एकान्त महलमें पहुंचाई गई। जैसे चातक मेघकी आशामें विह्वल हो जाता है, उसी तरह मदनमालती भूपसिंहके दर्शनको विह्वल हो रही है। उसके चंचल नेत्र द्वार-मार्गपर अचल हो रहे हैं, कर्ण आनेकी आहटकी प्रतीक्षामें है और शरीर स्पर्शसुखकी वांछासे वाह्यज्ञान शून्य सरीखा

स्थिर हो रहा है। अब आते है, अब आते है, इस प्रकार अधिक समय बीत गया, किन्तु भूपसिंह नहीं आये। नगरमें शोध खोज होने लगी, परन्तु कहीं भी उनका पता न लगा। सब लोग इस प्रकार भूपसिंहके एकदम गायब हो जानेसे बिकल होने लगे। इतनेमें एक दासीने आकर मदनमालतीके हाथमें एक पत्र दिया। वह उसे खोल कर बाचने लगी। न जाने उसमें क्या लिखा हुआ था कि उसको वाचते ही मदनमालती एक गहरी सांस खींचकर बेहोश होगई।

सप्तम पर्व।

वर्षाऋतुका समय है। आकाशमें चारोंओर मेघपटल उथल पथल मचा रहे है, छोटी २ बूंदें पड़ रही है, हरियालीके सब्ज गलीचेपर पानीके कण एक विलक्षण शोभाको उत्पन्न कर रहे है। विरही जनोंके हृदयमें लगकर झंझावायु तीरका काम कर रही है और पीछेसे मयूरोंकी कूक तो गजब ही ढा रही है। इधर पपीहाका पी! पी! शब्द विरहिणी मुग्धाओंको उद्विग्न कर रहा है। उनके हृदयमें इन दो शब्दोंसे न मालूम कैसे २ आशा—निराशा संयोग—वियोग, अनुनय—अभिमान आदि विकारोंके विचित्र चित्र खिंच रहे है।

दिनके तीन बज चुके है, परन्तु सूर्यदेवका आसमानमें पता नहीं है। उनकी दो चार किरणें कभी २ किसी अभ्रपटलमेंसे फूटकर बड़ी मनोहर लालिमा फैलाकर तत्काल ही छिप जाती है। कुलबालाओंकी प्यारी हास्यरेखा अरुणरुचिर ओठोंके बाहर बहुत समय तक नहीं ठहरती।

हम अपने पाठकोंको इस समय बिलासपुरके समीपवर्ती एक उद्यानमें लिये चलते हैं। उद्यानकी शोभा वर्णनीय है, परन्तु हम आज उसकी सौन्दर्य कथामें उलझकर व्यर्थ समय नहीं खोना चाहते, और उद्यानके उस हिस्सेमें पैर रखते है, जहां रूपकी एक अपूर्व हाट लग रही है। वहां एक नवयौवना बाला कोकिलकंठविनिन्दित मनोहर स्वरसे मल्हार गाती हुई झूला झूल रही है। और उसके चारों ओर खड़ी हुई अनेक कमनीय कामिनियां उसके गाने तथा झूलनेमें मदद दे रही है। उद्यानमें चारों ओर सन्नाटा खिंच रहा है, मानो उद्यानके सम्पूर्ण जीव जन्तु उस गान्धर्व अभिनयमें सर्वथा मग्न हो रहे है। केवल दो चार झिल्लियां इधर उधरसे अपनी तान लगा रही है। शायद ये अपने कंठोंको मनोहर समझती है, इसलिये विना आह्वान ही दम भर रही हैं।

पाठक ! आज बालिकाओंका प्यारा तीनका त्योहार है। इसलिये यह विलासपुरके महाराजकी लाड़िली कन्या अपनी समवयस्क सहेलियोंके साथ इस उद्यानमें दोला-क्रीड़ा कर रही है। बुद्धिमान् पिताने कन्याकी रक्षाके लिये थोड़ीसी सेना भी भेज दी है, जो समीप ही के एक जलाशयके किनारे सचेत और सन्नद्ध है।

विलासपुरके महाराजका नाम विक्रमसिंह है। उनकी महाराणी मदनवेगाके इस एकलौती कन्याके अतिरिक्त, जिसका नाम सुशील [illegible] संतान नहीं है। सुतरां सुशीलापर राजदम्पतीका असा-
चंचल नेत्र द्वार-मार्ग भव है। इसके अतिरिक्त सुशीलाके रूप और
प्रतीक्षामें है और शरी[illegible] और सम्पूर्ण राजपरिवारको मुग्ध कर लिया है।

सुशीला जिस समय ६—७ वर्षकी थी, उस समय अध्यापिकाने उसकी बुद्धि-प्रखरताको देखकर सरस्वतीकी उपाधि दी थी, और अब तो सुशीला यथार्थमें सरस्वती है। न्याय, व्याकरण, धर्मशास्त्रादि विविध विद्याओंमें वह असाधारण बुद्धि रखती है। अच्छे २ विद्वान् उसके पांडित्यको देखकर चकराते है। इस समय बालिका सुशीलाने यौवनावस्थामें पदारोपण किया है, उसके अंग प्रत्यंगोंमेंसे यौवनकी प्रभा फूट रही है। सुशीलामें केवल रूप तथा विद्या ही नहीं है, किन्तु उसने लोकोत्तर शीलव्रतको धारण करके 'सोनेमें सुगंध' की कहावत चरितार्थ की है। वह जानती है कि स्त्रियोंके सम्पूर्ण गुणोंकी प्रतिष्ठा इसी शीलव्रतसे है।

इस उद्यानके साम्हनेसे ही एक छोटीसी सड़क विलासपुरकी ओर चली गई है। उसपरसे चलनेवालेको यह दोलाक्रीड़ाका अभिनय अच्छी तरह दीख सक्ता है, परन्तु हम देखते है कि आज उस सड़कपरसे कोई आता जाता नहीं है। उद्यानके बीचोंबीचमें एक छोटासा परन्तु सुन्दर बंगला बना हुआ है।

परम सुशील सुशीला अपनी सहेलियों सहित दोलाक्रीड़ामें मग्न हो रही है। उसे खबर नहीं है कि मेरी यह सरल बालक्रीड़ा किसीके हृदयमें कुछ कुटिलताका असर कर रही है। वह यह भी नहीं जानती कि इस उद्यानमें मेरे और मेरी सखियोंके सिवाय और भी कोई है। पाठक! इस समय उस सड़कपर एक युवा घोड़ेको रोके खड़ा हुआ है और अपने अनिमिष नेत्रोंसे सुशीलाको देख रहा है। जैसे योगीश्वर परम समाधिके समय आत्मध्यानमें तल्लीन हो जाते है, ठीक उसी

तरह वह नवयुवक सुशीलाके ध्यानमें मग्न है। सुशीलाके अलौकिक रूप-लावण्यको देखकर उसका मन उसके हाथसे चला गया है। जान पड़ता है वह मुग्ध उसीके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा है। परन्तु क्या गया हुआ मन फिरके आता है?

युवाकी यह अवस्था मेघ महाराजसे देखी नहीं गई, वे लगे मूसल धार पानी बरसाने। अब क्या था? रंगभंग हो गया। सुशीला अपनी सहेलियोंसाहित बागबंगलेमें जा छुपी। इधर नवयुवकके ध्यानकी कली खुल गई। उसकी आंखोंके साम्हने अंधेरा छा गया। उधर सायंकाल भी समीप आया, इसलिये सुशीला सखी जनोंके साथ रथपर सवार होके महलोंकी ओर चल पड़ी। रक्षकसेना रथके आगे पीछे हो ली और युवा किंकर्तव्यविमूढ़की नाईं देखते ही रह गया। कि थोड़ी देरमें घोर अंधकारने आकर समग्र पृथ्वीको काली चादरसे ढक दिया।

अष्टम पर्व।

सूर्यपुरके एक राजप्रासादमें एक कमरा ऐशोआरामके हर तरह के सामानसे सजा हुआ है और उसके बीचोंबीच एक पलंग बिछा हुआ है। उसपर पड़ा हुआ एक युवा करवटें बदल रहा है। उस के आखोंसे आंसुओंकी धारा बह रही है। बदनमें ज़ौफ आगया है, लबोंपर खुश्की और चेहरेपर पीलाई झलक रही है। पलंगके पास ही कुर्सीपर एक दूसरा युवक बैठा हुआ है। दोनोंमें इस प्रकार बातचीत हो रही है,—

"मित्र बलवन्तासिंह! सुशीला प्यारी, सुशीलाका वियोग अब सहा नहीं जाता। हाय! वह भोली २ सूरत अवतक आंखोंके सा-

म्हने नृत्य करती है। यदि शीघ्र ही उसके मिलनेका उपाय न होगा तो प्यारे मित्र ! यह प्राणपखेरू इस तन पजरमें बहुत समय तक नहीं ठहर सकेंगे।"

"अजी उदयसिंहजी ! आप यह क्या कह रहे है ? होशको ठिकाने लाइये ! आप राजपुत्र है, आपके लिये एक दो क्या दश सुशीला आ सक्ती है। क्षत्रियपुत्र क्या स्त्रियोंके लिये प्राणपखेरू उड़ाते फिरते है ? छिः धैर्य्य धारण कीजिये। इस तरह आतुरतासे कुछ नहीं होगा। मुझे उसका पता ठिकाना ठीक २ बतलाइये। मै अभी जाता हूं और कार्य सफल होनेकी चेष्टा करता हूं।"

"(उछलके और खुश होके) क्या आप सचमुच मेरी सुशीलासे मुझे मिला देंगे ? अच्छा तो लीजिये, उसका पता ठिकाना मेरी इस नोटबुकमें लिखा है, आप भी लिख लीजिये।"

"बहुत अच्छा" कहके बलवन्तसिंहने सुशीलाका पता लिख लिया और वह उसी समय वहांसे रवाना हो गया। उसके चले जानेपर उदयसिंह फिर वियोगाग्निमें जलने लगा।

पाठक जान गये होंगे कि यह वही युवा है, जो सुशीलाको विलास पुरके उद्यानमें झूला झूलती हुई देखके ध्यानस्थ हो रहा था। सूर्यपुरके राजा निहालसिंहका पुत्र है। इसका नाम उदय होता है, और वह दूसरा युवक जो बातचीत कर रहा था इसका भाग नहीं है। मित्र बलवन्तसिंह है। .सुखके कारणभूत

उदयसिंहकी अवस्था मित्रके जाते ही औ

उठी। कुसुमशरने अकेला पाकर उसकी ुष्यजन्मको यदि भोगोंमें नष्ट उसके साथ सुकोमल पुष्पशय्या शूलक संयोग दुर्लभ हो जायगा। परन्तु

समीर और चन्दनलेप ग्रीष्मकी उष्ण लूकों और अग्नितापसे भी अधिक दुखदायी प्रतीत होने लगा ।

अहो ! यह जीव रंचमात्र विषय सुखकी लालसासे कैसे २ उग्र दुःख भोगता है । परन्तु जिन्हें इसने सुख मान रक्खा है, उन विषयोंमें वास्तविक सुखका नाम निशान भी नहीं है। जो दुःख अत्यन्त क्रूर व्याघ्रादि जीवोंके कारणसे होता है, उससे भी अधिक दुःख इस विषयशत्रुके संसर्गसे सहने पड़ते है ।

अत्यन्त रुष्ट राजा जो कुछ दण्ड दे सकता है, विषयशत्रुका दण्ड उससे कहीं वढकर है—अतिरुद्र कालकूटके विपाकसे भी विषयोंका विपाक अति भयानक है । इस विषयशत्रुजनित दुःखोंको भोगनेकी अपेक्षा कालके गालमें प्रवेश करना उत्तम है । धंदकती हुई अग्निकी दाह भी विषयदाहके साम्हने झकमारती है । आशीविषजातिके सर्पोंके विषसे भी इन विषमविषयोंका विष उग्रतर है । जिन भोगोंसे वड़े २ इन्द्र और चक्रवर्ती भी तृप्त नहीं हुए; उनसे हीनपुण्य इतर मनुष्य किस प्रकार तृप्त हो सकते है ? जिस नदीके प्रवाहमें वड़े २ हुआत्त हस्ती भी वह गये हैं, उसमें विचारे शशककी क्या व्यवस्था के आंखज्ञिन विषयोंके आसेवनसे वड़े २ ऋद्धिधारी देव भी सुखलाभ ल्नोंपर खुश्क। उन विषयोंके आसेवनसे यह विचारा क्षुद्र मनुष्य कुर्सीपर एक दूसर।ह्ोगा ? जिस केशरीसिंहके सन्मुख वड़े २ मदोन्मत्त हो रही है,— जाते है; उस क्रूरसिंहके साम्हने पददलित

" मित्र वलवन्तासिह ! यदि नदियोंके जलसे समुद्र तृप्त हो जावे, सहा नहीं जाता । हाय ! वह ने तो कदाचित् यह प्राणी भी विषयों-

से तृप्त होसक्ता है। परन्तु जब यह जीव भोगभूमि और स्वर्गोंके सुखसे ही तृप्त नहीं हुआ तो काने गन्नेके समान मनुष्यजन्मके सुखोंसे किस प्रकार तृप्त होसक्ता है? समुद्रके जलसे जिसकी प्यास नहीं बुझी, तो भला छोटे २ क्षित्यंकुरोंकी ओससे उसकी प्यास किस प्रकार बुझेगी?

जो प्राणी इस विषयशत्रुके प्रेरे अपने शरीर तथा कुटुम्बके अर्थ घोर पापाचरण करते है, वे नरकोंकी घोर वेदनाके पात्र होते है। यहा यह प्राणी घोर पापाचरणसे जिस द्रव्यका सम्पादन करता है। उस द्रव्यका परिजन पुत्र कलत्रादि सब उपभोग करते है। परन्तु जब उस घोर पापके फल भोगनेका समय आता है, तब उस दुःख का बटवारा करनेको कोई पास भी नहीं फटकता है। नरकादिकके दुःखोंकी कथाको रहने दीजिये, यहींपर चोर जिस धनको चोरी करके-लाता है, उसका उपभोग तो उसके समस्त कुटुम्बीजन करते है, परन्तु जेलखानेकी हवा उस विचारे अकेलेको ही खानी पड़ती है। परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है कि यह सब बात प्रत्यक्ष देखता हुआ भी यह जीव पापाचरण उपेक्षित नहीं होता।

प्यारे पाठको! विषयभोगोंसे विरक्त महात्माओंको जो सुख होता है, इन्द्र और चक्रवर्तियोंका विषयजन्यसुख उसके अनंतवें भाग नहीं है। इस कारण यदि सच्चे सुखकी वांछा है, तो शिवसुखके कारणभूत धर्मका साधन करो।

बड़े कष्टसे प्राप्त हुए कल्पवृक्ष सदृश मनुष्यजन्मको यदि भोगोंमें नष्ट कर दोगे तो फिर इस मनुष्यजन्मका संयोग दुर्लभ हो जायगा। परन्तु

यदि यह मनुष्य जो दीर्घ संसारके कारणभूत विषम विष समान विनश्वर काम भोगोंको छोड़ देता तो नरकभूमिको घोर दुःखोंको किस प्रकार प्राप्त होता ? कामिनीसंभोगमें जो इस जीवने सुख मान रक्खा है, वह भी इसका भ्रम है। क्योंकि जब श्वान हड्डीको मुखमें डालकर चूसता है, तब हड्डीकी तीक्ष्ण नोंकसे छिद कर उसके मुखमेंसे ही रुधिर निकलता है। जिसके आस्वादनसे वह अपनेको सुखी मानता है, ठीक वैसी ही अवस्था कामिनी संभोगमें है। कामिनीसंसर्गसे निजतनुजनित-स्वेद विशेषके निकलनेसे ही यह प्राणी अपनेको सुखी मानता है।

यदि वास्तवमें देखा जावे तो संतोषके समान जगत्में कोई सुख नहीं है, और तृष्णाके समान कोई दुःख नहीं है। इस कारण जिन महानुभावोंने इन विषयोंमें तृष्णाका त्याग करके दिगम्बरीय दीक्षा का अवलम्बन किया है, वे ही धन्य हैं। और जिन्होंने मदमदनकषाय शत्रुओंके वशीभूत होकर विषयोंका त्याग नहीं किया और नरकादिकके घोर दुःखोंसे भयभीत नहीं हुए तथा संसार शरीर और भोगोंसे जिनको विरक्तता नहीं हुई उनका मनुष्यजन्म पाना ही निष्फल है।

स्वजन, पुत्रकलत्र, मातापिता, भाईमित्र, धन, यौवन, बल, वीर्य, आयु और शरीर इत्यादि समस्त सामग्रीको चपला चमत्कारवत् क्षणभंगुर देखता हुआ भी यह मूढात्मा आत्मकृत्यसे विमुख हो रहा है—यह बड़े दुःखकी बात है। इस कारण जो सच्चे सुखकी अभिलाषा है, तो संसार मार्गसे विरक्त होकर मोक्षमार्गमें रमण करो। विषयोंका सङ्ग छोड़कर ज्ञानका सङ्ग करो, युवतिसुखको छोड़कर शमसुखका अवलम्बन करो। धर्म्म कृत्यको दैवके ऊपर छोड़कर

पौरुषहीन हो जाना, कदापि न्यायसंगत नहीं हो सकता । यत्न करनेपर भी यदि कार्यसिद्धि नहीं होय तब ही दैवापराध मानना उचित है । इस कारण सुखके वांछकोंको उचित है कि निरंतर भगवत्पादारविन्दमें भक्तिपूर्वक आत्मतत्त्वकी भावना भावै । विषयसुखसे विरक्तिपूर्वक समस्त सत्त्ववर्गमें मित्रता धारण करें । शास्त्राभ्यास कषायोंके उपशम और संयमके धारण करनेमें अपनी शक्तिका उपयोग करें । और दूसरोंके दोष सम्बन्धमें मूकताका अवलम्बन करें ।

नवम पर्व ।

पहर भर दिन चढ़ चुका है । पथिक जन मार्गक्रमण कर रहे है। छोटे २ व्यापारी आसपासके ग्रामोंसे नाना प्रकारकी व्यापारी वस्तुयें घोड़े बैलों तथा गाड़ियोंपर लादे हुए गॅवारीगीत गाते हुए नगरकी ओर जा रहे है । मार्गके दोनों ओर छोटे २ बरसाती जलाशय भर रहे हैं । उनमें मेंडकोंने अपना बाजार गर्म कर रक्खा है, वृक्षलतापर इस समय विशेष सजीवता दृष्टिगोचर होती है । उनमें छिपी हुई झिल्लियोंकी झनकार ग्रामवासियोंको बड़ी प्रियकर लगती है।

इस समय एक युवती भगवा वस्त्र परिधान किये हुए **विलासपुर** की ओर जा रही है। उसके कंधेपर एक भिक्षाकी झोली और हाथमें एक सितार है । कभी २ मौजमें आकर वह सितारके एक दो तारों पर ठोकर लगा देती है, तो पथिकजन आशान्वित नेत्रोंसे उसकी ओर देखने लगते है । यह युवती वस्त्रभूषणादि तथा रंगढंगसे जोगिन सी जान पड़ती है, इसलिये हम इसे कुछ समय तक जोगिन ही कहेंगे ।

जोगिन मार्गातिक्रमण करके विलासपुरमें पहुंची और नगरमें दो चार गलियोंमें थोड़ी देर घूमघामकर सुशीलाके महलके नीचे पहुंचकर गाने लगी। जोगिनने ऐसी बढ़ियां ठुमरी गाई कि सुशीला उसको सुनकर चकित हो गई। उसने शीघ्र ही एक लौंडीको भेजकर जोगिनको महलमें बुला लिया और गाना सुननेकी इच्छा प्रगट की। आज्ञा पाते ही जोगिनने दो चार उत्तम २ ठुमरी सुनाईं। सुशीला अतिशय प्रसन्न होकर इसे एक अशरफी देने लगी। परन्तु जोगिनने अशर्फी नहीं ली। झुकके प्रणामकर बड़ी बेपरवाहीके साथ खाली हाथ महलके बाहर हो गई।

जोगिनकी इस निष्प्रहताको देखकर सुशीला और उसकी सखियां चकित हो रहीं। परन्तु रेवती नामकी मुख्य सखीने उसकी चाल ढालपर एक भेद भरी विलक्षण दृष्टि फेंकी, और उसके चले जाने पर उसके विषयमें बड़े गौरसे विचार करने लगी। इसको इस प्रकार गंभीर विचारमें डूबी हुई देखकर सुशीलासे नहीं रहा गया। वह पूछ बैठी—

सुशीला—क्यों रेवती! आज तू किस विचारमें डूब रही है?

रेवती—कुछ नहीं, ऐसे ही कुछ सोच रही थी।

सुशीला—आखिर उसका कुछ नाम भी तो होगा!

रेवती—मैं इस जोगिनके विषयमें ही कुछ विचार रही थी।

सुशीला—क्यों इसपर भी कुछ सन्देह हो गया क्या?

रेवती—हां! मेरी समझमें इस जोगिनके वेषमें कुछ गुप्त रहस्य है।

सुशीला–(आतुरतासे) सो क्या ?

रेवती—जान पड़ता है, कोई पुरुष जोगिनके वेषमें किसी गुप्त मतलबसे यहा आया था ?

सुशीला–रेवती ! तुझे बैठे बिठाये खूब मतलब सूझा करते है । भला ! तुझे कैसे मालूम हुआ कि वह पुरुष था ?

रेवती–उसके रंगढंग कुछ ऐसे ही नजर आते थे । परन्तु कुछ चिन्ता नही है, जब वह एक बार आया है, तो फिर भी आवेगा । अबकी बार ऐसा छकाऊंगी कि वह भी याद करे ।

इस प्रकार कहकर रेवती वहासे उठ खड़ी हुई और जोगिनके विषयमें छानबीन करने लगी । उधर जोगिन महलसे निकलते ही छूमंतर हो गई । फिर विलासपुरमें कहीं उसकी शकल नजर नहीं आई ।

दशम पर्व ।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही सुशीला सुखशय्यासे उठकर बैठी हुई पंच-नमस्कारमन्त्रका स्मरण कर रही थी कि अचानक उसकी नजर पलंगपर पड़े हुए बंद लिफाफेपर पड़ी । जिसपर उसका नाम और राजकुमार उदयसिंहकी मुहर लगी हुई थी । उसे देखते ही वह चौक पड़ी, और घबड़ाकर रेवती ! रेवती ! इस प्रकार जोरसे पुकारने लगी । सुशीलाके जीवनमें यह एक नवीन और अस्वाभाविक घटना थी ।

सुशीलाकी घबड़ाई हुई आवाज सुनकर रेवती दौड़ती हुई आई

और बड़ी शीघ्रतासे बोली, 'क्यों बाई! तुम इतनी घबड़ा क्यों रही हो?'

सुशीला–देख तो सही! बात ही घबड़ानेकी है, इस लिफाफे को तो देख!

रेवतीने सुशीलाके हाथसे लिफाफा ले लिया, और खोलकर आद्योपान्त पढ़ चुकनेपर फिर सुशीलाके हाथमें दे दिया। पत्रमें इस प्रकार लिखा हुआ था:–

श्री

प्रिय सुशीले! जिस दिनसे तुम्हारी मनोहर मूर्तिको उस बागमें झूलते हुए देखा है, उस दिनसे मेरा मन मेरे हाथमें नहीं रहा है। रात्रिदिन तुम्हारी त्रिभुवनमोहिनीमूर्ति मेरे नेत्रोंके साम्हने झूलती रहती है। क्या इस समय जैसे तुम मेरे हृदय और नेत्रोंके सन्मुख विराजमान रहती हो, उस तरह कृपाकर मेरे शरीरके समीप भी बैठोगी? हाय! तुम्हारे शीतल शरीरकी वियोगज्वाला मुझे झुलसाये डालती है, क्या उसकी शान्ति करके अपनी स्वाभाविक कोमलताका परिचय दोगी? अधिक क्या लिखूं। तुम स्वय बुद्धिमती हो। इत्यलम्।

श्रावण सुदी १४. } प्रणयाभिलाषी–उदय।

इस पत्रको पढकर सुशीलाको सन्नाटा खिच गया। रेवतीके नेत्र क्रोधके मारे अरुण होगये और ओंठ फड़कने लगे। कोमलाङ्गी रेला रेवतीकी उस समयकी वीरमूर्ति देखने योग्य थी। वह हाथ सुश २ के सुशीलासे कहने लगी, "क्या करूं, अबकी बार गफलरेवतीारी गई, लेकिन फिर भी कुछ चिन्ता नहीं है। अबकी बार रहस्य है। ामजादेको सजा दिये विना नहीं रह सक्ती।" ऐसा कहकर

अपने प्रयत्नोंमें दत्तचित्त हुई। भोली सुशीला इस मामलेको कुछ न समझ सकी और चकित नेत्रोंसे देखती ही रह गई। रेवतीसे कुछ विशेष वार्तालाप न कर सकी।

हमारे दूरदर्शी पाठक समझ गये होंगे कि यह सब कार्यवाही बलवंतसिंहकी है। जोगिनके वेषमें यही बलवन्त सुशीलाके महलोंमें भेद लेनेको आया था। और दूसरी बार उदयसिंहकी मुद्रायुक्त चिट्ठी भी सुशीलाके पलंग तक इसीने पहुंचाई थी। आजकल उदय-सिंह भी विलासपुरमें आगया है। दोनों एक कोठरी किरायेसे लेकर गुप्त वेषमें नगरमें रहते हैं, और अपने षड्यन्त्र चला रहे हैं।

आधी रात हो चुकी है, चारोंओर अंधेरा छा रहा है, मेघोंने आसमानको सर्वथा ढंक रक्खा है। अतः चेष्टा करनेपर भी कहीं कुछ नजर नहीं आता। बीच २ में उस अविरल अंधकारको फाड़कर बिजली अपनी चमक दमक दिखाकर लुप्त हो जाती है। ऐसी डरा-वनी रात्रिमें बलवन्तसिंह और उदयसिंह दोनों सुशीलाके महलके पीछे आये, और एक कमन्द लगाकर खिड़कीके मार्गसे सुशीलाके शयनगृहमें पहुंच गये।

सुशीला एक सुन्दर सुसज्जित पलंगपर दुशाला ओढ़े सो रही है। उसके मनोहर मुखमंडलका कुछ भाग उघड़ रहा है। उसपर केश-कलापोंकी एक लट पड़कर 'लोभतें अमियके अहि चढ्येचन्द्र पै' की कल्पना उद्भूत कर रही है। उदयसिंहका हृदय आनन्दसे उत्फुल्ल हो गया। सदसत्का विचार किये विना ही वह उस सरल

निष्पाप-निष्कलंक कन्याको हाथ पकड़के उठाने लगा, परन्तु उठा नहीं सका। सुशीलाका बदन सर्वथा शीतल और ढीलासा देखते ही वह चौक पड़ा, और बलवन्तको नजदीक बुलाके कहने लगा।

उदय-बलवन्त! देखो तो सही! इसका बदन ठंडा क्यों पड़ गया है?

बलवन्त-(नाड़ीपर हाथ रखके) अरे! यहां तो नाड़ीका भी पता नहीं है।

उदय-और ये देखो तो स्वास भी तो नहीं है, परन्तु इसके शरीरमेंसे सुगन्ध बड़ी मजेदार आरही है।

बलवन्त-ठीक कहते हो, परन्तु मुझे तो इसमें कुछ संदेह होता है।

उदय-ऐं! और मेरा मस्तक क्यों घूमता है?

इतना कहते २ उदयसिंह जमीनपर ढुलक पड़ा। और उसके कुछ ही पीछे बलवन्तने भी अपने पैर फैला दिये, दोनोंकी चेतना विदा हो गई!

एकादश पर्व।

प्रातःकालका समय है। उदयाचल पर्वतकी ओटमेंसे निकलकर ज्यों ही सूर्यदेवने झुकके देखा कि अंधकार महात्मा रफूचक्कर हुए। रहस्य ने ने लौटके पीछेको देखा भी नहीं। उनके साथ ही चोर, व्यभिचारी

और उलूक भी नौदो ग्यारह हो गये । उधर मरीचिमाली सूर्य गगनमंडपके सिंहासनपर आ विराजे । उनके आते ही अराजकतासे सत्रस्त संसार प्रसन्नचित्त दिखाई देने लगा, और लोग अपने २ इष्ट कार्योंमें दत्तचित्त हुए—राजमार्गोंपरसे आने जाने लगे ।

इस समय विलासपुरके राजभवनके एक बड़े कमरेमें राजा विक्रमासिंहका दरबार लगा हुआ है । दर्बार मामूली है, जिसमें मंत्री सेनापति आदि खास २ आदमी यथास्थान बैठे हुए हैं । एक ओर रेवती हाथ जोड़े निम्नदृष्टि किये हुए खड़ी है । साम्हने चार सिपाही हथकड़ी बेड़ियोंसे विवश दो कैदियोंको लिये हुए खड़े हैं और उनके हाथमें नंगी तलवारें चमक रहीं हैं । कैदी बड़ी घृणाके साथ रेवतीकी ओर देख रहे हैं । इसी कमरेकी दाहिनी ओर एक चिक पड़ी हुई है, उसके भीतरसे रानी मदनवेगा और कन्या सुशीला इस दृश्यको देख रही है । दरबारमें मानसिक उछल कूदके सिवाय हर तरहसे शान्तिता विराजमान है। थोड़ी देरमें महाराजने रेवतीकी ओर देखके पूछा, क्यों रेवती इन लोगोंके विषयमें तू क्या कहना चाहती है ?

रेवती—महाराज ! आज रातको श्रीमती सुशीलाके महलमें मैंने इन दोनोंको गिरफ्तार किया है। ये लोग जिस बदनियतसे महलमें घुसे थे, उसे मैं पहलेसे जानती थी; इस कारण सब प्रकारसे सचेत थी। यही कारण है कि आज मैंने बड़ी सरलतासे महाराजके चरणोंके प्रसादसे इन्हें गिरफ्तार कर लिया । मैं आशा करती हूं कि इनकी गुस्ताखीका इन्हें उचित दंड दिया जावेगा ।

म०—(रेवतीसे) ठीक है, इनकी करतूतोंका फल इन्हें चखाया जावेगा। (मंत्रीसे) शूरसेन, इन महात्माओंसे इनका परिचय तो पूछो ?

शू०—(एकसे) क्यों तुम्हारा नाम क्या है ?

एक—कुछ नहीं।

शू०—(दूसरेसे) और तुम्हारा ?

दू०—सब कुछ।

रेवती—महाराज ! इससे कुछ लाभ नहीं निकलेगा। ये इस तरह कुछ नहीं बतावेंगे। मै इनका सब भेद जान चुकी हूं। इनमेंसे ये (एककी ओर इशारा करके) तो सुवर्णपुरके महाराज निहालसिंहके सुपूत उदयसिंह है और ये (दूसरेकी ओर इशारा करके) इन्हीके मित्र बलवन्तसिंह है। दोनोंने ही बड़े अच्छे कार्यपर कमर कसी है। बड़ोंकी शोभा इसीमें है।

म०—(मंत्रीसे) अच्छा तो इन्हें अब होशियारीसे कैदखानेकी हवा खिलाओ। महलोंकी गन्दी हवा खाते २ बेचारोंकी नाकों दम आ रही होगी।

शू०—बहुत अच्छा।

इतना कहकर शूरसेन दोनों कैदियोंको अपने साथ लेकर वहांसे उठ खडे हुए, और उनको बन्दोबस्तके साथ कैदखानेमें भेज दिया। इसके बाद दरबार बरखास्त कर दिया गया। महाराज अन्तःपुरमें चले गये। सुशीला अपनी सखी रेवतीके साथ अपने महलको चली गई।

द्वादश पर्व ।

रात्रिके १० बजे है । महाराज अपने शयनागारमें महाराणी मदनवेगाके साथ एक सुसज्जित पलंगपर तकियेके सहारेसे बैठे हुए एक बड़े गंभीर विषयमें बातचीत कर रहे है ।

मदनवेगा—महाराज ! सुशीला निरीबालिका नहीं रही है—यह मैं आपसे कई वार कह चुकी हूं; परन्तु खेद है कि आप ध्यान नहीं देते । हम स्त्रियोंकी बुद्धि ओछी गिनी जाती है, इसलिये हमें आपके अधिकारमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये—यह ठीक है । परन्तु इस विषयका अनुभव जितना स्त्रियोंको होता है, मै समझती हूं, उतना आपको नहीं होगा । इसलिये पुनः पुनः प्रार्थना करती हूं कि सुशीलाकी अवस्था १४ वर्षकी हो चुकी है, उसके साथकी अनेक लड़कियोंको मैने देखा है कि वे पूरी गृहिणी हो चुकी हैं। उनकी गोदमें छोटे २ बालकोंको देखकर उनकी माताओंको कितना हर्ष न होता होगा ? क्या मैं अपनी सुशीलाको भी इस भावसे देखूंगी ? नगरकी अनेक बड़े २ घरोंकी स्त्रियां मुझे प्रतिदिन उलहना देतीं और तानें मारती है कि सुशीलाके विवाहकी अपने यहा अभीतक चर्चा भी नहीं है ।

विक्रमसिंह—प्रिये ! मै आज तुम्हारे प्रस्तावसे प्रसन्न हूं, और बहुत शीघ्र सुशीलाके योग्य वरकी तलाश करूंगा । परन्तु अभीतक तुम्हारा और तुम्हारे नगरकी स्त्रियोंका आक्षेप व्यर्थ ही है । क्योंकि शास्त्रमें व्यवहार प्राप्त होनेपर ही कन्याओंका विवाह करना योग्य कहा है । और इस बातको तुम स्वयं जानती हो कि सुशीलामें अभी

तक व्यवहारकी योग्यता नहीं आई है। अपनी सुशीला बड़ी बुद्धिमती कन्या है, उसमें किसीके भी आक्षेपको जगह नहीं है।

सदनवेगा—महाराज! यह ठीक है, अपनी सुशीला सचमुच एक देवकन्या है। उसे अपने पढ़ने लिखनेसे कभी फुरसत ही नहीं मिलती। नित्य नवीन २ ग्रन्थोंको लिखवाकर मंगाने और स्वतः लिखने पढ़नेके सिवाय उसे मैने कभी सखी सहेलियोंमें हंसी ठठोली करते नहीं सुना, और ऐसी वैसी सखियोंका उसके पास निर्वाह भी तो नहीं है। अभी कल ही एक सखीको उसने मर्यादारहित हंसी करते देख महलोंसे निकलवा दिया है। मै देखती हूं कि नगरकी जितनी पढ़ी लिखी स्त्रियां है वे उसके पास रोज आती हैं, और घड़ी दो घड़ी ग्रन्थचर्चा करके प्रसन्नतासे जाती है।

विक्रमसिंह—इसके सिवाय तुम्हें यह भी जानना चाहिये कि छोटी उमरमें विवाह कर देनेसे भावी संतान बहुत कमजोर होती है, जिससे संसारका अकल्याण होता है। जिस बालक बालिकाओंके छोटी उमरमें ही विवाह हो जाते है, उनका पारस्परिक स्नेह नष्ट हो जाता है, और वे प्रायः आरोग्यतासे हाथ धो बैठते है। हमारे क्षत्रिय कुलमें सदासे प्रौढ़विवाह होते आये है—यही कारण है कि हममें अबतक वीरता बनी हुई है। तुमने जिन बालिकाओंके संतान-सुखको देखकर सुखी होना चाहा है, वह सुख दिखावटी और अविचारितरम्य है। यदि प्रौढ़विवाहके मर्मको तुम समझ जाओगी तो शीघ्र ही तुम्हारा वह भ्रम दूर हो जावेगा। बालकोंके मातापिता

ही अपनी संतानको सुखी दुखी करनेके कारण है। विवाह कार्य गुडियोंका खेल नहीं है—यह बड़ा गंभीर और विचारणीय कार्य है। बालकोंके लालन पालनपर जितना ध्यान देनेकी आवश्यकता है उससे कई गुना ध्यान इस ओर देना चाहिये। सुशीलाके विवाहके विषयमें मैने कभी विचार नहीं किया अथवा ध्यान नहीं दिया—ऐसा समझना तुम्हारी भूल है। मै निरन्तर इसकी चिन्ता रखता हूं। परन्तु अभी तक किसी स्थान और योग्य वरके न मिलनेसे ही मै चुप हो रहा था।

मदनवेगा—प्राणनाथ! यह सचमुच मेरा भ्रम था। मैने नहीं जाना कि आप स्वयं इस विषयमें इतना मथन कर रहे है। परन्तु दासीकी हीन बुद्धिमें यह बात नहीं आती कि देश भरमें कोई योग्य वर और स्थान नहीं मिला, सो कृपा करके उसे समझा दीजिये।

विक्रमसिंह—(मुसकुराके) स्त्रियोंकी बुद्धि बाहरी दृश्योंमें जल्दी अनुरक्त हो जाती है। वस्त्राभूषणोंसे लदा हुआ और हाथ पैरसे सुडौल पुरुष देखा कि उनका जी पानी २ हो जाता है। परन्तु किसी पदार्थके बाह्य सौन्दर्य्यपर रीझके उसकी उत्तमता अनुत्तमताका निर्णयकर बैठना बड़ीभारी भूल है। इन्द्रायणका फल देखनेमें बड़ा प्यारा होता है, परन्तु उससे कई गुना कडुआपन भी उसमें रहता है। अतएव स्थान और वरकी योग्यताकी जांच लक्ष्मी और सुन्दरतासे नहीं, किन्तु शिष्टता और बुद्धिमत्तासे करना चाहिये। यही कारण है कि मै अभी तक सुशीलाके योग्य वर और स्थानका अन्वेषण नहीं कर सका। सुशीलाके लिये सुशीलाके समान ही गुणवान्—रूपवान् वर और सब प्रकारसे सुखसम्पन्न घर ढूंढना हमारा परम कर्त-

और अब तुम समझ सकती हो कि ऐसे योग्य वर और घरका शो-
धना कितना मुश्किल कार्य है।

मदनवेगा—महाराज! आपका विचार बड़ा सुन्दर है। मेरी सुशीला बड़ी पंडिता है, उसे जब उसीके समान विद्वान् पति मिलेगा तभी वह सुखी हो सकेगी, इसमें संदेह नहीं है। कल सुशीलाकी अध्यापिकाको बुलाकर मैंने उनसे इस विषयकी बातचीत की थी। सो उन्होंने भी कहा था कि हमारी सरस्वतीको कोई बृहस्पतीके समान ही वर ढूंढ़ना चाहिये। वे यह भी कहती थीं कि सरस्वती कोई साधारण बालिका नहीं है, उसके पांडित्यको देखकर दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है।

विक्रमसिंह—अध्यापिकाका कहना असत्य नहीं है सरस्वती साक्षात् सरस्वती ही है। यदि तुम्हारी सम्मति हो तो सुशीलाका स्वयंवर मंडप रचाया जावे। मेरे एक वृद्ध मंत्रीने कहा है कि स्वयंवर मंडपमें सुशीलाको शास्त्रार्थ करके जो राजकुमार जीत लेवे उसीको वरमाला पहिनाई जावे। मै मंत्रीकि उक्त सम्मतिको बहुत योग्य समझता हूं। अब केवल तुम्हारी आज्ञा लेने की आवश्यकता है, क्योंकि तुम सुशीलाकी माता हो।

मदनवेगा—[मुसकराके लज्जित होके) धन्य है! मै सुशीला की माता हुई पर आप कोई नहीं? हंसीको आपसे कभी छुट्टी भी मिलती है?

विक्रमसिंह—जी! जहा श्रीमती विराजमान् है, वहां कमबख्त

पाठकोंको याद होगा कि सरस्वती सुशीलाकी उपाधि थी।

हंसी खुशीको छुट्टी कहा, आप नजरकी ओटमें हुई कि वह भी रफू-चक्कर हुई।

मदनवेगा—बस! रहने दीजिये, मुझे इस प्रकार बड़ाई करके कीचड़में न घसीटा करो। मै आपकी चरणदासी हूं। मेरे शरीरपर भी जब आपका पूरा अधिकार है, तब अन्य विषयोंके अधिकारका छप्पर मेरे सिरपर रखना मुझे खिजाना ही है।

विक्रमसिंह—(रानीकी ठोडीको पकड़के मुसुकुराते हुए) अच्छा देवीजी! तो आप क्रोध न करें, आप ही की जीत सही। क्षमा कीजिये! अब रात्रि बहुत बीत गई है, अतः शयन करनेकी आज्ञा दीजिये।

मदनवेगा—(पांवोंमें पड़के और खीजके) भगवान जाने आप कभी ताने मार २ के तृप्त होंगे कि नहीं, मै तुम्हारे पाव पड़ती हूं मुझे यों पापमें मत घसीटो।

तृयोदशपर्व।

रात्रिके दो बज चुके है। चारों ओर प्रकृति देवीकी शान्तता विराजमान है। कंचनपुरकी गलियोंमें पुलिसके सिपाही आवाज लगा २ के पहरा दे रहे है, और कहीं २ उनका अनुकरण करके कुत्ते भोंक रहे है। (इन बेचारोंको अभी तक इस नौकरीके वेतनका कहींसे प्रबन्ध हुआ कि नहीं सो किसी अखबारमें नहीं पढ़ा।) प-राधीन गश्त देनेवालोंके सिवाय नगरके सब अमीर गरीब सुखनिद्रा

ले रहे है। इस समय रतनचन्दजीके कमरेमें हम उसकी स्त्री रामकुंवरिको पेटके दर्दसे व्याकुल देखते है। रतनचन्द पलंगपर एक ओर सो रहा है। रामकुंवरिका दर्द बहुत बढ़ गया, इसलिये वह धैर्य्य नहीं बांध सकी और जोर २ से चिल्लाने लगी। उसके चिल्लानेसे रतनचन्द्र जागके उठ बैठा, और हक्कावक्कासा होके वैद्यको बुलानेकी तजवीज करने लगा। नौकरको पुकारा, परन्तु कुछ उत्तर न मिलनेसे वह स्वयं अपने हाथमें एक लकड़ी लेके वैद्यके यहां जानेको चल खड़ा हुआ। वैद्यके घरका रास्ता रतनचन्दजीकी दूकानके पाससे हो कर ही गया है। सो ज्यों ही रतनचन्द अपनी दूकानके साम्हने पहुंचा कि उसने एक आदमीको अपनी दूकानके जीनेपरसे ऊपर जाते हुए देखा। उस आदमीका सारा शरीर काले कम्बलसे ढका हुआ था, और हाथमें कोई हथियार चमक रहा था। इस दृश्यको देखकर रतनचन्द अपनी श्रीमतीकी पीड़ाको भूल गये और कुछ सोचके तत्काल ही धीरे २ दबे पैर उस आदमी के पीछे २ जीनेपर चढ़ गये। वह आदमी दूकानके कमरेमें पलंगपर सोते हुए पुरुषका काम तमाम करनेको ही था कि पीछेसे लपककर रतनचन्दने उसका हाथ पकड़ लिया। हाथ पकड़ते ही उस घातकने रतनचन्दकी ओर फिरके देखा, देखते ही उसके देवता कूच कर गये। इधर घातककी सूरत देखते ही रतनचन्दके आश्चर्यका कुछ ठिकाना नहीं रहा।

पाठक! आप चिन्तातुर न हूजिये, हम बतलाये देते है कि ये घातक महाशय और कोई नहीं हैं, रतनचन्दजीके सुपूत हीरालालजी

है। आप निरपराधी जयदेवका सिर काटनेको आये थे, परन्तु उसमें रतनचन्दने आकर विघ्न डाल दिया। पलंगपर बेचारा जयदेव सो रहा है, उसको खबर ही नहीं है कि मेरे लिये कैसे २ चक्र चल रहे हैं।

रतनचन्द हीरालालके हाथसे तलवार छीनकर फिर उसे नीचेकी दूकानमें ले आया और कहने लगा।

र०—"रे पापात्मन्! तूने यह कैसा अधम विचार किया था! छिः! जयदेव सरीखे धर्म-परायण पुरुषरत्नपर भी तेरा यह हिंसक हाथ उठ सकता है?

हीरालाल—जयदेव धर्मपरायण नहीं, अत्यन्त पापी और नराधम है। और मैने शीघ्र ही उसे यमपुर पहुंचाना अपना कर्तव्य समझा है।

रत०—(विस्मित होके) तेरे पास उसके अधर्मी साबित करनेका कुछ सुबूत है?

हीरा०—हां! है, और उसे आप भी जानते है। आप जान बूझके अजान बन रहे है। उस दिन मौसी (विमाता) ने इसके अत्याचारका आपसे सब हाल कहा था, परन्तु जब आप उसे बिलकुल पानीके घूंट पी गये, तब मैने स्वयं ही उसको दण्ड देना उचित समझा।

रत०—क्या तुझे स्वयं जयदेवके अत्याचारका विश्वास है?

हीरा०—हां! पूरा २ विश्वास है। और मै आपसे आज

शपथ पूर्वक कहता हूं कि यदि आप उसे घरसे नहीं निकालेंगे तो मैं उसकी जान लिये विना नहीं रहूंगा।

रत०-(कुछ सोचकर) अच्छा, आठ दिनके पहले २ मै इसका निबटेरा कर दूंगा, परन्तु याद रखना, तबतक कोई वारदात न होवे। यदि मेरी इस बातका उल्लंघन करेगा तो अपने कियेका फल पावेगा।

इतना कहकर रतनचन्द वैद्यके यहां गया और वहांसे कुछ औषधि लाकर उसने रामकुंवरिको खिलाई। खिलाते ही थोड़ी देरमें उसकी पीड़ा शान्ति हो गई, और तब दोनों सुखसे सो रहे।

चतुर्दश पर्व।

जयदेवको कंचनपुरमें रहते हुए बहुत दिन बीत गये। सुशीलाके विरह और भूपसिंहके बिछोहका काटा उसके हृदयमें उठते बैठते चलते फिरते निरन्तर चुभा ही करता था। और इधर रतनचन्दके घरकी घटनाओंसे जो आजकल हुआ करती थीं उसका चित्त और भी चिन्तित रहता था, सो जयदेवके शरीरकी दशामें बहुत परिवर्तन हो गया था। उसका निष्कलंक मुखमडल यद्यपि खूब तेजस्वी और कान्तिमान था; परन्तु शोक-चिन्ताओंकी पीली कलई उसपर चढ़ गई थी। बड़ाभारी विद्वान् होकर भी जयदेव शोक-चिन्ताओंसे अलिप्त नहीं रह सका; यह ठीक है, परन्तु उसको कभी किसीने चिन्तित और अन्यमनस्क नहीं देखा। वह सदा प्रसन्नमुख रहता था, और अपने कार्यको बड़ी बुद्धिमत्तासे

सम्पादन करता था । उसकी एकवाक्यता, सत्यता और सरलतासे रतनचन्दकी दुकान पहलेसे चौगुनी चल पडी थी ।

आज प्रातःकाल ही जयदेवकी शरीरचेष्टा बहुत कुछ शोकाच्छन्न दीखती है, वह अभी शय्या त्यागकर उठा है, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि उसने रात्रिभर निद्रा नहीं ली । आज वह अपने मुखकी शोकच्छायाके छुपानेकी बहुत चेष्टामें है, परन्तु छुपा नहीं सकता । पुस्तकादि पढ़कर भी अपने चित्तको बहलानेका प्रयत्न किया, परन्तु निष्फल हुआ । आखिर पलंगसे उठके बाहर आया और आवश्य कार्योंसे छुट्टी पाकर उसी समय रतनचन्दजीसे एकान्तमें जाकर मिला । दोनोंमें इस प्रकार बातचीत होने लगी ।

जयदेव—सेठजी ! मै आपकी कृपाका बहुत आभारी हूं । आपने बड़े सकटके समय आश्रय देके मेरा उपकार किया है, मै उसे कभी भूल नहीं सकता । आज प्रार्थना यह है कि अनेक कारणोंसे अब मेरा यहां चित्त नहीं लगता है, इसलिये मुझे घर जानेकी आज्ञा दीजिये ।

रतनचन्द—जयदेव ! तुम सरीखे सच्चे सदाचारी पुरुषको मै छोड़ नहीं सकता । न जाने क्यों मेरा जी तुम्हें बहुत चाहता है । परन्तु इधर कुछ दिनोंसे जब मै तुम्हें एकान्तमे देखता हूं, तब तुम कुछ विशेष चिन्तित दीखते हो । तुम स्वयं बुद्धिमान् हो, इसलिये चिन्ता नहीं करना चाहिये—यह शिक्षा भी नहीं दे सकता । और दूसरे क्या चिन्ता है—यह मैं जान भी नहीं सकता, जो कछ कहूं ।

जयदेव—(नीचा मस्तक करके) सेठजी, आपकी कृपा

और प्रेमको मैं जानता हूं, और चिन्ताके फलको जानता हूं, परन्तु क्या करूं, विवश हूं। चित्त किसी तरह नहीं लगता, और न आगे लगानेका कुछ उपाय ही सूझता है, अतः लाचार प्रार्थना करता हूं।

रतन–अस्तु, अब मै इस विषयमें कुछ आग्रह नहीं कर सकता, परन्तु एक जरूरी कामके लिये मुझे खेटपुर जाना है। वहां मुझे ८–१० दिन लगेंगे, तबतक ज्यों त्यों और तुम्हें रहना चाहिये। वहांसे आते ही मै तुम्हारी विदा अवश्य कर दूंगा।

जय०—(चिन्तित होके) आपकी इच्छा ! परन्तु जहांतक बने आप वहां अधिक दिन न लगावें, क्योंकि मै बहुत दुःखी हूं।

रतन०–नहीं ! ऐसा नहीं होगा, मै बहुत जल्दी आऊंगा। यह सुनके जयदेव वहांसे चला आया, और सेठजीने अपने चलनेकी तयारी की। आवश्यक सामग्री दो घोड़े और दो सेवकोंको लेकर रतनचन्द कंचनपुरसे चल पड़े। कुछ दूर चलके उन्होने सेवकोंसे कहा कि "मुझको इस नजदीकके गांवमें कुछ काम है, सो मै गांवसे होता हुआ दूसरे रास्तेसे खेटपुर पहुंचूंगा, तुम दोनों सड़कपरसे सीधे चले जाओ, और खेटपुरके बाहर जो पक्की सराय है, वहां ठहरना। मैं तुमसे वहीं मिलूंगा।' इतना कहकर रतनचन्दने एक पगडंडीपरसे चल दिया। सेवक लोग सड़क पकड़े हुए चले गये।

पंचदश पर्व।

जागो ! जागोरे ! बटोही यहां
चोरनिको डर है ॥

सेठ रतनचन्दजीके चले जानेके कारण आज उनकी श्रीमती

रामकुंवरिजी अकेली है । आपने भोजनके समय हीरालालसे कहा, 'देखो जी, इतनी बड़ी हवेलीमें मै अकेली रहनेवाली नहीं हू । यहां जब दिनमें ही डर लगता है, तब भला तुम ही कहो रातको मेरी क्या गति होगी ? मै जरूर मर जाऊंगा । सो यदि तुम्हें मेरे प्राण बचाना अभीष्ट हो तो यहीं आकर सोना । रामकुंवरिका यह प्रस्ताव हीरालालको विना कुछ हीलेके उसी समय स्वीकार करना पड़ा ।

प्रतिज्ञानुसार रातके दश बजनेपर हीरालाल दूकानसे सीधा हवेलीमें आया और ऊपरके एक सजेसजाये कमरेमें, जहां कि रतनचन्दजी सोया करते थे, जाके एक पलंगपर लेट गया । इस पलंगपरसे दो तीन गजके अन्तरपर एक और मशहरीदार पलंग बिछा हुआ था, उसपर रामकुवरि लेटी थी । साम्हने कमरेके बीचोंबीच एक सुन्दर शमादान जल रहा था, जिसके प्रकाशसे कमरेके शृंगारकी सम्पूर्ण चीजें हंसती हुई मालूम पड़ती थीं । कमरेकी चारोंओरकी खिड़किया खुली हुई थीं, उनमेंसे हवाके मीठे २ झोके आकेशरीरसे लगकर गुदगुदी पैदा कर रहे थे ।

हीरालाल और रामकुंवरि दोनोंकी चढ़ती जवानी है । दोनोंके शरीरमें उन्मत्तताकी लालिमा रोम २ से फूट रही है, और दोनोंही संसारके अत्यन्त दुःखित परिपाक फलके स्वादसे अपरिचित हैं । अतएव नहीं कह सकते कि आज इन दोनोंका सन्निकट शयन दोनोंके लिये कैसा सुखकर अथवा दुःखकर है ?

कंचनपुर नगरके निवासी इस समय सुखकी नींद सो रहे है । वे

इस बातसे बिलकुल बेसुध है कि हमारे नगरके एक एकान्त कमरेमें संसारपथके ये दो मुग्ध पथिक एक भयानक डांकूकी नजरके नीचे आ गये है। न जाने आज उनके परमधनकी रक्षा होती है कि नहीं। इस समय लज्जा और लोकमर्यादा ये दोनों पूज्य देवी उन दोनोंकी रक्षामें सन्मुख उपस्थित है, परन्तु कौन कह सकता है कि मूर्ख पथिकोंको वह प्रबल पराक्रान्त डाकू अछूते छोड़ देगा? लज्जा और लोकमर्यादा क्या मदनसिंह डांकूके वाणके आगे ठहर सकेंगी? नहीं, कदापि नहीं! आज मदनसिंह बड़े प्रबल हैं। यौवन, सम्पत्ति और अविवेकादि बड़े २ योद्धा उनके सहायक है। हाय! आज बेचारे पान्थ अवश्य लुट जावेंगे! रतनचन्दजीकी हवेलीके साम्हनेसे चले जाते हुए एक पुरबियेने इसी समय एक कवित्त पढ़ा।

"जागो! जागोरे बटोही! यहां
चोरनिको डर है।"

परन्तु खेद है कि उन्मत्त पथिकोंने कवित्तके उक्त अन्तिम चरणपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वह परम शिक्षाजनक पद कञ्चनपुरके ऊंचे २ मकानोंकी दीवालोंसे टकराकर वायुमंडलमें विलीन हो गया।

हीरालालके आनेके बाद प्रायः एक घंटे तक कमरेमें सन्नाटा खिंचा रहा, मानों पड़ते ही दोनोंको घोर निद्राने द-ा लिया। परन्तु यथार्थमें उन दोनोंके दिलोंमें बड़ी उछल कूद मच रही थी, केवल बाहिरी मौनावलम्बन था। लज्जा और मदनका द्वन्दयुद्ध बहुत समय तक चला। आखिर देखते ही देखते लज्जाकी पक्षके विवेक, विचार,

संतोष आदि योद्धा पुष्पशर (काम) के तीक्ष्ण बानसे घायल होकर धराशायी हो गये और लज्जादेवी पलायोन्मुख हुई। हीरालालने लड़खड़ाती हुई जीभसे कहा—

हीरालाल—चाची! जागती हो कि सोती?

रामकुंवरि—हत्यारी नींदने अभी कहां खबर ली है। क्यों? कुछ काम हो तो उठूं।

हीरालाल—हां! मुझे इस समय खूब प्यास लग रही है। दया करके थोड़ासा शीतल जल पिला दो तो हृदय शीतल हो जावे।

रामकुंवरि—अजी, इसमें दयाकी कौनसी बात है? मै अभी लाई देती हूं। इतना कहकर रामकुंवरि पलंगपरसे जल्दीसे उठी और एक सुन्दर गिलासमें जल भरके लाई और बोली 'लो पिओ, मै कैसा प्यारा ठंडा जल लाई हूं।'

हीरा०—बड़ी दया की। (पानी पीकर) आज न जाने मुझे क्यों नींद नहीं आती।

राम०—और यही हाल मेरा है, जबसे पड़ी हूं, करवट बदल रही हूं।

हीरा०—तो फिर थोडी देरके लिये यहीं न बैठ जाओ। कुछ बातचीत करके ही रात्र काटें।

राम०—क्या हर्ज है? (ऐसा कहके हीरालालके पलंगके पास ही एक कुर्सीपर बैठ गई, और किंचित् मुसुकराके बोली) तुम पीहरसे अपनी बहूको क्यों नहीं लिवालाते? बहुत दिन हो गये, बेचारी तरसती होगी और इधर तुम भी तकलीफ उठाते हो।

हीरा०—क्या करें ? काकाजीसे लाचार है, उन्हें इस बातका कुछ ख्याल ही नहीं है।

राम०—अजी! उनकी कुछ मत कहो, वे तो अपनी माफिक सबको ही मिट्टीके समझते है। जरा कभी छेड़छाड़की कि ज्ञान सुझाने बैठ जाया करते है यह नहीं सोचते कि नई उमर भी कोई चीज है ?

हीरा०—(अंगड़ाई लेके) अजी! और नई उमर भी कैसी ? जिसमें दुनियादारीका कुछ भी नहीं देखा। दिलके हौंसले दिलमें ही मारके रह जाना पड़ता है।

रामकुं०—परन्तु हौंसले दबानेसे दब नहीं सकते, जान पड़ता है आज तुम इसी उधेड़ बुनमें लगे होगे, इसीसे नींद आई!

हीरा०—अजी! कुछ मत पूछो, आज बड़ी तकलीफ है, न मालूम जी कहां कहां जाता है ?

रामकुं०—(जम्हाई लेके) जाता कहां होगा बहुत दूर तो ससुराल तक ?

हीरा०—और क्योंजी! आपका ?

रामकुं०—(धीमे स्वरसे शरमाके) बस! अपने सरीखा मेरा भी समझो। हम तुम दोनों एक ही रोगसे पीड़ित है।

हीरा०—यह रोगकी खूब सुनाई ? भला अब इस रोगकी चिकित्सा करनेकी भी इच्छा है, या नहीं ?

रामकुं०—(आंखें नीची करके) सो तो तुम ही जानो ?

विचारशील पाठक! इसके आगे क्या हुआ, सो कहनेकी जरूरत

नहीं है। जो सोचा था वही हुआ । बेचारे अपक्क बुद्धिके पथिक प्रेमका पियाला पीके ज्यों ही आपेको भूले कि उस चांडाल कामने उन्हें लूट डाला। वे क्षणभरमें शील संयमादि रत्नोंको खोकर राजासे रंक हो गये। दोनोंके मुखपर कालिमा फिर गई ?

यह देख कमरेमें जो शमादान जल रहा था, वह एक हवाके झोकेसे गुल हो गया। उसने अपने प्रकाशमें यह अंधकार होना उचित नहीं समझा ? कमरेकी खिड़किया भी फटफटाने लगीं । यदि उनका वश होता तो शायद वे भी यह दुष्कृत्य देखनेको वहा न लगी रहतीं। इतनेमें कमरेके पश्चिमकी ओर एक बड़ा भयानक शव्द हुआ, जिसे सुनके हीरालाल और रामकुंवरि दोनो चौंक पड़े। घवड़ाके ज्यों ही उन्होंने देखा कि साम्हने एक विकटाकार मूर्ति दीख पड़ी। उसका सारा शरीर एक काले कम्बलसे ढका हुआ था, और हाथमें एक तीक्ष्ण धारवाली तलवार थी। इस भयानक पुरुषको देखते ही दोनों एक बड़ी चीख मारके वेहोश हो गये।

मूर्ख पथिको ! तुमने विना विचारे ऐसे स्थानमें डेरा किया, जहा एक क्षणभर भी कुशलतासे नहीं बीत सकता था। हाय ! तुम लूट लिये गये। अब तुम अपने खोये हुए शीलरत्नको संसारका समस्त द्रव्य न्योछावर करके भी नहीं पा सकते। अब संसारमें तुम्हारा जीवन केवल भाररूप है। एक कवि कहता है,—

अपकीरति छाय रही जगमें,
तो वृथा दिन चार जिये न जिये।

षोडशपर्व ।

कंचनपुरसे पांच छह कोस पश्चिमकी ओर खेटपुर एक अच्छा क़स्वा है। वहां सेठ रतनचन्द्जीके एक परममित्र रहते हैं, जिनका नाम सेठ धनपालजी है। धनपालजी वड़े सौम्य और दूरदर्शी पुरुष है, और रतनचन्दजीको वे वहुत मानते हैं और हृदयमें प्रीति भी रखते हैं। दोनोंका वहुत वड़ा घरोवा है, इसलिये दोनोंके कार्य दोनोंकी सम्मतिसे हुआ करते है।

आज रतनचन्द्जी उक्त सेठजीसे मिलनेको चले थे, और यह विचार किया था कि उन्हें लौटते समय साथमें लेता आऊंगा। जवसे उन्हें रामकुंवरिकी चालचलनपर शक हुआ था, और जवसे जयदेवको व्यर्थ कलंक लगानेका रामकुंवरिकी ओरसे प्रपंच रचा गया था, तवसे रतनचन्द्जीका चित्त ठिकाने नहीं रहता था, उसे गृहस्थाश्रमसे वहुत कुछ विरक्तता आगई थी, और इसलिये तत्सम्वन्धी विचार करनेके लिये वह अपने मित्रसे मिलना चाहता था, परन्तु कार्याधिकतासे अवतक उसकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हुई थी। आज सवेरे जव जयदेवने उससे विदा मागनेका प्रस्ताव किया तव उसे मित्रसे मिलनेका विचार सहसा करना पड़ा। क्योंकि जयदेवके चले जानेपर दूकानका कार्य कैसे चलेगा-यह उसे वड़ीभारी चिन्ता वढ़ गई। हीरालालमें इतनी योग्यता और गुरुता नहीं थी कि वह दूकान चला सके। परन्तु कंचनपुरसे निकलते ही दो एक अपशकुन ऐसे हुए कि उनके फलोंके विचारमें रतनचन्द्का हृदय धड़कने लगा। उसका साहस नहीं हुआ कि आज कंचनपुर छोड़के अन्यत्र जाऊं। परन्तु

घरसे निकल पड़ा था, इसलिये ज्योंका त्यों लौटना योग्य नहीं समझा और तब वह नौकरोंको गेटपुरकी धर्मशालामें ठहरनेकी आज्ञा देकर एक पगडंडीसे चल पड़ा। इसके पहले पर्वमें पाठक यह बात जान चुके है।

यह पगडडी वायव्यकी ओर जो एक छोटासा ग्राम था, वहांको गई थी। रतनचन्द वहींको चल पड़ा, और ग्रामके वाहर एक अमराईकी सघन और शीतल छाया देखकर ठहर गया। एक झाड़से घोड़ेको बाध दिया और आप एक कम्बल बिछाके पास ही एक झाड़की छायामें बैठ गया। यह स्थान कंचनपुरसे केवल २ कोसके फासलेपर था।

गृह—जंजालमें फसे हुए जीवको एकान्त मिलनेसे आनन्दकी जगह निरानन्दका अनुभव होता है। जहा योगियोंको शान्ति मिलती है, वहीं गृहजंजालियोंपर अशान्तिका पहाड़ टूट पड़ता है। जहा योगी आत्मस्वरूपका अनुभव करते हुए अनन्त कर्मोंकी निर्जरा करते है, वहीं परिगृह पिशाचके पंजेमें फँसे हुए प्राणी जड़रूप ससारको भयानक रूप धारण किये हुए देखते है। और जहा उन्हें सर्वथा निराकुलता प्राप्त होती है वहीं संसारी जीवोंको तमाम चिन्तायें एकदम आ दबाती हैं। रतनचन्दकी भी उस एकान्त आराममें यही दशा हुई। अपने कलंकी संसारकी नाना विचार तरंगोंमें वह डूबने उछलने लगा। वैराग्य भावनाओंसे सहारा लेकर उसने बहुत चाहा कि इन तरंगमालाओंसे पार हो जाऊं, परन्तु कुछ फल नहीं हुआ। धीरे २ संध्या हो गई। प्रभाकर महाराज आखें मिलमिलाते हुए मुंह ढकनेकी ताकमें

लगे। प्रतीचीदेवी उनकी यह दशा देख धीरे धीरे विकटरूप धारण करके कोपपरिस्फुटित लाल लाल आंखें दिखाने लगी। परन्तु इस लड़ाईका फल कुछ भी नहीं हुआ। वे धृष्ट नामक वनके चल ही दिये।

उनके जानेकी देरी थी कि अंधकार महाशय आ धमके। भूमि, वृक्ष, लता, पत्तादिकोंपर क्रमसे काले परदे पड़ गये। ऐसा जान पड़ने लगा कि मानो यामिनी कामिनीको वैधव्यदीक्षा देनेके लिये काली साड़ी पहिनाई गई है। इस समय रतनचन्द सेठको बड़ा वैराग्य उत्पन्न हुआ। उनके देखते २ जिस संसारमें प्रकाश ही प्रकाश था, वहा अंधकार ही अंधकार दीखने लगा! यद्यपि ये प्राकृतिक घटनायें प्रतिदिन हुआ करती है, और देखनेमें भी प्रतिदिन ही आती है, परन्तु आज रतनचन्दके खिन्न हृदयपर उन्होंने बहुत असर किया। उस अंधकारपूर्ण रात्रिमें उसके मुखसे अचानक निकल पड़ा कि "**नहीं! अब इस असार ससारमें रहनेकी आवश्यकता नहीं है। कल ही इसका निवटेरा कर डालना चाहिये**"। इस वाक्यके निकलते ही तारागणोंके व्याजसे गगनमंडलने हंस दिया। उसके साम्हने जो एक वादलका काला टुकड़ा पड़ा था, वह उसी समय अलग हो गया। रतनचन्दजीकी बुद्धिका परदा भी हम समझते है इसी समय हट गया।

यद्यपि रतनचन्दको घर जानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी, और वह जाना भी नहीं चाहता था; परन्तु शल्यका एक छोटासा काटा उसके हृदयमें ऐसा चुभ रहा था कि उसके निकाले विना

उसकी वृत्तिमें निश्चलता नहीं आ सकती थी। वह कांटा यही था कि रामकुंवरिको वह दुराचारिणी जानता था, परन्तु अपनी आंखसे उसने उसमें कोई भी दुश्चरित्रका लक्षण नहीं देखा था। और यथार्थमें रामकुंवरि थी भी ऐसी ही चालाक कि उसकी मुखचेष्टासे उसके चारित्रका अनुमान रतनचन्द सरीखे सरल पुरुषके द्वारा होना कठिन था। अतएव आज रतनचन्दने अपनी उस शल्यको स्वयं जाकर निकाल डालना उचित समझा। क्योंकि बुद्धिमान् जो कोई कार्य करते है, वह भली भांति विचारपूर्वक ही करते है।

घोड़ेको उसी अमराईमें छोड़कर रतनचन्द कंचनपुरकी ओर चल पड़ा। लोगोंकी नजरोंसे बचनेके लिये उसने अपना शरीर कम्बलसे ढक लिया था और शरीररक्षाके लिये एक तलवार भी उसीमें छिपा ली थी। मुख्य मार्गको छोड़कर घूमते फिरते हुए चलनेमें बहुत विलम्ब हो गया। अतः अनुमान ११ बजे बड़ी कठिनतासे अपनी हवेलीके निकट पहुंचा। नगर भर घोर निद्रामें तल्लीन था। केवल दो चार पुरुषोंके आनेजाने की आहट राजमार्गपर सुनाई पड़ती थी। अथवा कभी २ अपरिचित शब्द सुनकर कूचोंमें भोंकते हुए कुत्तोंकी आवाज सुनाई पड़ती थी, शेष सर्व प्रकारसे शान्ति थी।

हवेलीके पश्चिममें जो गली थी वहां जाकर रतनचन्दने देखा, तो उसके खास कमरेकी खिड़कियोंमेंसे रोशनी आ रही थी, और कि-सीकी बातचीतकी आहट मिलती थी। इसलिये वह वहीं ठिठकके खड़ा हो गया और ध्यान लगाके सुनने लगा। नगर भरमें उस समय बिलकुल शान्ति थी, इसलिये उस समय वह बातचीत यद्यपि बहुत

धीमे २ स्वरोंमें होती थी, परन्तु रतनचन्दको इतना अनुमान करानेके लिये वस थी कि एक पुरुष और एक स्त्रीका वह वार्तालाप है। रतनचन्दके चित्तमें उसे सुनकर बड़ी व्यथा होने लगी।

उस गलीमें हवेलीपर चढ़नेके लिये पहले एक जीना था, परन्तु इधर कुछ दिनोंसे अनावश्यक समझकर उसका द्वार एक ताला डालके वन्द कर दिया गया था। दैवयोगसे रतनचन्दके पास इस समय चाबियोंके गुच्छेमें उसकी चाबी निकल आई। अतःशीघ्र ही उसके द्वारा ताला खोलके वह जीनेपर चढ़ गया, परन्तु ऊपर किवाड़ वन्द थे। जाके देखा तो दर्वाजा वन्द था। किवाड़ोंके रंध्रोंमेंसे भीतर कमरेका कुछ २ प्रकाश आ रहा था। रतनचन्दने रंध्रोंमें आंख लगाके कमरेके भीतर जो कुछ देखा, उससे वह एकदम अवाक् हो गया। जिसका स्वप्नमें भी विचार नहीं किया जा सकता था, उस पाशवकर्मको देखकर उसका हृदय शून्य हो गया, चेतना जाती रही क्षणभरके लिये धरतीपर वैठ गया। पश्चात् थोड़ी देरमें चेतना लाभ होते ही उसका क्रोध यकायक उबल उठा, बड़े जोरसे बोला, "भवगति पृथ्वी! ऐसे अधर्मी पशुओंका भार भी तू सम्हालती है? धिक्कार है तुझे!" और एक जोरसे किवाड़ोंमें लात मारी कि किवाड़ फटके अलग हो गये!! पापी उसके शब्दसे चौंक पड़े और साम्हने काले कम्बलसे ढकी हुई इसीकी विकटाकार मूर्तिको देखके चीख मारके वेहोश गये।

...कीटो! पापियो! तुम जानते हो कि हमारे पापोंका देखनेवाला कोई नहीं है, इसलिये इच्छित पाप करनेके लिये उतारू हो जाते हो

मदोन्मत्त होकर लोकमर्यादा, विवेक, शीलादि सबको तिलांजुली देकर स्वतंत्रतासे विचरते और अपने स्वरूपको भूल जाते हो। परन्तु स्मरण रक्खो, तुम्हारे कर्म तुमसे एक क्षणभर भी पृथक नहीं रहेंगे वे बड़े कठिन प्राहरिक है । तुम्हारी प्रत्येक कृतिका फल तुम्हें मिलेगा । हाय हाय ! थोड़ेसे विषयसुखके लिये तुम्हें घोर नरकके असह्य दुःख झेलने पड़ेंगे । सचेत रहो !

सप्तदश पर्व ।

बड़ी भयानक रात है । अंधेरेके मारे कुछ भी नजर नहीं आता। बादल न केवल उमड़े हुए है, परन्तु उदार पुरुषोंकी नाईं बरस भी रहे है । कभी २ बिजली तड़फ कर छुप जाती है, परन्तु लोग संसार-की अस्थिरता नहीं देखते, गहरी नींदमें सो रहे है । थोड़े २ जलका आश्रय पाकर मेंडक पौराणिक पंडितोंकी तरह अपनी टर्र टर्र में मस्त हैं । शीतल समीर बारीक २ जलकणों सहित इतस्तत: भ्रमण कर रहा है, परन्तु विलासपुरकी रमणीय वस्तीमें उसे कोई ठहरने को जगह नहीं देता । उसका आगमन होते ही लोग अपने २ घरों-के द्वार तथा झरोखे बन्द कर देते है वह उनसे टकरा टकराकर जब खिन्न हो जाता है तब फिर आगे चलता है ।

इस समय विलासपुरके जैलमें जो कि शहरसे पूर्वकी ओर है, हम अपने पाठकोंका ध्यान खींचते हैं । एक कोठरीमें उदयसिंह और बलवन्तसिंह हथकड़ी और बेड़ियोंसे विवश पड़े हुए है ।उदय-सिंहके चेहरेपर कालिमा छाई हुई है, लम्बी २ आहें खींचने और

आखोंमेंसे आंसुओंकी धारा बहानेके अतिरिक्त वह सर्वथा निश्चेष्ट है। बलवन्तसिंह अपने मित्रकी इस दशाके विचारमें अन्यमनस्क हुआ कुछ विचार कर रहा है। अफसोस! राजकुमारकी दशा बड़ी शोचनीय है। सुशीलाकी मुहब्बतने बरबाद कर दिया, तौभी ये सुशीला और उसकी मुहब्बतको छोड़ना नहीं चाहते, हजार समझाने बुझाने पर भी इनके हृदयपर कुछ असर नहीं होता। क्या करूं, महाराज साहब जब यह बात सुनेंगे, तो क्या कहेंगे ; मेरे साथ होते हुए भी विपत्तिसे रक्षा नहीं हो सकी। और रेवती भी कैसी चालक लौडी है ? कौन जानता था कि उसके सुडौल और सीधे शरीरके भीतर ऐसी बेडौल और टेढ़ी चालाकी निकलेगी। वाह खूब! फँसाया! हमारे हुजूर जबतक यहां जैलकी हवा खावेंगे, तबतक वहा सुशीला किसी भाग्यशालीके हृदयका हार बन जावेगी। सुनते है, दो चार ही दिनमें सुशीलाका स्वयंवर होनेवाला है ; चलो छुट्टी हुई, तब तो उदयसिंह इस हत्यारी मुहब्बतको छोड़ेंगे। अच्छा हुआ जो इनके कानों तक यह स्वयंवरकी भनक नहीं पड़ी। नहीं तो अभी न जाने क्या गजब मचाते। परन्तु नहीं, ये इसीमें मर जावेंगे। मुहब्बत बहुत बुरी बला है, अब भी मुझे प्रयत्न करनेसे न चूकना चाहिये। यदि इस जैलसे छुट्टी हो जावे; तो हम लोग अब भी बहुत कुछ कर सकते हैं और अपने अभीष्टकी सिद्धिको पा सकते हैं। इस प्रकार विचार जालमें उलझे हुए बलवन्तसिंहको दरवाजेके बाहर कुछ आहट मिली। वह धीरे २ द्वारपर आया, और दालानमें टहलते हुए एक पहरेदारको देखके बोला; क्यों भाई इस समयभी क्या तुम पहरा दे रहे हो? यह रात क्या तुम इसी तरह निकाल दोगे, विश्राम नहीं करोगे?

पहरेदार—नहीं हम लोगोंकी यही नौकरी है। नौकरीमें आराम कहां ? महनतसे जी चुराकर आराम करना आराम नहीं, हराम है। थोड़ेसे आरामके लिये अपने ईमानको नहीं बिगाड़ना चाहिये। बेईमानके दोनों लोक बिगड़ते है।

बलवन्तसिंह—तब तो तुम बड़े ईमानदार और द्यानतदार नौकर मालूम होते हो, पर भाई हमने सुना है तुम्हारा राजा कदरदान नहीं है। यदि तुम हमारे महाराजके नौकर होते, तो अभी तक एक अच्छे ओहदेपर पहुंच जाते। क्या कहूं, इस समय मैं विवश हूं, नहीं तो तुम्हें अभी अपने महाराजसे मिलाता और तुम्हें बतला देता कि हमारी सरकार कैसी गुणज्ञ और दयावान् है।

पहरे०—भाई ! "गई बहुत और रही थोड़ी" अब साल छह महीनेके लिये क्या जरूरत है कि गैरोंके द्वारोंपर टकराता फिरूं। हमारी सरकारमें गुणज्ञता, उदारता और दयाकी कमी नहीं है। जिसने तुमसे हमारे राजाके विषय कुछ कहा है, उसने गलती की है; वह कोई नमकहराम होगा। यथार्थमें इसमें महाराजका दोष नहीं है। मेरे पूर्वजन्मकी कमाई ही इतनी थी कि बुढ़ापे तक पांच रुपये से छह नहीं हुए और अब तो होवेंगे ही क्यों ? मेरे भाग्यमें नही है, तब आपके महाराज भी मेरे लिये अनुदार बन जावेंगे ?

बलवन्त—नहीं. ऐसा नहीं है। भाग्यके भरोसे बैठे रहनेवाले कुछ नहीं कर सकते। भाग्यवादी बड़ी भूल करते है। पुरुषार्थसे सब कुछ हो सकता है और पुरुषार्थ करना हम लोगोंका परम धर्म है; भाग्य कोई चीज़ नहीं है।

पहरे०—अच्छा, भाग्य कोई चीज़ नहीं है तो इतने बड़े महाराजके वीर पुत्र होके ये तुम्हारे मालिक क्यों भाग्यको रो रहे हैं, और तुम भी तो बड़े पुरुषार्थी हो; भला निकलो तो इस कोठरीमेंसे ! फिर देखें ?

बलवन्त—तो क्या हमारे यहांसे निकल जानेमें तुमको शक है ? तुम्हारे देखते हुए हम यहांसे पुरुषार्थसे निकल जावेंगे और उसमें तुम्हींसे हमको सहायता भी मिलेगी। (उदय० की ओर उंगली करके) देखो भाग्यवादियोंकी यह दशा होती है। ये तुम्हारे ही जोड़ीदार है। हज़रत मुहब्बत तो लगाने चले हैं परीसे और सूंघ रहे है, जमीन !

पहरे०—(साचिन्त होके) तुमने यह क्या कहा कि तुमसे मदद मिलेगी ? क्या तुम मुझसे कुछ ऐसी आशा रखते हो?

बलवन्त—हां, क्यों नहीं; संसारके सब ही कार्य एक दूसरेकी सहायतासे चलते। है सच कहते है, यदि तुम मुझे थोड़ी देरके लिये यहांसे छुटकारा दे दो; तो कल ही अपने महाराजके राज्यमें तुम्हें किसी अच्छे ओहदेपर बैठा दूं। और लो, हम लोगोंके शरीरपर इस समय जो कुछ है वह सब तुम्हारा है।

पहरे०—छिः ! इसीको पुरुषार्थ कहते है ? यदि धोकेबाजी, बेईमानी, फरेब और रिशवत देनेको ही पुरुषार्थ कहते है, तो धिक्कार है उस पुरुषार्थको ! तुम ऐसी नीच बातें करके अपने नामी राजाके नामपर और अपने क्षात्रधर्मको बट्टा लगाते हो ! लानत है तुमपर ! यदि तुम्हारा राजा तुम सरीखे पुरुषोंकी बातपर विश्वास करता है,तो

समझना चाहिये कि वह कोई अच्छा राजा नहीं होगा । जिस राज्य में योग्यायोग्यकी पहचान नहीं है, वह राज्य गहरे अंधकारमें ग्रस्त है और उसकी जड़ बहुत कच्ची है । दूसरे राजा देवके तुल्य है । उसके साथ २ विश्वासघात करनेसे हम लोगोंका कदापि कल्याण नहीं हो सकता । जाओ ! अब मै तुमसे वातचीत नहीं करना चाहता, तुम सरीखे एक सरदारसे मेरे सरीखे एक अदना सिपाहीको इतनी घृणा उत्पन्न हो जाना बड़े दुःखकी बात है ।

बलवन्तसिंहका मुंह बन्द हो गया, उस निष्कपट, विश्वस्त सिपाहीके सन्मुख उसे एक शब्द कहनेका भी साहस नहीं हुआ । वह धीरे २ खिसकके अपने स्थानपर आ बैठा । सिपाही दूसरी ओरको टहलने लगा ।

अनुमान आधे घंटेके सन्नाटेके वाद द्वारपर फिर किसीकी आहट हुई । बलवन्तसिंह कान लगाके सुनने लगा । आवाजसे जान पड़ा कि वही पहरेदार है, जिससे बातचीत हुई थी । निकट जाके पूछा क्यों, क्या कहते हो ? वह बोला, क्या किया जावे, पेट बड़ी बुरी बला है, तुम्हारा मंत्र मुझपर चल गया और सचमुच तुम्हारा पुरुषार्थ कार्यकारी है, भाग्य कोई चीज नहीं है । लाओ, तुम अपने शरीरपरका जेवर निकालके मुझे दो, मै तुम्हें अभी यहासे निकाले देता हूं । परन्तु स्मरण रखना, तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी होगी ।

यह सुनते ही बलवन्तके मुंहमें पानी आ गया । वह आनन्दके मारे उछल पड़ा और बोला, विश्वास रक्खो ! हम अपनी प्रतिज्ञा अवश्य ही पूरी करेंगे और तुम्हें निहाल कर देंगे । लो, हम लोगों-

की हथकड़ी बेड़ी काट दो, और यह जेवर उतार लो । यहांसे भागकर तुम हमारे राज्यमें चलो, वहां तुम्हें कोई भय नहीं है। यह सुनके पहरेदारने धीरेसे द्वार खोल दिया और भीतर आके दोनोंकी हथकड़ी बेड़ी काट दीं और शरीरपरका जेवर ले लिया। पश्चात् कहा लो, शीघ्रतासे भागो । यदि किसीको मालूम हो जावेगा तो जानपर नौबद आ पहुंचेगी । आखिर तीनों रफूचक्कर हुए । परन्तु १ मील ही न पहुंचे होंगे कि पीछेसे किसीकी आवाज आई, खबरदार कायरो ! मै आ पहुंचा । तुम तीनों जवान हो, मुझ बुड्ढेकी तलवार का मजा भी जरा चखे जाओ, नहीं तो पीछे शेखिया मारोगे । यह सुनते ही तीनोंके पैर जहांके तहां जम गये, शरीर शून्य हो गया । आनेवाला तीनोंके आगे भीममूर्ति धारण करके आ खड़ा हुआ । पहरेदार सिपाहीके पैर थरथर कांपने लगे। उसने चाहा कि भाग जाऊँ, परन्तु ऐसा कर नहीं सका । आनेवालेका पहिला हाथ उसीपर पड़ा, जिससे उसकी बांह कटके अलग गिर पड़ी, गहरे घावकी वेदनासे वह गिरके मूर्छित हो गया । खूनकी धारा बहने लगी ।

बलवन्तसिंह और उदयसिंह दोनोंके पास इस समय हथियार नहीं थे । मददगार सिपाहीको बातकी बातमें गिरते देखके और अपनेपर आई हुई विपत्तिको देखके दोनों झपटे और चाहा कि तलवार बचाके इसे बाहुपाशमें बांध लेवें; परन्तु वह भी असावधान नहीं था, उछलकर अलग हो गया, और दाव बचाके एक हाथ ऐसा मारा कि बलवन्तसिंहके कंधेपर जाके पड़ा। लगते ही वह बेहोश हो गया । गिरे हुए सिपाहीकी तलवार उदयसिंहके हाथमें पड़ गई इसलिये वह

बड़े बलके साथ आनेवालेके सन्मुख हुआ, और अनुमान आध घंटे तक दोनोंमें खूब युद्ध हुआ। उदयसिंहने अपने प्रतिद्वन्दीको बल और शस्त्र कौशलमें सब प्रकारसे अजेय देखकर और पूर्वदिशामें ऊषादेवीका आगम जानकर और अधिक समय तक उससे भिड़े रहना उचित नहीं समझा, अतएव वह उससे किसी तरह पीछा छुड़ानेकी चिंतामें लगा। उधर प्रतिद्वन्दी भी घंटोंके परिश्रमके कारण कुछ शिथिल हुआ कि मौका पाकर उदयसिंहने पीठ फेर दी और पलायाञ्चक्रे! प्रतिद्वन्द्वीने अब उसका पीछा करना उचित नहीं समझा और उसी स्थानपर बैठ गया।

ऊषा अपने अरुण ओठोंपर मन्द २ हंसी झलकाती हुई आ पहुंची और उस वीर पुरुषका अपने किरणरूपी करोंसे आलिङ्गन करनेको दौड़ी।

प्रभात हो गया, अनेक राज्यकर्मचारी इस घटनाकी सुधि पाकर दौड़े आये और मूर्छापन्न बलवन्त और सिपाहीको कैद करके ले गये, वीर पुरुष बड़े सत्कारके साथ नगरमें लाया गया।

* * * *

पाठक! यह वीर पुरुष और कोई नहीं, वही राजभक्त पहरेदार है जिसके साथ बलवंतसिंहकी पहले बातचीत हुई थी। और वह आदमी जो बलवन्तादिको छुड़ाकर भागा था, तथा पीछे जो अपनी एक राह रो बैठा था, एक दूसरा पहरेदार था। जिस समय बलवन्त और पहले पहरेदारकी बातचीत हो रही थी दूसरा छुप कर दोनों की बातचीत सुन रहा था। बलवन्तसिंहके दिये हुए लालचसे वह अपनी ईमानदारी खो बैठा, और यह राजद्रोह करनेको उद्यत हो गया।

यह पहले पहरेदारकी बदलीपर आया था। क्योंकि २ बजे रात्रिके पश्चात् प्रतिदिन इसीका पहरा रहता था। पहले पहरेदारके चले जानेपर इसने अपनी घात लगाई और बलवन्तसिंहसे छुड़ा देनेकी बात कही। उसकी बनावटी बोली और धूर्त्तताको बलवन्तसिंह नहीं समझ सका। उसने यही जाना कि यह वही पहरेदार है जिससे पहले बातचीत हुई थी; मेरा दिखाया हुआ लालच इसपर असर कर गया है। पहलेका नाम वीरसिंह और दूसरे पहरेदारका नाम अजानसिंह था।

वीरसिंह अपनी नौकरी पूरी करके घर गया, परन्तु उसे निद्रा नहीं आई। उसके हृदयमें बलवन्तसिंहकी धूर्त्तताका बड़ा खटका बैठ गया था, और उसका असर इस कारण और भी अधिक हुआ कि अजानसिंहका स्वभाव लालची बहुत था। वह इस बातको जानता था कि यदि बलवन्तसिंह उस मंत्रका प्रयोग जोकि मुझपर निरर्थक हुआ है, अजानपर करेगा तो सचमुच वह अकार्य कर बैठेगा। जब उसे किसी प्रकार निद्रा नहीं आई और पूर्व सन्देह बढ़ता ही गया तब तो वह एक हथियार लेके कारागृहकी ओर फिर चला। वहां जाके देखा, तो जिस कोठरीमें उक्त कैदी थे उसे खुली हुई और खाली पाई और कैदियोंके भागनेकी आहट कुछ दूरपर पाई। इसपर वह तत्काल ही उनकी ओर शक्तिभर दौड़ा और इसके पश्चात् जो कुछ हुआ, वह कहा जा चुका है।

अष्टदश पर्व ।

अनुमान ७ बजे महाराज विक्रमसिंहके दरबारमें दोनों कैदी और वीरसिंह उपस्थित किये गये । कैदियोंके घावोंपर मलहम पट्टियां लगा दी गई थीं, और इससे उनका शरीर बहुत कुछ स्वस्थ्य था। इसी प्रकार वीरसिंहके भी जो दो चार छोटे २ घाव लगे थे, उनका भी इलाज करा दिया था । इस समय वह अत्यन्त प्रसन्न चित्त दिखाई देता था ।

आज्ञा पाकर वीरसिंहने अपनी बीती घटनाका हाल महाराजसे निवेदन किया, जिसे सुनकर महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए । वृद्ध वीरसिंहकी वीरता और ईमानदारी सुनके समस्त दरबारमें एक अतिशय उल्लास प्रगट होने लगा । वलवन्तसिंहने स्वयं उठके कहाः—

"महाराज ! यद्यपि मैं इस समय आपका कैदी हूं, और पुनः इस कैदमें पड़नेका कारण वीरसिंह होनेसे वह मेरा शत्रु है, परन्तु **शत्रोरपि गुणाः वाच्या** अर्थात् शत्रुके भी गुण वर्णनीय होते हैं, इस नीतिसे मैं वीरसिंहकी प्रशंसा किये विना नहीं रह सकता । आप धन्य है, जिनके यहा ऐसे सच्चे, वीर, धार्मिक और राजभक्त सेवक है । ऐसे क्षत्री पुत्रोंके कारण ही यह पृथ्वी भाग्यशालिनी है । वीरसिंहको अपने वशमें लानेके लिये मैंने हजार प्रयत्न किये और बातें बनाईं, परन्तु वे सब निष्फल हुईं । वीरसिंहका सुदृढ़ मानस तनिक भी चल विचल नहीं हुआ, उलटी मुझे ही वह फिटकार सुननी पड़ी, जिसका घाव मेरे हृदयपर अभी तक है । मैं महाराजसे प्रार्थना करता हूं कि वीरसिंह सरीखे वीरको कोई अच्छा वीरोचित

दंड दिया जावे, और इस नीचातिनीच अजानसिंहको कोई ऐसा दण्ड दिया जावे, जिससे संसारको फिर कभी ऐसा विश्वासघात करनेका साहस न होवे। ऐसे पुरुषके प्रसादसे ही बड़े २ बलशाली राज्य नष्ट हो जाते है। संसारमें राजद्रोह सरीखा कोई पाप नहीं। थोड़ेसे धनके लोभमें पड़कर जो राज्यकर्मचारी इस तरह राज्यका अपकार करनेको तयार हो जाते है वे बड़े कृतघ्न है।"

महाराज विक्रमसिंह यह सुनके कुछेक मुसुकुराये और बोले "आपकी सम्मति माननीय है। जैसा आप चाहते है वैसा ही होगा। परन्तु यह तो कहिये कि वीरसिंहकी फिटकारसे भी आप अजानके अनुगामी क्यों बने? और इसका दंड आपको क्या दिया जावे?"

बलवन्त—अवश्य ही वीरसिंहकी शिक्षाका मुझपर असर हुआ, परन्तु अपने मालिककी ओर देखते सहसा मुझे अजानका साथी अजान बनना पड़ा था, जिसके लिये कि मुझे इस समय बड़ी घृणा हो रही है। उस विषयमें मैं आपका पूर्णतः अपराधी हूं, आप जो चाहें, दंड दें, मै सहनेको तयार हूं।

महाराज—अस्तु! आप अपने अपराधके बदलेमें छोड़ दिये जाते है। आप जहां चाहे वहां स्वतंत्रतासे जा सकते है, यही आपके लिये दंड है।

बलवन्त—(गद्गद और नतमस्तक होके) धन्यवाद है! सहस्र धन्यवाद है! परन्तु महाराज मेरे साथ इतना उपकार और करें कि ... बना लिया जाऊं। मै आप सरीखे नरनाथकी सेवा

छोड़के अब अन्यत्र नहीं जाना चाहता । मेरे लिये यही स्वतन्त्रता है, यही सब कुछ है ।

महाराजने बलवन्तसिंहकी प्रार्थना स्वीकार की । बन्धनमुक्त होके उन्हें उसी समय दरबारमें उनके योग्य स्थान दिया गया । लोग विस्मित होके महाराजकी ओर देखने लगे । वीरसिंहके लिये आज्ञा हुई कि आजसे ये नौकरीसे विमुक्त किये जावें और १००) पेंशन मुकर्रर कर दी जावे ।

इसके पश्चात् अजानसिंहके दंडकी बारी आई, परन्तु इसके पहले ही देखा कि उसका शरीर प्राणहीन होके धराशायी हो गया । लोगोंने समझा मूर्छा आई, परन्तु यथार्थमे वह उसकी अन्तिम मूर्छा थी। अपने किये हुए दुष्कर्मसे उसका हृदय वैसे ही विदीर्ण हो रहा था कि महाराजकी दया, अपने साथी वीरसिंहकी बड़ाई और बलवतसिंहकी निष्कपटताके तीक्ष्ण दृश्योंने एकके पीछे एक आकर उसे निर्जीव ही कर डाला । अजानसिंह अपनी अजानतासे पश्चात्तापकी अग्निमें दग्ध हो गये । दरबारके सम्पूर्ण सभ्योंके चित्तपर इस दृश्यका बड़ा असर हुआ । महाराजका चित्त दयासे आर्द्र हो गया, दुःखी होकर वे दरबार बरखास्त करके शीघ्र ही अन्तःपुरमें चले गये । लोग हर्ष विषाद करते हुए अपने अपने स्थानपर गये ।

एकोनविंशति पर्व ।

क्रोधमें उन्मत्त हुए रतनचन्दने बेहोश रामकुंवरि और हीरालालको पलंगसे जकड़के बाध दिया और चाहा कि होशमें लाकर इनकी

खूब खबर लूं, परन्तु तत्काल ही उसका वह भीषण क्रोध वैराग्यके शीतल विचार–प्रवाहसे शांत हो गया। उसके फड़कते हुए होंठ स्थिर हो गए, नेत्रोंकी लालिमाका परिवर्तन हो गया। चढ़ी हुई भोंह कमानें वक्रता छोड़के सीधी हो गई और कांपता हुआ सारा शरीर क्षण भरके लिये स्तंभरूपमें स्थिर हो गया; हृदयमें शान्तरसका समुद्र लहरें लेने लगा। थोड़ी ही देरमें रतनचन्दके मुंहसे निकल पड़ा, "जब असार संसारमें रहना ही नहीं है, तो यह विटम्बना किस लिये करूं ? इन दुष्कर्मोंके वशमें पड़े हुए दीन जीवोंको व्यर्थ ही क्यों कष्ट पहुंचाऊं ? उन्हें मारनेसे मुझे क्या लाभ होगा ? और अब ये मेरे है ही कौन ? कोई नहीं।"

पाठक ! ये उस शांतरसके गंभीर समुद्रकी तरलतरंगोंका मनोहर नाद था, जो रतनचंदके हृदयमें प्लवित हो रहा था। पापपूर्ण निंद्य संसारमें ऐसे सुन्दर शब्द बहुत थोड़े भाग्यवान् सुन सकते है।

आगे रतनचन्दका कोमल हृदय रामकुंवरि और हीरालालको देखकर करुणासे परिप्लावित होने लगा। वह सोचने लगा, हाय ! ये वेचारे दीन प्राणी कर्मोंके चक्करमें पड़े हुए कैसे २ घोर अनर्थ करते है। अपने अनन्त शक्तिशाली स्वरूपको भूले हुए है। इन्हें यह भी ज्ञान नहीं है कि हमारा हित क्या है, फिर हितरूप प्रवृत्ति करना तो दूरकी बात है। वेचारोंने बड़े कष्टसे अनन्तकाल भ्रमण करते २ यह मनुष्यजन्म पाया था, परन्तु इसमें भी ये अपना क-

ल्याण न कर सके, और अब दुष्कर्ममें मग्न हो रहे हैं। न जाने ये कब ठिकाने लगेंगे ? बेचारे क्या करें ? स्वयं कुछ ज्ञान नहीं रखते। और सच्चे उपदेशोंका साधन नहीं है, इससे मार्ग भूले हुए है। जी चाहता है कि कुछ उपदेश देकर इन्हें मार्गमें लानेकी चेष्टा करूं, परन्तु ऐसा न हो कि उसका इनपर उलटा असर पड़े। क्योंकि '**पित्तज्वर-वतः क्षीरं तिक्तमेव हि भासते**' सो ये भी असाध्य रोगी जान पड़ते है। इन्हें मेरा एक २ शब्द कडुआ लगेगा। अतएव अब इन्हें इनके भाग्यपर छोड़के अपना कल्याण करना चाहिये। रात्रि थोड़ी ही बाकी रह गई है, और इसके पहले ही मुझे कंचनपुर छोड़ देना है, इसलिये अब शीघ्रता करना चाहिये। ऐसा सोचकर रतनचन्द अपराधियोंको वहीं छोड़कर एक प्रथक् कोठरीमें गया, जहां लिखने पढ़नेका सामान रक्खा रहता था। वहां जाकर उसने तीन चिट्ठियां और एक वसीयतनामा लिखा। पहली दो चिट्ठियां रामकुंवारि और हीरालालके नामकी थीं, उन्हें उसने दोनोंके सिराने रखके हवेलीको चारों तरफसे बन्द करके ताला लगा दिया। पश्चात् सीढ़ियोंसे नीचे उतर कर एक ओर चल दिया। इस समय भी उसका वही वेष था जो उसने इस घरमें प्रवेश करते समय धारण किया था।

घरसे निकलकर रतनचन्द गलियोंमेंसे होता हुआ अपनी दूकान पर पहुंचा और जीनेसे चढ़के वहा गया, जहां जयदेव सोता था। यह वही जगह थी, जहां उस दिन हीरालालके हाथसे जयदेवकी जान बचाई गई थी। जयदेव भीतरसे संकल दिये हुए गहरी निद्रा ले रहा था। उसे खबर नहीं थी कि आज मेरा

सच्चा हितैषी अन्तिम बिदाई लेनेको आया है। कमरेकी एक खिड़की खुली हुई थी। रतनचन्दने उसीमेंसे वह वसीयतनामा, चिट्ठी और चाबियोंका गुच्छा एक रुमालमें लपेटकर भीतर फेंक दिया और बड़ी देर तक जयदेवके उघड़े हुए निष्कलंक मुखको देखकर एक लम्बी सांस लेकर वहांसे चल दिया।

दिन निकल आनेके भयसे उसने बड़ी शीघ्रतासे उस अमराईकी ओर गमन किया, जहां घोड़ा छोड़ दिया था। जाकर देखा तो स्वामिभक्त घोड़ा जहांका तहां खड़ा है, और अपने स्वामीके आनेके मार्गको देख रहा है। रतनचन्दने पास पहुंच पुचकारके उसकी पीठपर हाथ फेरा और फिर सवार होके एक जंगलकी ओर उसे दौड़ाया। सबेरा होते २ रतनचन्दको कंचनपुरसे बहुत फासलेपर उसने पहुंचा दिया।

रतनचन्दके घरसे निकलते ही रामकुंवरि और हीरालालकी बेहोशी दूर हुई, तो उन्होंने अपनेको बेवशीकी हालतमें पलंगसे जकड़े हुए पाया, चारों तरफके किवाड़ बन्द थे भयके मारे कॅपकँपी लगने लगी। दोनों एक दूसरेके मुंहकी ओर देखके अपनी २ चेष्टासे अपने दुष्कर्मकी ओर घृणा और बेवशीपर दुःख प्रकाश करने लगे। परन्तु लज्जा, दुःख और भयके मारे दोनोंके मुंहसे एक शब्द भी न निकला। इतनेमें सबेरा हुआ, झरोखोंमेंसे सूर्यका प्रकाश आने लगा। समदृष्टि सूर्यदेव पापी और पुण्यात्मा दोनोंके घरोंकी ओर एक रूपसे अपने कर (किरणें) फैलाते है, इस बातका परिचय उसी दिन मिला। एक ही साथ दोनों पामरोंकी दृष्टि अपने २

सिरानेपर पड़ी हुई चिट्ठियोंपर गई, दोनो मन ही मनमें उन्हें बाचने लगे । चिट्ठियोंमें लिखा था;—

रामकुंवरि,—

तेरा अनन्त उपकार मानना चाहिये, जो तेरे कारणसे मुझे आज इस गृह जंजालसे छुट्टी मिली । स्त्रियां ऐसी ही होनी चाहिये, जिनसे उनके पति इस घोर विपत्तिसे मुक्त होनेके सम्मुख हो जावें । मैं तुझे अपनी आखोंसे तृप्त होकर देखे जाता हूं, सो अब पुनर्दर्शनकी लालसा नहीं रहेगी । मैं तेरी कृतिका फल दिये विना ही जाता हू इसमें आश्चर्य नहीं करना । क्योंकि मेरा चित्त अब ऐसे ही मार्गपर लग गया है ।

तू अपने दुर्लभ मनुष्यजन्मका दुरुपयोग कर रही है, इस बातका खेद है। यदि हो सके, तो मेरी इस बातपर विचार करना कि "सुखका मार्ग कौनसा है?" अधिक कुछ नहीं, क्षमाभाव रखना ।

रतनचन्द ।

हीरालाल,—

दुर्लभ मनुष्यजन्मरूपी हीरा, हाय ! हाय ! तूने कौड़ीके बदलेमें दे दिया । जौहरीका पुत्र होकर तू ऐसी भूल कर बैठा, जो एक घसकटा भी नहीं कर सकता। तुझे ऐसी भिखारी अवस्थामें मैं अब नहीं देखना चाहता। इसलिये आज आन्तिम .... [illegible] हो सके तो फिरसे उसके पानेका प्रयत्न करना । इत्यलम् ।

रतनचन्द ।

[illegible]ट्ठियोंके पूरे होते २ दोनोंकी अजीब हालत हुई । अभी [illegible] तो वे जानते थे कि यह कोई दैवी कोप है, [illegible] किसी शत्रुने हमको गिरफ्तार किया है; परन्तु चिट्ठि- [illegible] रतनचन्दकी सही देखते ही उनकी घबड़ाहटका ठिकाना [illegible] रहा । खेटपुरको गये हुए जिस रतनचन्दका उन्हें स्वप्नमें [illegible] स्मरण नहीं था और जिसे वे सर्वथा भूलकर निश्चिन्त

हो दुराचारमें प्रवृत्त हुए थे, उसीको उन्होंने चिट्ठीके रूपमें सम्मुख देखकर उस घटनाका अनुभव किया, जिसे दावाग्निसे तीन ओरसे घिरे हुए मृग समूह चौथी ओरसे आते हुए सिंहकी भीषण गर्जनको सुनकर करते है। खेद है कि रतनचन्दकी सरल और शिक्षाप्रद चिट्ठियां जिनमें किसी प्रकारके भयकी संभावना नहीं थी पापियोंकी पापयुक्त दृष्टिमें बड़ी भयंकर दिखलाई देने लगीं। नाना प्रकारकी चिन्ताओंमें उनके प्राण सूख गये। उधर सूर्यदेवने हंसते हुए जयदेवके कमरेमें भी प्रवेश किया। खुले हुए झरोखेमेंसे उन्होंने अपने कर फैलाकर जयदेवको मानो यह कहते हुए जगाया कि "उठो, संसारकी कुछ और भी विचित्रता देखो, और हो सके तो उससे कुछ शिक्षा प्राप्त करो।" जयदेव पंचनमस्कारस्तोत्रका पाठ करता हुआ शय्यासे उठ बैठा और क्षणार्धको नेत्र वन्द करके ध्यानस्थित हो उसने कमरेमें चारों ओर अपनी दृष्टि फैकी। झरोखेके पास ही पड़े हुए रूमालको उसने विस्मित होकर उठा लिया और उसमे लपेटी हुई चिट्ठियोंको बड़ी आतुरतासे वांचना शुरू किया। पहली चिट्ठीमें यह लिखा हुआ था;—

"प्रिय, जयदेव,—

कालकी गति विचित्र है। कल क्या होगा सो कोई नहीं जानता। तुम मुझसे बिदा लेना चाहते थे, परन्तु आज मैं तुमसे ही विदा लेता हूं। जी चाहता था कि तुमसे एकवार और मिल लूं, परन्तु कई वातें सोचकर न मिल स[illegible]। और अब मिलनेकी भी क्या आवश्यकता है। मैं आज सब दुःखोंसे छू[illegible] सुखके मार्गमें प्रवेश करता हूं। तुम्हें इस बातसे कुछ प[illegible] होगा, परन्तु नहीं, तुम बुद्धिमान् और दूरदर्शी हो, परमार्थ दृष्टिसे देखोगे [illegible] निश्चय ही प्रसन्न होओगे। मैं आज उस मार्गमें पैर रखता हूं, जिससे [illegible]

मनुष्यजन्म सफल होता है, और जहांसे जानेमें फिर वार २ लौटना नहीं होता।

दूरदर्शी जयदेव ! एकाएक मैंने ऐसा क्यों किया, इसके जाननेके लिये तुम्हारा चित्त उद्विग्न होगा, अत मैं भी उसे छिपाना नहीं चाहता । कल मैं खेटपुर नहीं गया, मार्गसे लौटके आया और एक अमराईमें चिन्तामें पड़े पड़े दिन पूरा किया । रात्रिको मेरी इच्छा अपने घरके चरित्रके देखनेकी हुई, और प्यारे जयदेव ! जिस चरित्रके देखनेका कोई स्वप्नमें भी विश्वास नहीं कर सकता, उसे मैं अपनी आखोंसे देख भी चुका ! पापकी सीमा देख चुका, लोकमर्यादा और धर्मको सन्मुख भस्म होते देख-चुका और देख चुका सम्पूर्ण संसारको सर्वथा अज्ञानांधकारमें आविर्भूत ! सो अव यहा (ससारमें) एक घडी भी कल नहीं पड़ती, वहुत जल्दी तारणतरण श्रीगुरुदेवकी चरणशरणको प्राप्त होता हूं ।

मैंने क्या देखा, उसे लिखके इस पत्रको घृणास्पद और कलंकित नहीं वनाना चाहता हूं। तुम स्वयं सव कुछ देख और समझ लेगे । यह चावियोंका गुच्छा तुम्हें सोंपे जाता हूं और साथ ही एक वसीयतनामा लिखे जाता हूं कि आजसे मेरे घरके तुम सव प्रकारसे स्वामी हुए । अपना उत्तराधिकारी वनानेके लिये मैं तुमसे अधिक सुयोग्य किसीको नहीं देखता । मेरे परिश्रमसे कमाये हुए धनके भोगनेका पात्र मैं तुम्हें ही समझता हूं । यह धन तुम जैसे सदाचारी, धर्मात्मा और विचारशील पुरुषके हाथमें पड़कर अवश्य ही सन्मार्गमें लगेगा, यह निश्चय है ।

वसीयतनामेंमे जिस धनका अधिकार तुम्हे दिया है । उसके सिवाय मेरी खास तिजोरीमें कुछ रुपया नकद रक्खा है, उसके विषयमे मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि वह किसी ऐसे कार्यमें लगाया जावे, जिससे सद्धर्मकी सच्ची प्रभावना और सच्चा दान हो ।

मैं जाता हूं, परन्तु मेरे लिये तुम खेद नहीं करना । अव मैं अपने आत्माको और मलिन नहीं रखना चाहता । सर्व जीवोंके प्रति मेरा मैत्रीभाव है । मेरे हृदयमें यह श्लोकार्ध वारवार उठा करता है, "**कदाहं सम्भविष्यामि पाणिपात्रो दिगम्बरः ।**" इत्यलम्

तुम्हारा हितैषी-**रतनचन्द** ।

इस चिट्ठीके वाचते ही जयदेवकी आखोंके साम्हने अंधेरा छा गया, और वह इसका कुछ भी निश्चय नहीं कर सका कि अब मुझे क्या करना चाहिये। चिट्ठीमें लिखी हुई घटनाके आभासको आंखोंसे देखनेके लिये एकाएक घरसे निकल पड़ा। हवेलीके पास जाकर देखा तो, चारों तरफके किवाड़ वन्द है और ताले पड़े हुए है। उन्हें देखकर जयदेव वड़े संशयमें पड़ा कि हे विधाता! यह क्या लीला है? आज क्या हुआ? रामकुवरि कहां चली गई? किवाड़ किसने वन्द किये? क्या सेठजीकी चिट्ठीका यही अर्थ है? इस प्रकार वहुतसे प्रश्न मनमें ही करके जयदेवने उन सवका उत्तर पानेके लिये हवेलीका मुख्य द्वार खोलकर रतनचन्दके सोनेके कमरेमें प्रवेश किया और देखा कि रामकुवरि तथा हीरालाल दोनों एक पलंगसे जकड़े हुए पड़े है, और दोनोंके सिराने अपनी चिट्ठीकी नाई रतनचन्दकी कलमसे लिखा हुआ एक २ कागजका पुर्जा पड़ा हुआ है। उन्हें इस अवस्थामें देखते ही जयदेव अपनी चिट्ठीका आशय साफ समझ गया।

हाय! अव न जाने यह दुष्ट हम लोगोंके साथ कैसा वर्ताव करेगा। क्या हमारे दुष्कर्मोकी खवर इसको भी लग चुकी? और क्या वे (रतनचन्द) इसीको सव अधिकार सोंपके चल दिये है? यदि ऐसा हुआ तो वड़ी कठिनता हुई। हमने इसके साथ कभी भलाईकी इच्छा नहीं की है सदा इसको मार डालनेकी तथा घरसे निकलवा देनेकी चिन्ता की है। तव फिर इससे छुटकारा पानेकी कैसे आशा की जा सकती है? अफसोस! हमारे ऐशआरामके दिनोंमें

धूल पड़ गई और अब यह जब हमारे कृत्यको प्रगट करेगा, तब हम कैसे किसको मुंह दिखावेंगे । उन दोनों दुराचारियोंके हृदयमें ऐसे भयानक विचार आ आके डराने लगे और उनसे उनका शरीर फिर कंपायमान होने लगा । जयदेव क्षणार्ध उनके साम्हने स्तब्ध खड़ा रहा ।

विंश पर्व ।

विलासपुरके राजभवनके समीप ही एक कन्यापाठशालाकी इमारत है । यह इमारत यद्यपि बहुत बड़ी नहीं है, परन्तु देखनेमें बड़ी सुडौल और साफ है । इसके चारों तरफ एक सुन्दर बगीचा लगा हुआ है, जिसमें नाना प्रकारके सुन्दर सुगन्धयुक्त पुष्प खिल रहे हैं । यह बगीचा एक परकोटेसे घिरा हुआ है । भीतर जानेके लिये परकोटेमें एक द्वार है, वहापर निरन्तर दो पहरेदारोंका पहरा रहता है । द्वारमेंसे भीतर जाते ही पाठशालाका मुख्य द्वार मिलता है । वहापर एक षट्कोणाकृति चबूतरा बना हुआ है, जिसके बीचोंबीच एक संगमर्मरके पत्थरपर बड़े २ और सुन्दर अक्षरोंमें यह लेख खुदा हुआ है,–

नमः सरस्वत्यै

श्रीसरस्वती पाठशाला ।

विलासपुरके स्वामी महाराजाधिराज श्री १०८ विक्रमसिंहजीकी बुद्धिमती पुत्री सरस्वती (सुशीला) ने कुलीन कन्याओं और स्त्रियोंके पठनपाठनके लिये और उन्हें विद्याके आभूषणसे यथार्थमें सुन्दर बनानेके लिये इस पाठशालाकी स्थापना की है । विलासपुर राज्यका जबतक संसारमें अस्तित्व रहेगा, जबतक यह पाठशाला श्रीजैनशासनके प्रसादसे परिचालित रहेगी । श्रीरस्तु. शुभम्भूयात्.

कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा

पाठशालामें प्रवेश करते ही पहले मुख्य अध्यापिकाकी कक्षा मिलती है। इस कक्षाका कमरा बड़ी सुन्दरतासे सजाया हुआ है। सब प्रकारकी मनोहर आरायशके अतिरिक्त इसकी दीवालोंपर जो चित्र खिंचे हुए हैं वे स्त्रियोंके चित्तोंपर एक विचित्र ही प्रकारका असर करते हैं। सीता, मनोरमा, गुणमाला, द्रौपदी, अंजना सुन्दरी आदि प्रतिव्रता स्त्रियोंके चित्र चित्रकारने इस खूबीसे चित्रित किये हैं, कि उनके दर्शन मात्रसे उन पवित्रा पावना दिव्याङ्गनाओके पुरा चरित्र सम्मुख होकर नृत्य करने लगते हैं। नराधम रावणका वह अनुनय और पूजनीय सीताकी वह घृणा युक्त फिटकार जो साम्ह- नेके चित्रमें झलक रही है, किस स्त्रीके चरित्रको आदर्श न बनावेगी? नृकीट कीचकके पैशाचिक कृत्यका प्रतिफल और द्रौपदीके उस प्रातःस्मरणीय शीलकी रक्षा किसे दुष्कृत्योसे पराङ्मुख और सत्का- र्योंके सन्मुख न करेगी? अहा, हा! मनोरमाका वह वैजयन्ती न- गरीके फाटक खोलनेका दृश्य कैसा शिक्षाप्रद है। मनोरमाके पाति- व्रतकी वे दुःसह प्रभायें जो उसके मुखमंडलपर प्रस्फुटित हो रही है और नगरकी सहस्रावधि स्त्रियोंकी पापपूर्ण मलीन मुद्रायें जो श्रेणीव- द्ध दिखाई दे रही है, एक वार ही चित्तको पातिव्रत–भक्त और दुश्चारित्र–त्यागी बना देती है। प्रत्येक चित्रके नीचे चित्रके कथा यादि ऐसा हुआ तो वैसे उल्लेख किया गया है, उससे चित्रका ईकी इच्छा नहीं की है रायता मिलती है। चित्रोंके ऊपर जो स्थान लवा देनेकी चिन्ता की है।स्त्रियोपयोगी शिक्षायें लिखी हैं। कहा जा आशा की जा सकती है? गमें अन्य कुछ न पढकर केवल उन

शिक्षाओंको हृदयमें धारण कर लेनेसे ही प्रत्येक कन्या और स्त्री सुयोग्यगृहिणी बन सकती है। अपने पाठक और पाठिकाओंकी प्रसन्नताके लिये उन शिक्षाओंके कुछ वाक्य यहा उद्धृत किये जाते है।

१. संसारमें समाजरूपी शकट (गाड़ी) दुनियान्त्रित पद्धतिसे तब ही चल सकता है, जब उसके पुरुष और स्त्री रूपी दोनों चक्र एक सरीखे सुदृढ़ और सदाचारी होवें।

२. जैसे पुरुषका विद्वान् होना आवश्यक है उसी प्रकार किंवहुना उससे भी अधिक स्त्रीका विदुषी होना आवश्यक है। क्योंकि स्त्री पुरुषकी जननी है। विदुषी माताका पुत्र अवश्य ही विद्वान् होता है।

३. बालकोंमें अनुकरण करनेकी शक्ति बहुत तीव्र होती है। विदुषी माताका पुत्र अपनी माताके सम्पूर्ण सद्गुणोंका अनुकरण करके जगन्मान्य हो जाता है।

४. गृह (घर) वही है, जिसमें सदाचारिणी और विदुषी गृहिणी (घरवाली) हो। काष्ठ मिट्टीके ढेरको गृह नहीं कहते है।

५. स्त्रीकी शोभा पातिव्रत है, और उस पातिव्रतकी सच्ची पालना तब तक नहीं हो सकती जबतक कि वह सुशिक्षिता विद्यावती न हो। अतएव पातिव्रत धर्मसे सुशोभित होनेके लिये स्त्रीका विद्या पढ़ना मुख्य कर्तव्य है।

६. शीलरत्नको जो स्त्री अपने हृदयमें धारण किये है उसे संसारके अन्य चमकते हुए रत्नोंके आभूषणोंकी आवश्यकता नहीं है।

७. उस रति-रंभाके रूपको जीतनेवाली स्त्रीसे जो कि परपुरुष-रत है, वह कुरूपिनी, दरिद्रा, भिखारिनी हजारगुणी अच्छी है जोकि अपने पतिको ही अपना सर्वस्व समझती है।

८. विचार दृष्टिसे देखा जावे तो स्त्रीके लिये पतिसेवाके अतिरिक्त और कोई व्रत उपवासादि महत्फल-प्रद नहीं है। जो स्त्री पतिव्रता है, उसके सम्पूर्ण व्रतोंका पालन स्वयं हो जाता है; परन्तु जो दुराचारिणी है वह नाना व्रत उपवास करती हुई भी दुर्गतिकी पात्र होती है।

९. स्त्रीका परम सुन्दर आभूषण लज्जा है।

१०. सदाचारिणी स्त्रियां स्वतंत्रताका तिरस्कार करती है। वे बालपनमें पिताके, युवावस्थामें पतिके और वृद्धकालमें पुत्रोंके आधीन ही रहती है। वह पारतंत्र्य स्त्रियोंकी शील—रक्षाका अजेय किला है।

११. स्त्रीको एक शरीरसे दो जन्म धारण करने पड़ते है। जिस दिन पतिके घरमें प्रवेश होता है, स्त्रीके द्वितीय जन्मका वही पहला दिन है। पहले जन्मकी शिक्षा दूसरे जन्ममें उसे सुखी और यशस्वी बनाती है। दूसरा जन्म बड़ी सावधानीसे अतिवाहित करना चाहिये।

१२. अपने पतिके प्रत्येक कार्यमें जो मंत्रीका काम देती है, सेवा करनेमें जो दासीके समान है, भोजन करानेमें जो माताका भाव धारण करती है, शय्यामें जो रम्भाके तुल्य सुखदायनी है, पृथ्वीके समान जिसमें क्षमा है और जो सम्पूर्ण गृहको धर्ममार्गपर चलाती है वही स्त्री—स्त्री है।

१३. पतिके प्रत्येक आचार, विचार और शरीरकी व्यवस्था जो सहस्त्र नेत्रोंसे देखती है, परन्तु परपतिकी ओर देखनेमें जो नेत्र-शक्ति-हीन है वही स्त्री सुदृशी है।

१४ स्त्रियोंके नष्ट होनेके सात द्वार हैं। पिताके घर स्वतंत्रतासे रहना, मेलोंमें जाना, परपुरुषोंके साथ वार्तालापका सम्बन्ध रखना, पतिका निरन्तर विदेशमें रहना, पुंश्चलीस्त्रियोंकी संगति रखना, अक्षर-शत्रु रहना और पतिका बुढ़ापा।

१५. द्रौपदी, सीता, अंजना, सुंदरी, मनोरमा, सुलोचना आदि जितनी पुराणप्रसिद्ध सच्चरित्रा स्त्रियां हुई हैं, वे सब पढ़ी लिखीं पंडिता थीं। अतएव कहा जा सकता है कि स्त्रियोंको सच्चरित्रा बनानेमें निर्मल विद्या एक कारण है।

१६. जबतक स्त्रियां शास्त्रविहित श्रावककर्मोंको अर्थात् गृहस्थके आचार विचारोंमें दक्ष नहीं होंगीं, तबतक पुरुष अपने धर्मकी भली-भाति रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हो सकते।

१७. स्त्रियां स्वभावतः पंडिता होती है। उनके कोमल कमनीय हृदयपर सद्विद्या बहुत शीघ्र अपना अधिकार जमा लेती है। स्त्रियों को धर्मशिक्षा देना गृहस्थधर्मका जीवन है।

१८. स्त्रीका अपने धर्मसे एक बार ही पतित होना असह्य, अक्षम्य और कुलविप्लवकर है, इसलिये उसे अपने प्राणोंसे भी अधिक सचेत रहना चाहिये।

१९. क्षणभरके सुखके लिये कामांध होकर जो स्त्रिया पतित हो जाती है, वे अपनेको अपने हाथसे एक बड़ेभारी भयानक समु-

द्रमें पटक देती है ! नरकोंके घोर दुखोंमें उन्हें अनेक सागर पड़े २ बिललाना पड़ता है।

२०. स्त्रीकी पर्याय स्वभावसे ही निंद्य और पामर कही जाती है, परन्तु वह सद्विद्या, सदाचार और सुशीलतासे जगद्वन्द्य और परम पवित्र भी मानी गई है। पुराणप्रसिद्ध स्त्रियोंका लोग आज भी आदरदृष्टिसे नामोच्चारण करते है।

* * * *

मुख्य कक्षाके कमरेमें जो कुछ सजावट है, वह इतनी अच्छी और अधिक है कि उसका वर्णन जितना भी किया जावे किसी प्रकार अरुचिकर नहीं हो सकता, परन्तु हमारी दृष्टिपर इन शिक्षाओं और सुन्दर दृश्योंके आगे वह सजावट कुछ प्रभाव न जमा सकी।

इस कमरेको अतिवाहित करके आगे चलनेसे एक प्रदर्शनीका कमरा मिलता है, जिसे देखते ही आंखें ठंडी हो जाती हैं। स्त्रियोंके हाथके बनाये हुए नाना प्रकारके खिलौने, उनके वस्त्र, चित्रकारीके नमूने, यथास्थान रक्खे हुए है। स्थान स्थानपर सुन्दर दर्शनीय वर्ण माला-संगठित्त हाथकी लिखी हुई पोथियां रक्खी हुई है। ये पोथि-यां भी विद्यार्थिनी बालागणोंकी लिखी हुई हैं और उनमें विशेषतः पुराणप्रसिद्ध पतिव्रता स्त्रियोंके चरित्र लिखे गये है। जिन बालाओंने अपनी लेखनकलामें पारितोषिक प्राप्त किया है, यहां उन्हींकी पो-थियोंको स्थान मिला है। एक पोथीके मुखपृष्ठपर लिखे हुए थोड़ेसे वाक्य हमको बहुत प्यारे लगे।

" स्त्रीसे जगत्पूज्य सर्वज्ञदेव उत्पन्न होते है। सर्वज्ञदेव (तीर्थ-

कर) से मोक्षमार्गका प्रकाशक परमहितकारी शास्त्र उत्पन्न होता है। शास्त्रसे संसारके पापसमूह नष्ट होते है और पापोंके नाश होनेसे बाधारहित सुखकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार परम्परागत मोक्षसुख-की देनेवाली सदाचारिणी कुलीन स्त्रीको पवित्र जानके सज्जन् स्वीकार करते है।"

प्रदर्शनीके कमरेके आगे एक कमरा पाक–विधि (रसोई) और सामान्यतः कुटुम्बोपयोगी वैद्यक और धात्रीविद्या सिखलानेका है। यहा केवल वे स्त्रियां शिक्षा पाती हैं, जो प्रौढ़वयकी त [illegible] अनुभवशीला हैं।

इसके आगे अन्य भागोंमें शेष कक्षायें है, जिनमें उत्तीर्ण हो[illegible] कन्या तथा स्त्रियां उपर्युक्त मुख्य कक्षामें प्रवेश करती हैं। प्रत्[illegible] कक्षामें एक २ अध्यापिका है। अध्यपिकाओंमें कुछ तो कुलीन घरोंकी प्रौढ़वयस्का स्त्रियों है, जो नियत समयके लिये परोप[illegible] बुद्धिसे पढ़ानेको आती है; और कुछ ब्रह्मचारिणी साध्वी स्त्रि[illegible] अर्यिका धर्म स्वीकार करनेके सन्मुख है।

श्रीमती सुशीला इसी पाठशालाकी मुख्य कक्षामें [illegible] और समय मिलनेपर अन्यकक्षाओंकी कन्याओंको पढ़ाती भी [illegible] नरात उसका ध्यान इसी पाठशालाकी वृद्धिकी ओर रहता है [illegible] नके अतिरिक्त उनकी स्फटिक तुल्य निर्मल बुद्धिमें अब लो [illegible] भी दूसरे रंगकी परछाई नहीं पड़ी है। लोग कहते है [illegible] कोई देवकन्या है।

एकविंश पर्व ।

जगत्प्रकाशक सूर्यदेव अपने समग्र दिनका प्रवास पूर्ण करके अस्ताचलकी गुहाओंमें विश्रांति पानेके प्रयत्नमें थे। जैसे कोई पुरुष प्रवासके परिश्रमसे अत्यन्त व्याकुल हो जाता है उसी प्रकार चार पहरके अखंड प्रवासके श्रमसे पीड़ित प्रभाकर एक लाल रंगके गोलेके समान दिखलाई देते थे और संकेतसे संसारी जनोंको उपदेश देते थे, कि जैसे मैं अपने कार्यमें सदैव तत्पर रहके परिश्रम करता हूं, और विश्रान्ति पाकर पुनः कर्ममें प्रवृत्त हो जाता हूं, उसी प्रकार तुम्हें भी करना चाहिये, अर्थात् आलस्यको छोड़ देना चाहिये।

इस समय एक प्रौढ़वयका पुरुष एक वृक्षकी डालीसे घोड़ेको बांधे हुए उसकी छायामें ज़ीनके सहारे बैठा हुआ है। यह पुरुष ६० वर्षोंको उल्लंघन कर चुका है, परन्तु उसके सुदृढ़ शरीर, काले केश और रक्तवर्ण मुखमंडलको देखकर कह सकते है कि अभी वह [illegible]० से बहुत पीछे है। उसके साम्हने एक काला हरिण बाणों-से [illegible] हुआ अचेतन अवस्थामें पड़ा है। उस वेचारेके मुंहमें घासके कुछ तृण [illegible] हुए है। बड़ा विस्तृत जंगल है। बड़ी २ पर्वतमालाएं सुदूर तक [illegible] फैलाये पड़ी है। इतस्ततः जंगली जानवर अपने भयानक [illegible]से चित्तको उद्विग्न कर रहे है।

संध्याका[illegible] पूर्वकी ओरसे दौड़ा हुआ आ रहा था, वृक्षलतापताओंपर [illegible] उसका अधिकार हो रहा था कि उसके साथ ही एक [illegible] शुभ्रवस्त्र धारण किये हुए आया और उस प्रौढ़ पुरुष-के [illegible] आके खड़ा हो गया। इस आगुन्तुककी वय अधिकसे

अधिक अठारह वर्षकी होगी। मुखपर स्मश्रुओंकी रेखा आ रही थी, उन्नत मस्तक और गभीरमुखमुद्रासे जान पड़ता था कि यह कोई परमविद्वान् क्षत्रिय युवा है।

इस युवाको साम्हने खड़ा देखकर जीनका सहारा छोड़के पूर्वोल्लिखित पुरुष बैठ गया और अपने पास ही पड़े हुए कम्बलपर बैठनेके लिये युवासे कहा। युवा विनयपूर्वक बैठ गया और बोला, क्या मै आपका परिचय पा सकता हूं? जान पड़ता है, आप कोई क्षत्रियश्रेष्ठ है। प्रौढ़ पुरुषने कहा, मै त्रिलासपुरका राजा हूं, मेरा नाम विक्रमसिंह है। मै आज बिलासपुरसे आखेटके लिये निकला था, परन्तु इस हरिणका पीछा करनेसे सम्पूर्ण साथियोंको छोड़कर इस जंगलमें आ फँसा हूं। मार्गका पता नहीं लगता, प्यासके मारे बड़ी विकलता हो रही है। देखिये! वह घोड़ा भी जीभ निकाल रहा है। 'अब कर्तव्य क्या है' यही सोच रहा था कि आप अचानक आ पहुचे।

युवा—(आखेटकी बातसे जो घृणा हुई थी, उसे दबाकर) तो आप थोडी देर यहां ठहरें, पास ही एक जलाशय है, वहासे मैं आपके लिये जल लिये आता हूं। आपकी विकलतासे मुझे दुःख होता है।

विक्रम—नहीं! आपको कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं है। मै स्वयं वहां चलूंगा। आपकी इतनी ही सहायता बहुत है कि जलाशय बतला दें।

ऐसा कहकर विक्रमसिंह वहांसे उठ खड़े हुए और घोड़ेकी बाग पकड़के धीरे २ आगत युवाके साथ एक ओरको चल पडे, जहासे

कि वह युवा आया था। थोड़ी देर चलनेपर एक टीलेको उल्लंघन करते ही कुछ दूरीपर हरियालीकी आभा दिखलाई दी, जिसके दर्शन मात्रसे विक्रमसिंहका चित्त हरा हो गया। आगे वही हरियाली एक सुन्दर बगीचेका रूप धारण करके दिखलाई देने लगी, जिसके कि बीचमें एक छोटासा सुडौल बंगला भी बना हुआ था। बंगलेके मस्तकपर एक ध्वजा फहरा रही थी, जिसमें स्पष्ट और सुन्दर अक्षरोंमें "**अहिंसा परमो धर्मः**"का सिद्धांत लिखा हुआ था। विक्रमसिंहने उसे बड़े ध्यानसे बांचा और कुछ संकुचित होके अपने पीछेकी ओर देखा।

बगीचेके द्वारपर पहुंचते ही कुछ आगेब ढ़कर युवाने आवाज दी, जिसे सुनते ही दो तीन सेवक आ गये। फाटक खोल दिया गया और इशारा पाकर एकने महाराजके घोड़ेको थाम लिया, दूसरेने दो तीन कुर्सियां लाकर बागके बीचमें डाल दीं। युवा और विक्रमसिंह दोनों उनपर बैठ गये। नाना प्रकारके सुगन्धित फूलोंका सौरभ ले लेकर बागका समीर अपने अतिथिका स्वागत करने लगा। एक सेवक आकर पंखा करने लगा और दूसरा कुछ थोड़ेसे मेवे फल और शीतल जलकी एक झारी साम्हने रखके चला गया।

युवा—राजन्! आप सब दिनके थके हुए है, इस समय यदि एकाएक जल पियेंगे तो हानि होगी। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि इस समय थोड़ेसे मेवे और फलादि खाकर ही आप तृप्तिलाभ करें, जल पान पीछे करें।

विक्रम०—इस समय मै आपका आभारी हूं, परन्तु इसके

पहले कृपा करके यदि कुछ हानि न हो, तो आप अपना परिचय दे देवें।

युवा--हा ! राजनीतिके अनुसार तो यह अवश्य है कि राजा लोग सदा सशंकित चित्त रहके कार्य करें । क्योंकि "**हृदयं च न विश्वास्यं राजभिः किं परो नरः**" अर्थात् राजाओंको अपने हृदयपर भी विश्वास नहीं करना चाहिये, दूसरे पुरुषोंकी तो बात ही क्या है ? परन्तु यहां आप वह चिन्ता छोड़ दें, यह स्थान आपके लिये सब प्रकारसे निर्विघ्न है। मै आपके शुभचिंतक विजयपुर राज्यके एक वणिकका पुत्र हूं। मेरे पिताका नाम श्रीचन्द्र है और लोग मुझसे जयदेव कहा करते है। यह बंगला मैंने अपने चित्तको बहलाने और विद्याभ्यास करनेके लिये बनवाया है। बस ! यही मेरा सामान्य परिचय है।

विक्रम०--नहीं ! शंकाकी कोई बात नहीं थी । तुम्हारे जैसे सौम्याकृति सुशील पुरुषको देखते ही वह राजनीतिकी बात कोसों दूर भाग गई थी। परन्तु परिचय पायेविना प्रेम-बन्धन दृढ़ नहीं होता, इस हेतु सहज स्वभावसे पूछ लेना ही मैंने योग्य समझा। और अपने उपकारीका परिचय पा लेना है भी तो उचित। अच्छा तो अब तुम्हें भी इस प्रसादमें मेरा साथ देना चाहिये।

जय०--राजन् ! आप क्षुधित हैं, तृषित है और इस समय मेरे अतिथि हैं, इसलिये आपको इतना संकोच करनेकी आवश्यकता नहीं थी। परन्तु जब आपका आग्रह है, तो मै उसको अमान्य भी नहीं कर सकता। लीजिये !

ऐसा कहकर जयदेव विक्रमसिंहके साथ थालमेंसे फल उठाके खाने लगा। विक्रमसिंहने प्रसन्नतासे संतुष्ट होके फलाहार किया और पश्चात् शीतल जलका पान करके तृप्ति—लाभ की।

संध्या हो गई। प्रतीचीके मुखमंडलकी रक्तिमा जो कुछ समयके लिये हुई थी, वह भी विलीन हो गई। समीरके धीमे २ परन्तु ठंडे २ झोके आने लगे। दिन भरके तापसे व्याकुल हुई चिड़ियां चुहचुहाती हुई अपने २ बसेरे ढूंढने लगीं। अंधकारने अपनी काली चादरसे समस्त जगत्को ढककर अपना एकाधिपत्य प्रगट किया। यह देख गंभीराशय आकाशने उसकी मूर्खतापर मुसुकरा दिया। तारागण खिल उठे। एक सेवकने आके निवेदन किया, "क्या आज्ञा होती है? मै उपस्थित हूं। वैठकखानेमें सब प्रबन्ध हो चुका है।"

जयदेव०—महाराज! यदि इच्छा हो तो वैठकखानेमें चलिये और कुछ आवश्यकता हो तो इस सेवकको आज्ञा दीजिये।"

विक्रम०—अच्छा! चलिये। (सेवकसे) यहांसे अनुमान आध कोस उत्तरकी ओर एक हरिण पड़ा हुआ है, तुम उसे उठा लाओ।

सेवक आश्चर्ययुक्त होके अपने मालिककी ओर देखता हुआ और कुछ सकुचता हुआ "जो आज्ञा" कहकर वहांसे चल दिया। इधर जयदेव उसे सुनते ही एक दीर्घ चिन्ता तथा शोकमें निमग्न हो गया और उसकी आकृतिमें तत्काल ही बड़ा भारी परिवर्तन हो गया। यह देख दूरदर्शी राजा एक बड़े विचारमें पड़ गया। बंगलेकी वह 'अ-

हिंसा परमो धर्मः' वाली ध्वजा उसकी आखोंके साम्हने फिर लहराने लगी। वह जान गया, दयालु जयदेवके चित्तपर मेरे मृग-वधके कृत्यसे बड़ा भारी आघात पहुंचा है। हरिणकी लाशपर जब इसकी दृष्टि पड़ी थी, तब ही यह दुःखी हुआ था; परन्तु अपनी सज्जनतासे घृणा प्रकाश न करके इसने मुझे अपना अतिथि बनाया था। इस समय मेरे उसी मृगयामोहने इसके हृदयके घावपर नमकका काम किया है। मैने वहुत बुरा किया, जो पुनः उस कृत्यको इसके सन्मुख लानेका उद्योग किया। (प्रगट) प्रिय जयदेव! क्या मै जान सकता हूं कि इस समय आपकी मुद्रापर एकाएक शोक छा जानेका क्या कारण है?

महाराजका उक्त प्रश्न जयदेवने सर्वथा नहीं सुना। वह उस समय इस उधेड़ बुनमें लगा हुआ था कि "इन आंखोंसे अब वह दीन मृगका कलेवर पुन. कैसे देखा जावेगा? हाय! उसके मुहमें उलझे हुए छोटे २ तृणोंके स्मरणसे मुझे रुलाई आती है। यह मुझसे कैसे हो सकेगा कि अपने अतिथिसे इस विषयमें कुछ कटुक व्यवहार करूं और यह भी कैसे हो सकता है कि मेरा सुकोमल हृदय उस दयाके वेगको रोक सके, जो हरिणके देखते ही और भी उत्तेजित हो जावेगा। हाय! तो क्या मेरेद्वारा महाराज विक्रमसिंहका जिन्हें कि मै बड़ा मान चुका हूं, अपमान होगा? नहीं मै उन्हें समझाऊंगा समझानेमें अपमानकी कौनसी बात है?" जयदेवकी विचार तरंगें यहा तक पहुंची थीं कि महाराजने अपने प्रश्नका उत्तर न पाकर उसे फिर दुहराया और

उसे सुनते ही जयदेव चौंक पड़ा। ' क्या उत्तर दिया जावे ' बड़ी कठिनतासे इसका निश्चय करके उसने कहा; " पृथ्वीपाल! आपके मुँहसे हरिण शब्द निकलते ही मेरी मुद्रापर उस दिन हीन हरिणके दयार्द्र कलेवरका असर हो गया होगा, और कुछ नहीं।"

विक्रम०—यदि ऐसा है तो उस सेवकको लौटा लेना चाहिये। जिस कार्यसे किसीको कष्ट हो मै उसे कभी नहीं करूंगा। (दूसरे सेवकसे) अच्छा, तुम उसे दौड़कर लौटा लाओ।

जय०—राजन्! क्या आप इस पूज्य वाक्यमें दृढ़ प्रतिज्ञ होते है कि ' जिस कार्यसे किसी (आत्मा) को कष्ट हो, मै उसे कभी नहीं करूगा।" अहा! कैसा सुन्दर वाक्य है। प्रत्येक मनुष्यका यही धर्म है। और हे पृथ्वीपाल! आप जब पृथ्वीके पालक है, तब आपको कभी यह अधिकार नहीं है कि किसीके आत्माको कष्ट दें। अपराध क्षमा हो, महाराज! जो राजा निरपराधी, दीन, हीन स्वेच्छा-विहारी जीवोंको विना कारण कष्ट देता है, वह पृथ्वीका रक्षक नहीं, किन्तु भक्षक है। क्षत्रियोंका धर्म रक्षा करनेका है, न कि भक्षण करनेका। नरनाथ! किंचित् विचार कीजिये कि सम्पूर्ण प्राणी दुष्टोंसे संत्रस्त होकर अपने राजाके द्वारपर जाके पुकार करते है और रक्षा पाते है; परन्तु जब राजा ही उनका शत्रु बन जावे तो वे वेचारे अपनी पुकार किसको जाकर सुनावें। धर्मावतार! लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि जब कोई दांतोंमें तिनका दबाके किसीके सम्मुख आता है, तो वह अवश्य ही रक्षा पाता है; परन्तु हाय! यह बड़े दुःखकी

बात है कि बेचारे वनवासी हरिण जिनके मुखमें निरतर तृणसमूह रहता है और जो किसीका कभी कुछ अपराध नहीं करते है, वे भी पृथ्वीरक्षक राजाओंके बाणोंका निशाना बनते हैं ! हाय ! उस झुंडके हरिणोंकी क्या दशा होती होगी, जिसका एक सरताज अकाल ही में कालके गालमें जा फंसा है । महाराज ! मै आपसे हाथ जोड़के पूछता हूं कि क्या इस एक समनस्क पंचेंद्रिय पशुके सबसे प्यारे प्राणोका घात करके आपको अपनी एक छोटीसी हवस मारनेके अतिरिक्त और कुछ लाभ हुआ है ? आप चाहते तो उस हवसको और किसी तरह पूर्ण कर लेते । परन्तु न्यायाधीश ! उस बेचारे पशुके प्यारे प्राण अब पुनः लौट आवें, इसके लिये संसारमें क्या कोई उपाय है ?

विक्रम०---नहीं ! दयालु जयदेव ! बस करो अब मुझे अधिक लज्जित न करो । तुम्हारे वचन-बाणोंसे मेरा हृदय विद्ध हो गया है, और उसमेंसे दयामृतका प्रवाह निकलकर सारे शरीरको तर कर रहा है । यदि विश्वास न हो तो देख लो, मेरे नेत्रोंमेंसे वह परमामृत बाहिर भी निकल रहा है ।

जयदेव---जय हो महाराज की ! जिनशासनके प्रसादसे आपकी विजय हो । भगवति दये ! इस पराक्रमी क्षत्रियके हृदयमें तू सतत निवास कर, ऐसा विस्तृत स्थान अब तुम्हें अन्यत्र नहीं मिलेगा । ऐसा कहते २ जयदेव गद्गद हो गया, और यह कहते हुए विक्रमसिंहके पैरोंपर गिर पड़ा कि नरनाथ ! आज आप मेरे पूज्य हुए ।

राजत्व, क्षात्रियत्व और ईश्वरत्व तीनोंको मैं इस समय आपमें देख रहा हूं। आपके आनेसे आज मेरा स्थान पवित्र हो गया।

विक्रमसिंहने जयदेवको उठाकर छातीसे लगा लिया, और प्रेमाश्रु बहाते हुए कहा "प्यारे जयदेव! तुम्हारे मातापिता धन्य है जिनके तुम सरीखा पुत्र है। यदि पुत्र हो तो तुम्हारे ही ऐसा हो। आज मुझपर जो तुम्हारा उपकार है मैं उसे आजन्म नहीं भूल सकता। भूतदयाके विना मनुष्य होकर भी मुझमें मनुष्यत्व नहीं था, जिसे मैने तुम्हारे प्रतापसे पा लिया है। तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरा कुल परंपरागत वही धर्म है, जिससे अधिक जीवदया पालनका दावा करनेवाला संसारमें दूसरा धर्म नहीं है। मेरे सम्पूर्ण कुटुम्बकी श्रद्धा उसी जिनधर्ममें ही है और मैं भी जिनधर्मका उपासक हूं; परन्तु कहते हुए लज्जा आती है कि इतनेपर भी मैं इस मृगयाके दुर्व्यसनका त्यागी नहीं था, जिसे तुमने सहज ही छुड़ा दिया।

जयदेव—महाराज! इस विषयमें काललब्धिका ही उपकार समझना चाहिये। मैने दो चार प्रार्थनाओंके अतिरिक्त और किया ही क्या है? अस्तु अब समय हो गया है, भीतर चलके विश्राम कीजिये। क्योंकि आप दिन भरके थके मांदे है, और मुझे आज्ञा दीजिये कि मै संध्यावन्दनादि क्रियाओंसे छुट्टी पा लूं। महाराज, 'बहुत अच्छा' कहके विश्रामगृहमें गये और जयदेव अपने विद्यागृहकी ओर गया।

अनुमान दो घंटेके पश्चात् जयदेव अपने संध्याकर्मसे छुट्टी पाकर

विश्रामगृहकी ओर गया । देखा तो, महाराज जाग रहे है । जयदेवके पावोंकी आहट पाकर वे उठ बैठे और बोले, आओ, न जाने क्यों आज निद्रा नहीं आती, कुछ समय तुम्हारे साथ बातचीत करके ही चित्तको प्रसन्न करें । आज्ञा पाकर जयदेव बैठ गया, और दोनोंमें ज्ञान विषयक चरचा छिड़ गई । धर्म, न्याय, व्याकरण, साहित्य राजनीति आदि जिन २ विषयोंमें विक्रमसिंहने देखा, जयदेवको परिपूर्ण पाया । इसके अतिरिक्त जयदेवके सुदृढ़ पराक्रमी और सुन्दर शरीर, मनोहर लावण्य तथा स्वाभाविक नम्रतादि विशेष गुणोंकी भी न्यूनता नहीं थी । इसलिये विक्रमसिंहके हृदयमें प्रेमका सचार होकर एकाएक यह बात प्रतिध्वनित हुई कि सर्वगुणसम्पन्न सुशीलाके लिये क्या कोई इससे बढ़कर वर मिल सकता है ? (ग्रन्थकार) नहीं ! नहीं ! नहीं !

रात्रि अधिक बीत गई थी, इसलिये जयदेवने निद्रा लेनेका प्रस्ताव किया । जिसका विक्रमसिंहने अनुमोदन किया। परन्तु अपने प्रयोजनकी सिद्धि असिद्धि जाननेके लिये चलते चलते जयदेवसे यह पूछ ही लिया कि अभी तुम्हारा विवाह हुआ है कि नहीं ? लज्जित होता हुआ जयदेव 'नहीं' कहकर अपने शयनगृहको चला गया । महाराज विक्रमसिंहने " सरस्वती कन्याके साथ जयदेवका पाणिग्रहण होना समुचित है कि नहीं ? " इसी विचारमें उछलते डूबते हुए निद्रा देवीकी गोदमें सिर रख दिया । इधर जयदेव एक नवीन ही उधेड़ बुनमें लगा । जबतक निद्रा नहीं आई वह तर्क, अनुमान और युक्तियोंसे इस बातका निर्णय करनेमें अपनी बुद्धिको लड़ाता रहा कि,-

"तुम्हारा विवाह हुआ है कि नहीं ?" यह पूछनेमें महाराजका क्या अभिप्राय है। निद्रा आनेपर जयदेवने आज अनेक शुभ स्वप्न देखे।

द्वाविंश पर्व।

वसन्तका प्रभात बड़ा सुहावना होता है। शय्यासे उठते ही णमोकारमंत्रका उच्चारण करके "मै कौन हूं? यह आंख, कान, नाकवाला कौन है? मुझ चैतन्यनाथसे इस जड़रूप पुद्गलका सम्बन्ध क्यों हुआ? और संसार क्या है?" आदि प्रश्नोंके उत्तर अन्यान्य विचार तरंगोंको रोककर जब शान्तिताके साथ मनन किये जाते हैं, विश्राम पाई हुई निर्मल बुद्धि जब सब ओरसे क्षोभरहित होती है और जब दुःखोत्तप्त संसारकी आंच कुछेक दूर रहती है, तब वसन्तका अत्यन्त प्यारा शीतलमलयसमीर अपने मन्द २ प्रवाहसे एक विचित्र ही प्रकारका आनन्दानुभवन कराता है। हतप्रभ होता हुआ चन्द्रमा कहता है—देखो, सचेत रहो! मेरे सरीखे श्रीमान् कान्तिमान् और लोकोपकारीकी भी इस संसारमें यह दुर्दशा हो रही है, तुम किस खेतकी मूली हो? आम्र वृक्षोंके मौरोंपर गुंजार करते हुए भौंरे उपदेश देते है, इन्द्रियके विषयोंकी लालसा विषयोंके प्राप्त होनेपर घटती नहीं है, प्रत्युत बढ़ती ही जाती है। एक कलीका सौरभ लेकर दूसरीपर मंड़राये विना हमें चैन ही नहीं पड़ता। सरोवरोंमें जो कमल पुष्प शांतिताके साथ मुंह छुपाये हुए थे, बड़े भारी जोश खरोशके साथ निकलते हुए अंशमाली (सूरज) को देखकर हंसते हैं और मानो कहते है—अच्छा आपकी भी कला देखें। एक महाशय तो ढाकके

पत्तेके समान मुंह बनाये हुए रो ही रहे है, अब आप भी अपना हौंसिला निकाल लीजिये । उधर कोयल अपनी मधुरध्वनिसे सबके चित्तोंको रंजायमान करके विरक्तताके इन सब विचारोंपर हड़ताल फेरना चाहती है ।

कंचनपुरसे ५-६ कोस उत्तरकी ओर एक जंगलके बीचोंबीच एक मनोहर सरोवर है । उसके आसपास आम्रादि छायादार वृक्षोंकी श्रेणी लगी हुई है, जहांपर थके हुए पथिक घड़ी भर लेटके विश्राम पाते है । कहते है, यह स्थान किसी धर्मात्माने पथिकजनोंको आराम पहुंचानेके लिये तयार कराया था। रतनचन्द यहींपर एक वृक्षकी छायामे एक पत्थरके सहारे बैठा हुआ ऊपर कही हुई वसन्तकी प्रभातकी शोभासे अपने चित्तको शान्त कर रहा है। वह इस समय अकेला है । उसके शरीरपर एक सादी अंगरखी, पगड़ी और धोतीके अतिरिक्त कुछ नहीं है । अभी एक भिक्षुकको अपना घोड़ा सामानसहित देकर वह अपने सिरका एक बड़ा भारी भार उतारके यहा आ बैठा है। उसके पास वर्तमानमें शरीरपरके कपड़ोंके अतिरिक्त बाह्य परिग्रहोंमें और कुछ शेष नहीं है। उस समय रात्रि भरके जागरणसे और उसमें शारीरिक तथा मानसिक अश्रान्त परिश्रम करनेसे रतनचन्दकी शिथिल इन्द्रियां विश्रामकी प्रतीक्षा करती थीं, परन्तु चित्तकी अनेकाग्रतासे निद्रा नहीं आ सकी। सैकड़ों विचारोंका उदय हो होकर उनका अस्त होने लगा । रामकुंवीर और हीरालालको पलंगसे जड़के हुए छोड़कर वह चला आया था । चलते समय उन्हें जिस प्रकार अपराधमुक्त कर दिया था, बंध-

नमुक्त करनेका उसे स्मरण नहीं रहा था। इसका स्मरण हो आनेसे रतन-चन्दको इस समय बहुत व्याकुलता होने लगी। वह सोचने लगा,-हाय! हत भाग्य दीन जीवोंको मेरे कारणसे व्यर्थ ही कष्ट होगा। कामादि विकारोंसे वेचारे वैसे ही सताये हुए थे, और अब मेरे बन्धनोंसे दुःखी होंगे। जब लोग उन्हें उस अवस्थामें देखेंगे, तो अवश्य ही दुष्कर्म करनेकी उनमें शंका करेंगे, तब उन्हें कितना हृदयवेदी दुःख न होगा? स्वयं घृणा, लज्जा और मूर्खताके कारण आश्चर्य नहीं कि वेचारे आत्मघात कर लेवें। ओफ! यह मैंने बहुत बुरा किया—दो युवा मनुष्योंके प्राणोंका व्यर्थ ही मेरेद्वारा घात होगा। परन्तु हवेलीकी चाबियां तो मै जयदेवको दे आया हूं। जयदेव ऐसा निर्दय-हृदय नहीं है; वह अवश्य ही उनपर दया करेगा। मुझे निश्चय है कि दयालु हृदय जयदेव उन्हें अवश्य क्षमा कर देगा। हाय! अब पीछे २ विचार होते है, तब निश्चय होता है कि मैने एक ही नहीं बहुतसी भूलें की है। जब संसारसे मुझे सरोकार ही नहीं था, तब हीरालाल, रामकुंवरि और जयदेवको चिट्ठी लिखनेकी क्या आवश्यकता थी? उन्हें दंडाई बतलाकर धन-सम्पत्तिका स्वामी जयदेव बनाया जावे, यह प्रयत्न भी मैंने क्यों किया? मेरा जयदेव मित्र क्यों और हीरालाल शत्रु क्यों? मुझे तो सबको एक दृष्टिसे देखना था। परन्तु नहीं देखा, हाय! इस अवस्थामें भी मोह मेरा पीछा नहीं छोड़ता।

रामकुंवारि! मैने नहीं जाना था कि तू शहदसे भरी हुई तीक्ष्ण छुरी है तेरे स्त्रीजन सुलभ हावभावोंमें मुग्ध होकर मै तुझे अपना

सर्वस्व अर्पण कर चुका था, परन्तु आखिर तू मेरी नहीं हुई। वह कैसी बुरी घड़ी थी, जिस दिन मैने अपनी ढलती हुई उमरपर शिथिल होती हुई अंगयाष्टिपर और शात प्रायः होती हुई प्रकृष्ट विषयवासनाओंपर विचार न करके तेरा पाणिग्रहण किया था। हाय! तेरी धधकती हुई नवी कामज्वाला शान्त न हो सकी, और आज उसने अपने अनर्थसे निर्मल कुलकीर्तिको भस्म कर डाला। यौवन और वृद्धावस्था इन दोनोंके पारस्परिक विरोधपर मैने कुछ भी विचार नहीं किया, यह उसीका फल है। स्त्रियोंपर विश्वास करना सचमुच बड़ी भारी भूल है। वे कपट और कुटिलताकी साक्षात् प्रतिमूर्तियां है। एक कविने सच कहा है कि "स्त्रियोंके वचनोंमें, भोहोंमें, कटाक्षोंमें, गमनमें और अलकावलियोंमें जो कुटिलता दिखलाई देती है, वह और कुछ नहीं, उनके हृदयोंकी कुटिलता है; जो भीतर न समा सकनेके कारण शरीरके बाहर भी फूट निकली है ये स्त्रिया संसाररूपी विषवृक्षकी मूल है।" इन्द्रायणके फलके समान ये केवल बाहिरसे मनोहर दीखती है, परन्तु यथार्थमें इनका आस्वाद बड़ा भयंकर है। कामदेवके समान सुन्दर शरीरवाले युवा पुरुषको भी छोड़कर ये कुरूप कुकर्मी नीचोंके साथ रमण करती है। इनकी रुचिका पता पाना बडा कठिन है। जयदेव जैसे सत्यनिष्ठ और जितेन्द्रिय पुरुषको भी जो स्त्रियां कलकित कर सकती है, उनकी मलिनता कलङ्किताका क्या ठिकाना है? रामकुंवारि! तूने अपने चरित्रसे इस बातकी मुझे अच्छी शिक्षा दे दी है। इस विषयमें तेरा मुझपर बड़ा उपकार है।

अहा! अब मै कैसे अच्छे मार्गपर आ रहा हूं, जिसमें एक भी कंटक नहीं है। सम्पूर्ण चिन्ताओंसे रहित होकर और सब ओरसे अपनी कामनाओंको खींचकर, श्रीगुरुके वचनोंके सहारेसे जब मैं उस सरल मार्गपर चलने लगूंगा आशा है कि तब आत्माके अभीष्ट स्थानकी प्राप्तिमें अधिक विलम्ब न होगा।

परन्तु अब मै यहां निश्चिन्त क्यों पड़ा हुआ हूं। अभी तक कोई महात्मा मुनिके दर्शन नहीं हुए। ये हृदयके नाना संकल्प विकल्प जो छोड़ देनेपर भी पीछे पड़े हुए है, बिना श्रीगुरुका उपदेश पाये नष्ट नहीं होंगे, सो मुझे अब शीघ्र ही उनका अन्वेषण करना चाहिये। और संसार समुद्रमें पार होनेके लिये उनके वचनरूपी जहाजका आश्रय अवश्य लेना चाहिये। यह मोहका सघन अन्धकार जो सब कुछ छोड़ देने पर भी बारबार हृदयपर अपना अधिकार जमा लेता है, श्रीगुरुकी वचनकिरणोंके प्रकाश बिना नष्ट नहीं होगा।

रतनचन्दके मनमें इस प्रकारकी अनन्त भावनायें एकके पीछे एक उठ रहीं थीं, परन्तु उनमें नियमका प्रतिबन्ध नहीं था। यह अनियमितताका ही कारण था, जो पहले रामकुंवरिमें रागद्वेष छोड़कर तटस्थ होनेके लिये तत्पर होकर पश्चात् उसीकी एक प्रकारसे निन्दा करने और अन्तमें उपकार माननेमें रतनचन्दका वैकल्पिक चित्त कुछ आगा पीछा न सोच सका। अस्तु थोड़ी ही देरमें पासकी एक पगडंडीपरसे एक परम निर्ग्रन्थ मुनिको जाते हुए देखकर रतनचन्द उठ बैठा, और हर्षोत्फुल्ल होकर दौड़ता हुआ उनके सन्मुख जाकर चरणोंपर गिर पड़ा। मुनिराजने ठहर कर 'धर्मवृद्धि'

-दी और पूछा—रतनचन्द ! कुशल तो है ? सुनकर आश्चर्यविस्फारित नेत्रोंसे रतनचन्दने उत्तर दिया, आपके पुनीत दर्शनोंके सन्मुख अकुशल कहां ? सब प्रकारसे आनन्द है।

मुनिराज—भैया ! तुम बड़े भाग्यशाली हो। तुम्हारा संसार अब बहुत थोड़ा अवशेष रहा है। अच्छा किया जो इस संसारको तुमने पानीके बुलबुलेके समान अनित्य समझा और उससे मोह छोड़ दिया। संसारमें कहीं भी सुख नहीं है। इन्द्रियजनित सुख पराधीन, परिणाममें दुःखदाई और केवल अविचारित—रम्य है। सच्चा सुख मोक्षमें है। वह सर्वथा नित्य, शुद्ध और स्वाधीन है। वही आत्माका स्वभाव है। संसारके सम्पूर्ण विभावोंको परित्याग करके केवल आत्म-स्वभावमें लवलीन होनेसे उस अतीन्द्रिय सुखकी प्राप्ति हो सकती है। और ऐसा करनेके लिये अर्थात् केवल आत्मस्वभावमें तल्लीन होनेके लिये जैनेश्वरी दीक्षा ही एक मात्र साधन है।

यह नित्य—शुद्ध आत्मा अनादि कालसे पुद्गलका सम्बन्ध पाकर मलिन हो रहा है। संसारके मूलभूत आठ कर्मोंने इसको इस तरह ढक रक्खा है कि उनके कारण इसका असली ज्ञान—दर्शन—स्वभाव प्रगट ही नहीं होने पाता है, और निरन्तर चारों गतियोंमें नाना स्वांग धारण करके भ्रमण करना पड़ता है। जैनेश्वरी दीक्षाके अतिरिक्त इन कर्मोंका सम्बन्ध आत्मासे छुड़ानेके लिये और यह संसारकी बिटम्बना मिटानेके लिये और कोई साधन नहीं है।

---

१. एक अपरिचित अदृष्ट-पूर्व मुनिके द्वारा अपना नाम सुनकर रतनचन्दको आश्चर्य हुआ। मुनिराजको अवधिज्ञान प्राप्त था।

परन्तु यह जैनेश्वरी दीक्षा बड़ी कठिन है। इसको वे ही धारण कर सकते है, जिनका संसारसे मोह घट गया है, और जिन्हें यथार्थमें विषय सुखोंसे विरागता आ गई है। इस स्वतंत्र स्वाधीन और निर्भयवृत्तिको धारण करना अच्छे पुरुषसिंहोंका कार्य है, नकि इन्द्रियोंके आधीन रहनेवाले कायर पुरुषोंका।

रतनचन्द–(हाथ जोड़के) धन्य भगवन्! आज मै आपके दर्शनोंसे कृतार्थ हो गया। संसार–ज्वालासे व्याकुल हुए मुझ क्षुद्र-जीवको जोकि अपने यथार्थ दर्शन–ज्ञान–स्वभावको भूला हुआ दुःखी हो रहा है, उस आर्हती–दीक्षाकी सघन शीतल छायामें पहुंचाके शान्त कीजिये। हाय! अब मुझसे संसारके वे भयंकर, घृणित, असेवितरम्य और दुरंगे दृश्य देखे नहीं जाते हैं, कृपा करके अब मेरी रक्षा कीजिये। मुझे पूरा विश्वास है कि आपके चरणोंके प्रसादसे दुर्धर जिनदीक्षा भी सहज हो जावेगी। मुझे शीघ्र ही उन पुरुषसिंहोंकी श्रेणीमें विचरने योग्य बना दीजिये, जो भयानक वनोंकी गह्वर गुफाओंमें असह्य शीतोष्णता युक्त पर्वतोंके मस्तकोंपर सहस्रों हिंस्र जीवोंके समूहोंमें सम्पूर्ण चिन्ताओंसे रहित, निर्भय और निष्परिग्रह होकर स्याद्वादवाणीकी गर्जना करते हुए स्वच्छंदविहार करते है। और जिन्हें देखते ही परवादि–मृगगण थरथर कांपने लगते है।

मुनि०–आत्मार्थी रतनचन्द! तुम्हारे सच्चे उत्साहको देखकर प्रसन्नता होती है। श्रीजैनेन्द्रके प्रसादसे तुम्हारा अभीष्ट अवश्य ही सिद्ध होगा। तुम्हें अब संसार सम्बन्धी विकल्प जालोंको छोड़ देना

चाहिये । तुमपर जो कुछ बीता है, वह कुछ आश्चर्य नहीं है। अपावन संसारमें इससे भी सहस्र गुणें दुष्कृत्य अहर्निश होते रहते है, परन्तु आत्म-ज्ञानने जो लोग कोरे है, उन्हें इससे कुछ उद्वेग नहीं होता। विष्टाके कीड़ोंकी नाईं वे उस विष्टाको ही अपना क्रीड़ा-स्थान समझते रहते है । तुम्हारी काललब्धि निकट आगई थी, इसलिये उस कृत्यसे तुन्हें उद्वेग और निर्वेद प्रात हो गया; अन्यथा विचार करके देखो ! संसारका कौनसा कृत्य घृणित और वैराग्यका करने वाला नहीं है ? सो अब उस ओर अपने चित्तको सर्वथा मत जाने दो । तुम्हारा संसारमें अब कोई नहीं है, जो है वह तुम्हारे साथ है। वह तुमसे पृथक् नहीं है, उसीका निरन्तर ध्यान करो। अनन्तदर्शन अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य और अनन्तसौख्य जो उसके स्वभाव हैं, देखोगे कि तुम्हें अति शीघ्र प्राप्त हो जावेंगे ।

त्रयोविंश पर्व।

प्रातःकाल हुआ । अधकार अपने पराक्रमी शत्रुको पूर्वकी ओरसे उदय होते हुए देख भागा 'कौए " वयंकाकाः वयंकाकाः' कहते हुए लगे गुहार मचाने कि कहीं अंधकारके धोखे अपने काले रंगके कारण हम लोग न सताये जावें । चिड़िया चुहचुहाने लगीं, महाराज विक्रमसिंहकी आख खुल गई । वे शय्याका परित्याग करके प्रभातिकी क्रियाओंसे निवृत्त हो शीघ्र ही तयार हो गये । आज्ञा पाकर सेवकोंने घोड़ा कसके सम्मुख खड़ा कर दिया । जयदेव भी आ पहुंचे । प्रणाम करके बोले,-महराज ! आपके आगमनसे मैं

धन्य हुआ हू । परन्तु इस थोड़ेसे रात्रिकालके समागमसे मैं संतुष्ट नहीं हो सका सो कृपा करके आजका आतिथ्य और भी स्वीकार करें।

विक्रम०—(प्रेमाश्रु भरके) प्रिय जयदेव ! न जाने तुम्हारी ओर मेरा चित्त इतना आकर्षित क्यों हुआ है, कि तुम्हें छोड़नेको स्वयं जी नहीं चाहता और न तुम्हारे सुकोमल वचनालापसे तृप्ति होती है। परन्तु क्या किया जावे, उधर लोग मेरे लिये घबड़ा रहे होंगे, इसलिये विवश तुमसे विदा लेता हूं, अन्यथा एक दिन क्या तुम्हारे पास अनेक दिन रहनेमें भी मुझे कोई संकोच नहीं था।

जयदेव—नरनाथ ! मै बड़ा सौभाग्यशाली हूं, जो आप जैसे महत्पुरुषोंके प्रेमका पात्र हुआ हूं। श्रीजी करें आपका यह प्रेम इस बालकपर सदा बना रहे। इस समय आप सकारण जाते है, इसलिये अब रोकनेके लिये अधिक आग्रह नहीं किया जा सकता । परन्तु इसका अवश्य खेद रहेगा कि मुझसे आपकी कुछ उचित सेवा नहीं हो सकी।

विक्रम०—नहीं, जयदेव ! खेदकी कोई बात नहीं है। तुम्हारे समागमसे मुझे जो सुख हुआ है, वह असामान्य है । तुमने कल उपदेश देकर मुझपर जो उपकार किया है उसके ऋणसे मै कभी मुक्त नहीं हो सकूंगा। अहिंसाका तुम्हारा बतलाया हुआ वह सुन्दर रूप मेरे हृदयपर ज्योंका त्यों अंकित है। अब मै जाता हूं, परन्तु चलते २ एक बात कहे विना नहीं रह सकता कि यदि मुझ पर तुम्हारा कुछ भी आन्तरिक स्नेह हो, तो कोई अवसर निकाल कर विलासपुर आना और मुझे दर्शन देके सुखी करना।

जयदेव—(नतमस्तक होके) बहुत अच्छा । आपकी आज्ञाकी पालनामें मै यथाशक्ति प्रयत्न करूंगा ।

इसके पीछे परस्पर आलिंगन करके विक्रमसिंह तो घोडेपर सवार हो गये और जयदेव शिष्टाचारकी पालनाके लिये थोडी दूर तक उनके साथ २ गया, परन्तु आगे विक्रमसिंहके आग्रहसे लौट आना पडा । एक पथप्रदर्शक सेवकके साथ महाराज विलासपुरकी ओर रवाना हो गये ।

जयदेव लौटके अपने बंगलेमें पहुंचा । वहा जाके देखा तो एक आराम कुर्सीपर भूपसिंह पड़े थे, जोकि इसे देखते ही उठ खड़े हुए । दोनोंके चेहरे खिल उठे और आनन्दके उद्वेगसे दोनों परस्पर लपट गये । जयदेवके हृदयका दुःख जोकि विक्रमसिंहके वियोगसे हुआ था, आनन्दरूपमें परिणत हो गया । पश्चात् कुशल प्रश्न हो चुकनेपर इस प्रकार बातचीत होने लगी ।

जय०—यदि आप कुछ समय पहले आजाते तो अच्छा होता सहज ही में विलासपुर नरेशसे भेट हो जाती । मै उन्हें अभी पहुंचाके आ रहा हूं । बड़े सज्जन् नरेश है ।

भूप०—विलासपुर नरेशके दर्शन तो मुझे कभी नहीं हुए, परन्तु पिताजीसे उनकी बहुतसी प्रशंसा सुनी है । कहते है, बड़े उदार हृदय, दृढ़ प्रतिज्ञ और पराक्रमी राजा है । खेद है कि मै ऐसे अच्छे एकान्त अवसरमें उनसे न मिल सका । अस्तु, पर यह तो कहिये कि वे आपकी इस एकान्त विद्या कुटीरमें आये कैसे ?

जय०—कल कुछ दिन रहे, यहा बैठे २ चित्त ऊब जानेसे मै टहलते २ इस पासकी पहाड़ीकी तलैटीमें समीर-सेवन कर रहा था

कि एक झाड़के नीचे आप दिखलाई दिये। निकट जाकर पूछनेसे ज्ञात हुआ कि आप शिकारके लिये आये है, और एक हरिणके कारण मार्ग भूलकर तृषाके मारे वृक्षकी छायामें स्थगित पड़े हैं। तब मै अपने कर्तव्यवश ढाढ़स देकर उन्हें यहां ले आया था।

भूप०—(मुसुकुराके) पर दयानिधान! यह तो बतलाइये कि शिकारीकी अभ्यर्थना करके आपने कौनसा पुण्य कमाया?

जय०—वही, जोकि आपकी मित्रता करके कमा चुका हूं। कहिये स्मरण तो है? महाशय! उपहास न कीजिये, मेरा प्रयत्न निष्फल नहीं हो सकता। आपको सुनकर हर्षित होना चाहिये कि मृगया-प्रेमी विक्रमसिंह सदाके लिये अहिंसाणुव्रतके धारी हो गये।

भूप०—(हँसके) शाबास! मै तो पहले ही से जानता हूं कि आप जीते रहेंगे, तो बहादुरीका नाम ही मिटा देंगे।

जय०—तो क्या बेचारे निरपराधी वन्य पशुओंको सताना छोड़नेसे ही बहादुरी चली जाती है? जान पड़ता है अभी आप सूर्यपुरसे हारके आ रहे हो, इसलिये यह उलटी धुनि समाई है।

भूप०—नहीं मित्र! चिन्ता मत करो। अहिंसाधर्मके प्रसादसे विजयपताका उड़ाके ही आया हूं, और एक दिन सर्वत्र अहिंसाकी ही विजयपताका उड़ेगी। यह मेरा पक्का विश्वास है कि निरपराधी जीवोंके घातसे और पराक्रमसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि ऐसा न होता तो मृगया-प्रेमी निहालसिंह और उसके पुत्र उदयसिंहको मै लीलामात्रमें कैद करके न लाया होता।

जय०-अच्छा तो आप विजयपुर कब आये? और झगड़ेका फैसला क्या हुआ?

भूप०—मै कल संध्याको ही लौटके आया हूं। झगड़ा अब नहीं रहेगा। निहालसिंह हमारी रियासत छोड़नेके लिये राजी है; परन्तु मित्र! उस सिलसिलेको न छोड़ दीजिये। महाराज विक्रमसिंहसे और आपसे कोई विशेष वार्ता हुई हो तो और सुनाइये।

जयदेव-और तो कुछ नहीं हुई। चलते समय उन्होंने विलासपुर आनेके लिये आग्रह अवश्य ही किया है, सो अच्छा हुआ। आपकी भी उनसे भेट हो जावेगी।

भूप०-हां! अवश्य, और आपकी सगाईकी बातचीत भी तय हो जावेगी। बड़ी खुशीकी बात है।

जय०-यह क्या जी? कहांकी सगाई?

भूप०—मानो आप कुछ जानते ही नहीं है-बड़े भोले हैं?

जय०-कुछ कहो गे भी?

भूप०-महाशय! छुपाइये नहीं, क्या आपसे महाराजने यह नहीं पूछा कि 'तुम्हारा विवाह हुआ है कि नहीं?[1]' और फिर चलते समय क्या विलासपुर आनेका आमंत्रण नहीं दिया? तो अब इन दोनोंको मिलाके समझ लीजिये क्या अभिप्राय निकलता है, आप तो नैयायिक पंडित है।

जय०—भाई! तुम्हें भी खूब हवाई किले बांधना आता है,कहीं भांग खाके तो नहीं आये हो?

---

१. यह बात जयदेवके एक सेवकने आनेके साथ ही भूपसिंहसे सुना दी थी।

भूप०—भाग मै खाके आया हूं या आप खाये हुए है, यह तो समयपर प्रगट होगा; परन्तु अब यह तो कहिये कि ससुराल नहीं नहीं, विलासपुर कब चलियेगा, मै जरूर आपके साथ चलूंगा।

जय०—(हंसके) जिस समय आप चलें मै उसी समय तयार हूं। इस प्रकार हास्यविनोदकी चर्चा करते २ भोजनका समय हो गया। भूपसिंहने अभी तक स्नानादिक नहीं किये थे, इसलिये वह स्नानागारकी ओर गया और जयदेव विद्यामन्दिरमें जाकर तब तक पुस्तकावलोकनमें लगा।

* * * * * * *

यहांपर जयदेव और भूपसिंहादिके विषय कुछ परिचय देकर पाठकोंका सन्देह निवारण कर दिया जावे तो कुछ अत्युक्त न होगा।

विलासपुरसे दक्षिणकी ओर अनुमान २० कोसपर विजयपुर नगर है। विलासपुरके समान यह भी समुद्र तटपर बसा हुआ है। इस कारण विलासपुरसे विजयपुर आनेके लिये जल तथा स्थल दोनों मार्गोंसे लोग आ जा सकते है। बीचमें एक सूर्यपुरका छोटासा राज्य है। सो आने जानेवालोंको सूर्यपुर राज्यकी सरहदपरसे जाना पड़ता है।

विजयपुर विलासपुरका मित्रराज्य है, और विस्तार आदिमें प्रायः उसीके बराबर है। यहाके राजा रणवीरसिंह बड़े प्रतापी, तेजस्वी और प्रजावत्सल क्षत्रिय है। इस समय उनकी आयु ५० के अनुमान है। कुछ कम १२ वर्ष पहले उनकी महाराणी धारिणी अपने एक मात्र पुत्र भूपसिंहको छोड़कर परलोकको कूच कर चुकी

थीं, परन्तु उसके पीछे जितेन्द्रिय महाराजने दूसरा विवाह नहीं किया। पुत्रकी शिक्षा दीक्षामें ही उन्होंने तन-मन-धनसे परिश्रम किया। इस समय भूपसिंहकी आयु २४ वर्षके अनुमान है। वह पिताकी शिक्षासे ऐसे सांचेमें ढाला गया है कि श्रेष्ठसे श्रेष्ठ राजामें जो गुण आवश्यक है वे सब इस समय उसमें वर्तमान है। राजनीति धर्म-नीति, युद्धनीति, समाजनीति आदि सम्पूर्ण विषयमें वह असाधारण ज्ञान रखता है। इसके अतिरिक्त काव्य, कोष, व्याकरण, न्यायादि विषयोंमें भी उसकी अच्छी गति है। वह इस समय राज्यका कार्य बड़ी कुशलतासे चलाता है। महाराज रणवीरसिंह उदासीनवृत्ति धारण किये हुए एकान्तवास सेवन करते हैं। अभी तक भूपसिंहका विवाह नहीं हुआ है।

विजयपुरमें एक श्रीचन्द्र नामक प्रसिद्ध धनाढ्य है। उनके यहां जवाहिरातका व्यापार होता है। कहते हैं, श्रीचन्द्रके पिता एक सिपाहीके वेषमें विजयपुरमें आये थे, और उन्होंने एक जौहरीकी दूकानपर नौकरी की थी। उसी नौकरीमें अपनी ईमानदारी और तीक्ष्ण बुद्धिसे उन्होंने इतनी सफलता प्राप्त की कि थोड़े समयमें वे एक अद्वितीय रत्नपरीक्षक हो गये और उसके द्वारा उन्हें लक्षावधि द्रव्य प्राप्त हो गया। श्रीचन्द उन्हींके सुयोग्य पुत्र हैं।

श्रीचन्द्रकी विद्यादेवी नामक सुयोग्य गृहिणीसे जयदेव और विज-यदेव नामके दो प्यारे पुत्र उत्पन्न हुए हैं। जयदेवकी आयु २० वर्ष और विजयदेवकी १८ वर्षके अनुमान है। छोटे पुत्र विजयदेवने सामान्य विद्याभ्यास करके व्यापार कार्यकी ओर चित्त लगाया है,

परन्तु ज्येष्ठ जयदेव विद्याभ्यासमें अब भी अहर्निशि दत्तचित्त रहता है। आजकल वह पाठशालाका अभ्यास पूर्ण करके एकान्तमें पठित विषयोंका मनन करता है। जिस बंगलेका वर्णन ऊपर आ चुका है, वह जयदेवने इसीलिये (विद्याभ्यासके लिये) तयार करवाया है। जयदेवकी राजकुमार भूपसिंहके साथ असाधारण मैत्री है। संसारमें वे एक दूसरेके अनन्य मित्र हैं।

जयदेव जन्मसे ही दयालु हृदय और शांत प्रकृति है। विजयपुर निवासियोंने उसे कभी किसीसे लड़ते झगड़ते अथवा कटुवचन कहते नहीं सुना। किसीको रोते पीटते देखकर उसे बड़ा त्रास होता था। एक बार एक निरपराधी जीवको पिटते देखकर उसे मूर्च्छा आ गई थी। कहते हैं, सुयोग्य महाराज रणवीरसिंहके कान तक जब यह बात गई, तब उन्होंने उसी दिन अपने पुत्र भूपसिंहको जयदेवके साथ रहनेका आदेश किया।

भूपसिंहको आखेटका शौक था, परन्तु क्षत्रियधर्म किसे कहते हैं ? इस विषयपर अवसर पाके जब जयदेवने एक व्याख्यान सुनाया तब भूपसिंहके टप २ आसू पड़ने लगे, सिर नीचेसे ऊपर नहीं किया गया। उसी समय उसने निरपराधी जीवोंको न सतानेकी प्रतिज्ञा कर ली। गुणज्ञ भूपसिंह उसी दिनसे जयदेवको आदरकी दृष्टिसे देखने लगा।

कुछ दिन पहले विजयपुर और सूर्यपुरके सीमाप्रान्तके कुछ ग्रामोंके विषयमें असमंजस हो गया था, परन्तु सचतुर रणवीरसिंहने अपनी उपेक्षासे उस समय दबा दिया था, तौभी वह दब न सका। सूर्यपुरें

के राजकुमार उदयसिंहकी करतूतसे विरोधाग्नि दधक उठी और आखिर भूपसिंहको सूर्यपुरपर चढ़ाई करनी पड़ी । फल यह हुआ कि घोर युद्धके पश्चात् उदयसिंह और महाराज निहालसिंह कैद कर लिये गये । इसी लड़ाईमें विजय पाकर भूपसिंह जयदेवके बंगले पर गया था, जैसा ऊपर कहा जा चुका है ।

चतुर्विंश पर्व ।

जयदेवको देखते ही चित्त कहने लगता है कि वह कोई क्षत्रियपुत्र है । उन्नत ललाट, विशाल वक्षःस्थल, प्रलम्ब भुजायें, सुदृढ़, सुपुष्ट शरीर और प्रफुल्ल मुखमंडल आदि उसके असाधारण पराक्रमी और प्रतापी होनेके स्पष्ट लक्षण है । कैसा ही अनुभवी और चेष्टा परीक्षक क्यों न हो, वह एकाएक जयदेवको वणिक्पुत्र कहनेमें अचक जावेगा । इसलिये मुझे उसके वणिक होनेमें विश्वास नहीं होता । जान पड़ता है कि उसके जीवनमें किसी कारणसे क्षत्रियत्वका रहस्य गुप्त रक्खा गया है । परन्तु नहीं वह वणिक ही क्यों न हो, अब तो सुशीलाका भाग्य उसके हाथमें समर्पण किया जावेगा नीतिमें कहा है कि 'अयोग्य वरको कन्या देनेकी अपेक्षा उसे एक कुएमें पटक देना अच्छा है' इसलिये सुयोग्य वरकी अप्राप्तिमें यदि सुशीलाका पाणिग्रहण एक परम सुयोग्य वणिकके साथ, जिसमें कि सम्पूर्ण क्षत्रपुत्रोचित लक्षण मिलते है, कर दिया जावे, तो कोई अन्याय नहीं होगा । यद्यपि ऐसे सम्बन्धसे लोग विरोध करेंगे, परन्तु पिताके यथार्थ

कर्तव्यकी पूर्ति ऐसा किये विना हो नहीं सकती। जयदेव जैसा वर मिले विना मेरी प्राणाधिक प्रिय सुशीला सुखी नहीं हो सकती।

मै अनेक राजकुमारोंको देख चुका हूं, परन्तु अभी तक उनमेंसे किसीने भी मुझे संतोष नहीं पहुंचाया है। उन सबमें वहुत थोड़े और विरल गुण पाये गये है। परन्तु जयदेवके गुणोंकी गिनती नहीं हो सकती। एक दया ही उसके हृदयमें ऐसी शक्तिशालिनी और सुन्दर है कि अन्य गुणोंकी उसमें अपेक्षा ही नहीं है। वीर पुरुषका उन्नत हृदय ऐसी ही दयासे शोभायमान रहना चाहिये, जिसका कि जयदेवने मुझे उपदेश दिया था और जिसे वह स्वयं अहर्निशि धारण किये रहता है।

उस रात जयदेवके वार्तालापमें तर्क बुद्धिकी प्रखरता, काव्यकी रुचिरता और व्यवहार कुशलताके साथ २ राजनीतिकी जैसी योग्यता प्रकट हुई थी, वैसी योग्यता वर्तमानमें अन्य किसी राजकुमारमें भी प्राप्त होगी—यह कल्पना मात्र है।

ऐसी अवस्थामें मै अपने विरोधियोंसे पूछ सकता हूं कि जिस पुरुष-पुङ्गवमें सम्पूर्ण क्षात्र—गुण पाये जाते हों, वह वणिक क्षत्रिय क्यों नहीं है? और अनेकान्त मतके माननेवाले हम लोग क्या एकान्त पूर्वक जन्मसे ही वर्ण मान बैठेंगे, गुण कर्मोंसे नहीं? इसके अतिरिक्त अनेक प्राचीन कथाओंके ऐसे प्रसंग सुने जाते हैं, जिनमें राजकन्याओंका सुयोग्य वणिक्पुत्रोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध हुआ है, फिर मेरे इस कार्यमें ही विरोध क्यों किया जाता है?

परन्तु प्रत्येक कार्य जहां तक हो, लोकको अपने अनुकुल बना कर ही

करना चाहिये । इसलिये इस कार्यमें अभीसे इतनी शीघ्रता करनी ठीक नहीं है । शान्तिताके साथ अपने गुरुजनों और मंत्री सुहृद्गणोंमें यह विषय उठाकर अपना अभिप्राय उन्हें समझाना चाहिये । संभव है कि अपनी सुयोग्य युक्तियां उनके चित्तोंपर प्रभाव डालके अपने इष्ट साधनमें समर्थ हो जावें ।

इसके अतिरिक्त अभी उस ओरसे भी सर्वथा निराश नहीं होना चाहिये । विजयपुरको जो सवार चिट्ठी लेकर दौड़ाये गये हैं, क्या आश्चर्य कि वे ही अपने अभिलषित उत्तरको लेकर आवें और इन नाना चिन्ताओंके स्थानमें आनन्दका श्रोत बहाने लगें ।

एक चिन्ता सुशीलाकी माताकी थी, परन्तु अच्छा हुआ कि वह निवृत्त हो गई । मेरा अभिप्राय वे समझ गईं, और जयदेवको जमाता बनानेमें राजी हो गई । बेचारी स्त्रियोंकी बुद्धि ही कितनी ! नहीं रहा गया, अन्तमें पूछ ही बैठी कि जयदेवका पिता कितना बड़ा धनी है; परन्तु बड़ी खैर हुई कि जयदेव किसी कंगालका पुत्र नहीं हुआ । अन्यथा यहां बड़ी कठिनता पड़ती ।

क्या ही अच्छा हो यदि जयदेव इस समय जैसा कि उसने स्वीकार किया है यहां आ जावे और सब लोग उसे समक्षमें देखकर मेरे विचारोंका तत्त्व समझ जावें । मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसके मिलापसे सब ही आप्तवर्ग मेरे अनुमोदक हो जावेंगे और तब मेरी अभिलाषाके पूर्ण होनेमें कुछ भी विलम्ब न होगा ।

अस्तु अब रात बहुत बीत गई है आजका सारा दिन इसी प्रकारकी नाना चिन्ताओंमें गत हुआ है, उचित है कि कुछ विश्राम

कर लिया जाय। यदि उदय अच्छा है तो श्रीजीकी कृपासे कल ही इन सब चिन्ताओंका अवसान हो जावेगा।

इस प्रकार विचारतरंगोंका अवरोध करके महाराज विक्रमसिंह उस समय दिनकी थकावट मिटानेके प्रयत्नमें लगे। उस समय सारा संसार निद्राके यौवन काननमें विहार कर रहा था—निजत्वको तो पहले ही भूला हुआ था। इस समय एक प्रकारसे परत्व-ज्ञानको भी खो चुका था।

* * * * *

दूसरे दिन आठ बजेके अनुमान राजभवनके एक साफ सुन्दर कमरेमें खास बैठककी व्यवस्था की गई। महाराज, उनके वृद्ध और दूरदर्शी काका, मंत्री, पुरोहित और चुने हुए दो चार मुख्य राज्यकर्मचारी आदि खास २ पुरुष एकत्र हुए। सबके स्वस्थचित्त होकर बैठ जानेपर महाराज विक्रमसिंहने थोड़ेसे शब्दोंमें अपना इस प्रकार अभिप्राय प्रकट किया कि "राजकन्या सुशीला जिसे कि आप लोग सरस्वती कहके पुकारते है, व्यवहारप्राप्त हो चुकी है, इसलिये उसका विवाह करना आवश्यक है। विवाह-सम्बन्धसे दो प्राणियोंके बहुमूल्य जीवनमें सुख दुःखोंकी डोरी परस्पर जोड़ी जाती है। इसलिये यह कार्य मेरी समझमें अतिशय विचारणीय तथा उत्तरदायित्वका है। और आप लोग इस विषयमें मेरी अपेक्षा विशेष अनुभवी और दूरदर्शी हैं, इसलिये मै चाहता हूं कि इस विषयमें जो कुछ किया जावे आप लोगोंके विशेष परामर्शसे किया जावे।

सुशीला जैसी सुशीला और विदुषी कन्याके लिये बहुत दिनकी शोधके पश्चात् मैने एक वर खोजा है, बाहिरी रूपलावण्य वेषविन्यासके समान जिसका अन्तरग भी अतिशय सुन्दर है । विद्वत्ता, शूरता, उदारता, दूरदर्शिता सहनशीलतादि सब ही लोकोत्तरगुणोंने उसके हृदयको अपना निवासस्थान बनाया है। परन्तु इस प्रकार क्षत्रियोंके योग्य सम्पूर्ण लक्षण होनेपर भी उसने अपनेको वणिक्पुत्र बतलाया है, यह एक चिन्तनीय बात उपस्थित हुई है। इसलिये अब आप लोगोंसे सम्मति मागता हूं कि यह कार्य कुछ अनुचित तो नहीं होगा ?

पुरोहित—राजन्! वरके गुणोंकी ओर विचार करते हुए यद्यपि आपका विचार अनुचित नहीं जान पड़ता, परन्तु लोकमर्यादा और आचारग्रन्थोंकी आज्ञासे यह विरुद्ध नहीं है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनोंके अपने वर्णके साथ वर्णानुक्रमसे चार तीन और दो वर्णोंकी कन्याओंके साथ विवाह करनेका अधिकार है। तदनुसार वैश्यपुत्र क्षत्रियकी कन्या नहीं ले सकता।

मंत्री—पुरोहितजीका कहना ठीक है, परन्तु जिस कुमारकी महाराजने प्रशंसा की है वह वणिक् है न कि वैश्य। इसलिये यदि जन्मकी अपेक्षा वर्णव्यवस्था माननी ठीक है, तो वणिग्वृत्तिसे उसको वैश्य मान लेना सन्देहसे शून्य नहीं है। और यदि गुणकर्मोंकी अपेक्षा वर्णव्यवस्था है, तो उस कुमारके क्षत्रिय होनेमें जैसा कि महाराज कहते है कुछ सन्देह ही नहीं है।

पृथ्वीसिंह (महाराजके वयोवृद्ध काका)-विक्रमसिंह ! इस वादविवादके पहले तुम्हें उस कुमारका परिचय देना चाहिये कि वह कहांका है और किसका पुत्र है। और यदि उसके वर्णविषयमें तुम्हें सचमुच सन्देह है तो सेवक भेज कर उसे मिटा लेना चाहिये।

विक्रमसिंह-(हाथ जोड़कर) महाराज ! वह विजयपुरके श्रीचन्द्र नामक वणिकका पुत्र है। बस, इतना ही परिचय मुझे उसके विषयमें मिला है। परन्तु आपकी इच्छानुसार विजयपुरको मैं सेवकों को भेज चुका हूं वे लोग आते ही होंगे।

पुरोहित—उनके द्वारा उस कुमारकी जन्मपत्रिका आदि आपने मगाई ही होगी। क्योंकि विवाहसम्बन्धमें तद्विषयक विचार भी अत्यावश्यक कार्य है। वर और कन्याकी जन्मकुंडलीसे जब तक यथोचित विधि न मिला ली जावे, तब तक वह विवाहसम्बन्ध सुखकर नहीं होता।

विक्रमसिंह—परंतु यह कार्य पीछेका है। मैने विजयपुर नरेशसे केवल उसके वर्णकुलादि विषयमें पूछा है। वह सचमुच क्षत्रिपुत्र है, जब तक यह निर्णय न हो ले, तब तक अन्य बातोंकी चरचा करनी मैंने उचित नहीं समझी।

मंत्री—परन्तु मेरी समझमें इस समय यदि किसी बहानेसे वह कुमार यहां बुला लिया जावे तो और अच्छा होगा। ये सब लोग उसे समक्षमें देखकर आपकी सम्मतिके बहुत कुछ अनुगामी हो जावेंगे।

विक्रम०—ठीक है, कुमारने मुझसे यहाँ शीघ्र ही आनेका वादा किया है, और आज एक सेवक और भी लेनेके लिये भेज दो, शेष विचार पीछे होगा।

मंत्री—जो आज्ञा।

पञ्चविंश-पर्व।

पाठक! आइये, आज हम आपको एक रमणीय बागीचेकी सैर करावें, जो विलासपुरके पूर्वकी ओर बना हुआ है। इसके आस-पास एक सुदृढ़परिखा बनी हुई है, जिसे लांघकर वायुका भी साहस भीतर जानेका नहीं पड़ता। भीतर जानेके लिये केवल एक ही द्वार है, जहांपर शस्त्रधारी सिपाहियोंका सदा पहरा रहता है। किसी परिन्देकी मजाल नहीं, जो विना आज्ञा पर मार जाय। वह द्वार रमणीय पत्थरका बना हुआ है, जिसपर किसी चतुर शिल्पकारने सुन्दर बेलें खोदी है, जो देखनेमें ऐसी जान पड़ती है, मानो पत्थ-रके साथ ढालकर निकाली गई है। उसमें जो पच्चीकारीके फूल बने है, वे ऐसे जान पड़ते है कि मानो मालीने अभी तोड़कर लगाये है। किवाड़ोंपर भी नक्शनगारीका काम देखनेवालोंको चकित करता है। ये किवाड़ चन्दनके है, जिन्हें खोलनेपर उद्यानमें प्रवेश होता है। प्रवेश करते ही एक संगममरका बना हुआ विशा-लप्राङ्गण मिलता है, जो दूरसे ऐसा भासता है, मानों दूधका सरोवर भरा हो। बीच २ में चतुर कारीगरोंनेलाल पत्थरके (लाजवर्दके) फूल ऐसी खूबीके साथ बनाये है, कि उन्हें देखकर असली कमलों

का धोखा हो जाता है। आंगनके आसपास करीनेसे छोटी २ हरी दूबा जमाई गई है। जिसके बीच २ में छोटे २ फूलदार वृक्षोंके गमले रक्खे हुए है। खिले हुए फूलोंपर रंगविरंगी पंखिया उड़ती वैठती हुई एक अलौकिक छटा उत्पन्न कर रही हैं।

समीप ही एक तालावसे लाई हुई नहर वह रही है, जिसके दोनों किनारे पक्के वंधे हुए है। और एक प्रकारकी सुन्दर फूल और पत्तेवाली लतासे ढके हुए है। सारा वगीचा इसीसे सींचा जाता है। नहरके उस पार वड़े वड़े मेवेदार वृक्षोंकी श्रेणी है। वगीचेमें घूमनेके लिये जो छोटे २ मार्ग है, उनके दोनों ओर नन्हीं २ हरी सुकोमल घास लगाई गई, है और उनके पश्चात् जुही, मालती, वेला, गुलाव, चमेली आदि अनेक प्रकारके सुगन्धित फूलोकी क्यारियां वनी है। नहरसे नल लाकर वागीचेके चारों कोनोंपर चार वड़े २ हौज फव्वारा लगाकर वनाये गये है, जिनके किनारोंपर सुन्दर संगमर्मरकी वैठकें वनी हुई है। कभी २ यहा वैठकर महाराज विक्रमसिंहकी प्यारी कन्या सुशीला प्रकृतिकी शोभाको देखती हुई संसारकी विचित्रताका अनुचिंतन करती है। वह किसी भी पुष्प अथवा उसकी कलिकाको हाथमें लेकर विचारसागरमें घंटों गोते लगाया करती है। वह सोचने लगती है कि देखो कल जिसे निरी कली देखा था, आज वही अधखीली कलिका है और कल यही फूलकर परसों धराशायी होकर धूलिशात हो जावेगी। फिर न कलीका पता लगेगा और न पुष्पका।

सुशीलाके विचार अत्युत्कृष्ट है। वह प्रत्येक वातमेंसे जो सिद्धान्त शोधके निकालती है वे कुछ अपूर्व ही होते हैं। वह यद्यपि

अभी अविवाहित है, परन्तु विवाहित स्त्रियोंका क्या धर्म है उसे वह भलीभांति जानती है। कुलीनवंशोद्भव पतिपरायणा स्त्रियोंके धर्मका उसे खूब परिचय है। क्षमा, शील, संतोष प्रभृति धर्मोंने उसके हृदयको अपना विश्रामास्पद बना लिया है। सासारिक नाना प्रपञ्चोंके समीरने उसके शरीरको कभी स्पर्श भी नहीं किया।

आज वही सरस्वती सुशीला अपनी रेवती आदि सखियोंके साथ इस उद्यानमें क्रीड़ा करनेको आई है। नहरके किनारे टहलते २ रेवतीने चन्द्रिकासे कहा, चन्द्रिके! इस पारावतकी जोड़ीको तो देख, प्रमोदमग्न हुई कैसा नृत्यसा करती है औ कुछ अस्पष्ट शब्दोंके कहनेको गला फुला रही है।

चंद्रिका—सखी! क्या तू नहीं जानती, वह अपनी जीवनमूरि सुशीलाको बधाई देनेके लिये उत्सुक और प्रफुल्लित हो रही है।

सुशीला—क्या कहा चन्द्रिके! कैसी बधाई?

रेवती—(बात काटके) इधर देखिये इधर! यह दूसरी जोड़ी आपके आगमनकी मानो प्रतीक्षामें है।

सुशीला—भला वह पक्षी जातिके सीधे साधे जीव मेरे आगमनकी प्रतीक्षा क्यों करने लगे?

चान्द्रिका—(रेवतीसे) सखी! रहने भी दे, अभी इनके दूधके दांत भी तो नहीं गिरे है। फिर ये भला इस मर्मको क्या जाने?

सुशीला—(मुसुकुराकर) चन्द्रिके! तुझे मेरी ही शपथ है। सच सच बतला, मै कुछ समझी नहीं।

चन्द्रिका–हां! आप क्यों समझने चली? अब जब हम लोगोंके भाग्यसे पारितोषिकके मिलनेका समय आया तब आप स्वयं ही अनसमझ बनोगी।

सुशीला–(रेवतीसे) भला सखी! तू ही बता दे, यह चान्द्रिका क्या बक रही है?

रेवती—वही कलकी बात! बक क्या रही है, जिसे सरकार भी सुनकर मन ही मन खिल चुकी है।

सुशीला—(समझकर और कुछ रूखासा मुंह बनाकर) चल रहने दे, तुझे सदा हंसी ही सूझा करती है।

रेवती—क्यों क्यों सरकार! क्या यों खफा होकर ही हमें टालना चाहती हो? उसमें मेरा भी हक है।

चान्द्रिका—और मेरा?

सुशीला इसका और कुछ उत्तर न दे सकी। लज्जासे उसका सिर नीचा हो गया। परन्तु मुखमंडलपर एक मन्दमुसक्यानकी रेखा झलक आई।

सुशीलाने सोचा था कि अब इतनेमें ही चुक जाउंगी। परन्तु सखिया कब माननेवाली थीं, उन्होंने हॅसीका दूसरा ढंग निकाला। रेवती जासूसीके काममें बड़ी चतुर है और चान्दिका भी कुछ कम नहीं है, परन्तु चन्द्रिका रेवतीसे ठठोलपनमें दो कदम आगे है।

बेचारी भोलीभाली सुशीला एक कुसुममयी वनलतिकाके समीप खड़ी २ पीले २ पत्ते चुन रही थी कि अचानक साम्हनेसे चान्द्रिका

को थोड़ासा घूंघट निकाले मुसुकुराते हुए आते देखा। सुशीलाने पूछा—क्यों क्या है?

चान्द्रिका— वाह सरकार! क्या देखती नहीं हो, वह विजपुर वाले सेठजी आ रहे हैं।

सुशीलाने जो लौटकर पीछे देखा तो एक नवयुवकको आते देखा, सिरपर छोटीसी कुसुमानी पगड़ी है, जिसमें मोतियोंकी सुन्दर कलगी लगी हुई है। चमकता हुआ जरदोज़ीके कामका रेशमी अंगरखा और उसपर खासी महाजनी चालका दुपट्टा पड़ा हुआ है। अंगूठेको छूनेवाली नीची धोती साधे जूता पहिने हाथमें एक फूलोंका गुच्छा लिये हुए है। सुशीला देखते ही सहम गई, शरीर पसीनेसे तर हो गया। थोड़ी देर अवाक् सी हो रही। पश्चात् कुछ रूखीसी पड़के पुकारकर बोली—रेवती! रेवती! देख तो यह कौन ढीठ पुरुष इधर चला आ रहा है। एक अज्ञात पुरुषको यहा आनेका कैसे साहस हुआ? और भला यह आया ही किस मार्गसे होगा? ठहरो, पिताजीसे आज द्वाररक्षकोंको कैसा इनाम दिलाती हूं कि वे भी याद करें।

जब रेवतीका न तो उत्तर मिला न वह इधर उधर दिखाई दी और उस पुरुपको बराबर आगे बढ़ते हुए देखा, तब तो सुशीला डरके चन्द्रिकाके पास दौड़ी। चन्द्रिका बोली, "है! है! ऐसी भाग भागकर कब तक रहोगी? यों भागती हो कि आदर स्वागत करके अपने अतिथिको प्रसन्न करती हो" सुशीला क्रोध करके बोली "चन्द्रिका चुप रह ये तेरी हँसीका समय नहीं है। रेवतीको बुला, वह कहां

गई ? इस असमसाहसी पुरुषको उसकी ढीठताका मजा चखावें और द्वाररक्षकोंको बुला दे कि इसे पकड़कर पिताके पास ले जावें। चन्द्रिका बोली,—हैं ! है ! चूप भी रहो। ये मुझे विजयपुरवाले जैसे लगते हैं। कदाचित् पिताजीकी आज्ञासे ही यहां आये होंगे अन्यथा किसकी मजाल थी जो यहां आता? अब जी खोलकर बातें कर लो और खोटा खरा भी परख लो जिससे पीछे पछताना नहीं पड़े।

यों चन्द्रिका बराबर छेड़ती जाती थी और सुशीलाका भय बढ़ता जाता था उसे एक बड़ा भारी भय यह लगा था कि कहीं उदयसिंह कोई चालाकी न करे। साथ ही रेवतीके कथनानुसार बलवंतसिंहके नौकर होकर विलासपुरमें रहनेका भय भी उसे कुछ कम न था। सुकुमार हृदय सुशीलाके हृदयमें अनेक संकल्प विकल्प उठकर उसे डरा रहे थे कि वह अज्ञात पुरुष पास ही आ खड़ा हुआ और बोला,—

देवकन्याओ ! आज्ञा हो तो (हाथसे इशारा करके) इस लतामंडपके नीचे कुछ समय ठहरकर विश्राम ले लूं। यह सुनके सुशीला तो मुंह फेरकर बैठ गई। उसका हृदय धकधक करने लगा। मुखमंडलपर स्वेदबिन्दु झलक आये। परन्तु पाषाणहृदय चन्द्रिकाको उसकी इस दशापर कुछ भी दया न आई बोली,—हां ! हां ! पथिक ! चैनसे विश्राम लो, पर यह तो कहो कि आपका आगमन कहांसे हुआ ?

आगन्तुक—विजयपुरसे।

चन्द्रिका—आपके नामका परिचय क्या हम लोग पा सकती हैं ?

पंचविंश पर्व ।

आग०—मेरा नाम जयदेव है । मै वणिक्पुत्र हू । मार्ग भूलके यहा आ निकला हूं । मुझे विलासपुरके महाराजके निकट जाना है। यहां थोडी देर ठहरके अपनी राह लगूंगा। क्या कृपा करके आप लोग भी अपना परिचय मुझे देंगीं ।

चंद्रिका—(हँसीको रोकके) हो तो बड़े भाग्यवान् ! आपको शकुन अच्छा हुआ, जिसे आप मार्ग भूलना कहते हो, सो दैवने हाथ पकड़के आपको अभीष्ट स्थान तक पहुंचा दिया है। यह उद्यान उन्हीं महाराजकी कन्याका है कि जिनके पाहुने होने आप आये है। (सुशीलासे) सखी ! रेवती जब तक न आवे, तब तक इनका तूं और नहीं तो वचनोंसे ही सत्कार कर ।

सुशीला—(खीजकर) चन्द्रिका ! देख आज मैं मातासे कह कर तुझे और रेवतीको कैसा दंड दिलाती हूं । एक सर्वथा अपरिचित परपुरुषको जान पड़ता है, तू या रेवती ही बुला आई होगी !

चन्द्रिका—लो भला ! अपनी बलाय पराये सर । तुम्हारे पिता ही बेचारेको बुला आये हैं, और दंड दिलानेकी धमकी मुझपर ! अच्छा खैर विजयपुर पहुंचनेपर तुम्हें आजकी बातका उत्तर मिलेगा ।

आगन्तुक—क्यों ये तुम्हारी कौन है, जो पीठ दिये बैठी हैं । क्या मेरे यहां आ निकलनेसे उन्हें कुछ खेद पहुंचा है ?

चन्द्रिका—महाशय ! यह विलासपुर नरेशकी कन्या है । नाम इनका सुशीला " यथा नाम तथा गुणाः " है, और मै इनकी दासी हूं। माता पिताकी आज्ञासे ये यहां घूमने आई है।

आग०—इनके पिता तो बड़े उदार हैं, पर यहां तो संकीर्णताकी पराकाष्ठा है, जो एक गरीब मुसाफिरपर इतनी रुष्टता दिखला रही है।

इतना सुनकर सुशीला अत्यन्त रुष्ट होकर कुछ कहना ही चाहती थी कि उस नवयुवकने अपने ऊपरका लिवास उतारकर फेंक दिया। जिसके फेंकते ही हंसता हुआ एक स्त्रीका रूप निकल आया। और पास आके सुशीलाके पैरोंपर पड़ गया। सुशीला आश्चर्यविस्फारित नेत्रोंसे उसको देखने लगी।

पाठक! यह स्त्री और कोई नहीं वही रेवती थी, जो किसी कार्यका वहाना करके वहांसे चली गई थी, और फिर जयदेवका रूप धारण करके आई थी।

इसके पश्चात् वे तीनों हंसती हुई वहांसे उठ खड़ी हुईं।

षष्ठाविंश पर्व।

संध्या हुई। वरुणदिशाके पास सूर्यदेव आये। देखते ही उसके गालोंपर ललाई दौड़ आई। बड़े प्रेमसे उसने उनकी गुलालसे अभ्यर्थना की। क्षितिजमंडलपर दूर दूर तक गुलाल ही गुलाल नजर आने लगी।

अस्ताचल पर्वत सूर्यदेवको मस्तकपर धारण करके संसारको समझाने लगा कि जो निरन्तर परोपकार करनेमें अपना जीवन व्यतीत करते है, वे क्षीणपुण्य होकर भी महत्पुरुषोंके द्वारा पूजे जाते है।

इस समय विलासपुरसे नैर्ऋतकी ओर एक टीलेपर कोई युवा

खड़ा होकर विलासपुरकी ओर अनिमिष नेत्रोंसे देख रहा है। जान पड़ता है किसीके आनेकी प्रतीक्षा कर रहा है। उसके हाथमें एक घोड़ेकी बागडोर है, जो पास ही कसा कसाया खड़ा है और अपने मालिकका अनुकरण कर रहा है।

पूर्वदिशाकी ओरसे अंधकारको दौड़े हुए आते देखकर सूर्यदेव यह कहकर अस्त हो गये कि मै अपने रहते हुए इस संसारको इस मलिनात्मामें दुःखी नहीं देख सकता। प्रकाश लुप्त हो गया। पक्षीगण शोर मचाने लगे। मानों प्राणपति दिवानाथके वियोगमें दिगङ्गनायें रोने लगीं।

युवाको खड़े खड़े बहुत समय हो गया। अतएव वह थक कर यह कहता हुआ बैठ गया कि चलो थोड़ी देर और राह देख लूं, कहीं ऐसा न हो कि मै यहां से जाऊं, और पीछे बलवंत आकर मेरे लिये दुःखी हो। वह अवश्य ही आता होगा। किसी कारण विशेषसे ही अभी तक नहीं आ सका है।

थोड़े ही समयमें अंधकारने सम्पूर्ण संसारको अपने रंगरूप जैसा बनाकर स्पष्ट कर दिया कि "गुणदोषाःसदसत्प्रसङ्गजाः" अर्थात् गुण दोष सज्जन् और दुर्जनोंके प्रसंगसे ही होते है।

इतने ही में किसीने पीछेसे आकर उस युवाके नेत्र अपने दोनों हाथोंसे बन्द कर दिये और एक बड़े जोरकी हंसी हँसकर कहा, "लो, मै तुम्हारी इच्छाका पूर्ण करनेवाला आ गया, अधीर मत होओ।" युवाने समझा बलवंत आ गया। परन्तु बलवन्तकी और इसकी आवाजमें तो जमीन आसमानका फर्क है। तो क्या कोई दुश्मन

मेरा भेद जानकर प्रतारणाके लिये आया है ? इस प्रकारके विचारने युवाको अधीर कर दिया । उसने बड़े बलके साथ उस पुरुषके हाथोंको झटका देकर अलग कर दिया और सन्मुख होकर कहा—कौन बलवंत ? आगत पुरुषने हँस करके कहा, हां ।

अंधकारके आनेके पश्चात् ही तारागण ऐसे दिखलाई देनें लगे, मानो मित्र (सूर्य) वियोगके दारुणदुःखसे आकाशमंडलसे आंसुओंके चमकते हुए बिन्दु झड़ रहे है । उन्होंने अंधकारमयं संसारमें थोड़ासा प्रकाश कर दिया । युवाने तारागणोंके प्रकाशमें देखा, हां करने वाला बलवन्त नहीं है, एक विकटाकार पुरुष है, जिसकी हाथ भरकी लम्बी सफेद दाढ़ी लटक रही है, सिरपर एक बड़ा भारी सफेद फैटा बंधा हुआ है । सारा शरीर नीचेसे ऊपर तक एक सफेद चादरसे ढंका हुआ है । युवा विस्मित होकर उसकी ओर ज्यों २ घूरके देखता था, त्यों त्यों वह सफेदपोश उसे चिढ़ाने के लिये बार २ हँसता था । आखिर युवाने तलवार खींच ली और कड़कके कहा—सच सच बता तूं कौन है ? नहीं तो तेरी ढिठाईका तुझे अभी मजा चखाता हूं ।

सफेदपोश—(निडर होकर) मजा चखोगे तो आप, मैं तो यों ही उलटी सीधी सुनूंगा और महिनत करूंगा ।

युवा—(गुस्सेसे) तो क्या तू मुझे मजा चखावेगा ?

सफे०—(मुसुकुराते हुए) जी हां !

युवा०—आखिर तेरा नाम क्या है ?

सफे०—वही, जो आपने लिया था !

युवा—मै तुझ जैसे पिशाचका नाम क्यों लेने चला ?

सफे०—एक वार क्या आप तो नित्य हजार वार लेते है ?

युवा—मुझे मालूम पड़ता है, धोका देकर तू बलवन्त बनना चाहता है। परन्तु पहले जरा अपनी शक्ल तो देख तब यह हौसला करना।

सफे०—मै अपनी शक्ल तो देखता ही हूं, परन्तु हुजुर भी तो जरा अपनी ओर होश सम्हालके देखें।

युवाने घबड़ाकर आश्चर्यसे ज्यों ही अपनी ओर देखा, त्यों ही वह त्रिकटपुरुष अपने ऊपरसे चादर और फैटा फैकके खड़ा हो गया। फैटेके साथ ही दाढ़ी भी न जाने कहा चली गई! युवाने फिरसे देखा, तो उसके साम्हने उसका मित्र बलवतसिंह खड़ा हुआ मुसुकुरा रहा है। युवा आश्चर्यान्वित होकर बोला, है! बलवंत! तुम कहा थे, मै तो तुम्हारे लिये बड़ा व्यग्र हो रहा था।

बलवन्त—मै तो हुजूरके साम्हने कभीका खड़ा हूं, परन्तु मेरे आगे एक बुड्ढा खड़ा था इससे शायद आपकी नजर मुझपर नहीं पड़ी होगी। देखिये! अब मैने उस बुड्ढेकी क्या दशा की है, वह जमीनपर पड़ा हुआ सिसक रहा है। आपसे गुस्ताखी करनेका मजा उसे मिल चुका।

युवा—(लज्जित होकर, हंसते हुए) भाई बलवन्त! तुम्हारी छोटेपनकी शरारतें अभी तक नहीं गई। आज तो तुमने मुझे खूब ही छकाया। परन्तु तारीफ है, मै बिलकुल नहीं पहिचान सका। वाह! उस वक्त तुम बोली भी क्या विचित्र प्रकारकी

बोले थे। पर यह तो कहो कि तुम अभी कहांसे आ रहे हो? मैं तो विलासपुरकी ओर न जाने कबसे टकटकी लगाये बैठा हूं।

बलवन्त—ठीक है, आप विलासपुरकी ओर टकटकी न लगायेंगे और सुशीला देवीका ध्यान न करेंगे, तो भक्तपुरुषोंकी श्रेणीमेंसे आपका नाम ही न निकाल दिया जावेगा? मै विलास-पुरकी ओरसे ही आ रहा हूं, परन्तु सीधा मार्ग छोड़कर जिसमें कोई पहिचान न सके यहां टीलेके नीचेसे आपको देखकर मुझे आपको छकानेकी सूझ आई, इससे चक्कर लगाकर पीछेकी ओरसे आपके पीछे आ खड़ा हुआ था, पर आपका ध्यान भंग नहीं हुआ।

युवा—(प्रसन्न होकर) अस्तु। अब यह तो कहो, तुमने इतने दिन विलासपुरमें रहके क्या किया, और अभी अपनी इष्टसि-द्धिमें क्या बिलम्ब है?

बलवन्त—यह तो आप मेरी चिट्ठीसे जान ही चुके है कि मै महाराज विक्रमसिंहका अत्यन्त विश्वासपात्र नौकर हो चुका हूं, और उनके दरबारमें निरन्तर रहता हूं, तबसे अब तक मै अहर्निशि इसी प्रयत्नमें रहा हूं, कि किसी प्रकारसे आपकी प्यारी सुशीला वहांसे गायब कर दी जावे। परन्तु इस तरहसे कि महाराजको किसी प्रकारसे हम लोगोपर सन्देह न हो कि यह शरारत उदय-सिंहकी है। नहीं तो वे सूर्यपुर राजको गारत कर डालेंगे। सूर्यपुर राज्यमें अभी इतना बल नहीं है कि वह विलासपुरसे विरोध कर सके। सिवाय इसके यदि आपके पिताको (निहालसिं-

हको) आपका यह चरित्र मालूम हो जावेगा तो और बड़ी विपत्ति आवेगी । इन सब बातोंको सोचकर मैंने अनेक प्रयत्न किये और वे सिद्ध भी हो जाते, परन्तु अफसोस है, उस हरामजादी रेवतीके मारे सब पर पानी फिर गया । विलासपुरमें एक रेवती ही ऐसी है, जो मुझसे चौकन्ना रहती है, और जानती है कि यह कुछ दगा करेगा । अन्य सब ही मुझे राज्यका सच्चा शुभचिन्तक समझते हैं । और तौ क्या आपकी प्राणप्यारी सुशीला भी मुझे विश्वस्त समझती है और रेवतीको मेरी ओरसे सशंकित रहते देख उसे चिढ़ाया करती है । यदि रेवतीको मै अपने हाथमें ले पाऊ तो समझिये 'पौ बारह' है । वह ऐसी विचित्र जासूस है कि पत्तेके खड़गनेसे भी चौकन्ना हो जाती है । उस दिन मैंने हरिहरको आपके पास एक चिट्ठी लेकर भेजा था कि उसने रास्तेमें ही गिरफ्तार कर लिया । न जाने उसे उसपर क्यों सन्देह हो गया । बड़ी खैरै हुई कि वह चिट्ठी उसके हाथ नहीं पडी । हरिहर अपनी चतुराईसे उसे स्वयं निगल गया और बड़ी सफाईके साथ बच गया । इस तरह अपने मार्गमें एक वही कांटा बन रही है । पर क्या चिंता है, मै रेवतीकी सब चालाकियोंका बदला एक ही दिनमें चुका दूंगा ।

उदयसिंह-(एक दीर्घनिःश्वास लेकर) अफसोस, बलवन्त ! न जाने तुम कब बदला चुकाओगे । मैं अभीतक तुम्हारे ढाढससे ही जी रहा हूं । आज मुझे बड़ी उम्मेद थी कि तुम कोई ऐसी बात सुनाओगे, जिससे मै फूला अंग नहीं समाऊंगा । परन्तु

तुम्हारी वातोंसे तो उलटे मेरे हाथ पैर टूट गये। हाय! अब निश्चय हो गया कि प्यारी सुशीलाके सौन्दर्य यज्ञमें मेरा निःसन्देह हवन होगा। अब ये प्राण अपनी प्यारीका वियोग अधिक समय तक सहन नहीं कर सकेंगे। अब तो एक एक दिन कल्पकाल जैसा बीतता है। "हा! हन्त प्रमदावियोग समयः कल्पान्तकालायते" कहां तक धैर्य धारण किया जावे। (आखोंमें आसूं लाकर) हाय! सुशीले! तुम्हारी उस दिनकी दोलाक्रीड़ावाली छवि यद्यपि सुहावनी और मनोहारी थी, और इसी-लिये वह हृदयमें धारण की गई थी, परन्तु उससे चित्तको शान्तिता मिलनेके बदले उत्ताप मिल रहा है। यदि मै यह जानता कि तुम्हारे जगन्मनोहारी रूपामृतका पान करनेसे आनन्दके स्थानमें दाह उत्पन्न होगी, तौ मैं उस उद्यानमें एक क्षणभर भी खड़ा नहीं रहता। यदि कामदेव तुम्हारी रूपराशिका सचमुच रक्षक हुआ है, और मैने उस रूपराशिको अपने हृदयसे लगानेकी इच्छा की थी, इस कारण वह कुपित होकर अपने पंचबाणोंसे मेरे हृदयको जर्जर कर रहा है, तो अब कृपा करके उसे रोक दे। मै उन बाणोंके सहनेके योग्य नहीं हूं। मेरा जीना अब कठिन है। इस संसारमें अब मेरा कोई सहायक नहीं है। प्यारे बलवन्त! एक तुमसे आशा थी, परन्तु अफसोस! तुमसेभी कुछ नहीं हुआ। बस, अब मेरा डेरा कूच है। जब प्यारी सुशीला ही नहीं मिली तो अब संसारमें जीकर क्या करना है?

बल०—(हाथ पकड़कर) उदयसिंहजी! आप इतने अधीर क्यों

हो रहे हो । मेरे जीते आपको इस प्रकार दुर्दशाके चक्करमें नहीं पड़ना होगा । आप शीघ्र ही अपनी प्यारीको पाकर प्रसन्न होंगे । वहुत करके इसी महीनेमें उसका विवाह हो जावेगा, और वह अपनी ससुरालको विजयपुर चली जावेगी । फिर वहां (विजयपुरमें) हम वड़ी सरलतासे अपना काम कर सकेंगे ।

उदय०–(एक और वड़ी आह खींचर) हाय ! तो क्या अव सुशीला किसी दूसरेकी ही होय जावेगी ? वलवन्त ! पत्थर पड़ें तुम्हारी समझपर । तुम्हें ऐसी दशामें भी आशा नहीं छोड़ती ? अफसोस !

वलवन्त०–अच्छा तो मै आशासे अपना पीछा छुड़ाये लेता हूं अर्थात् निराश हुआ जाता हूं । चलिये आप भी अपने घर चलकर आनन्द कीजिये । सुशीला तो दूसरेकी होती ही है ।

उदय०—प्यारे मित्र ! इस तरह ताने मारकर मुझे दुःखी मत करो । अभी मैं इस योग्य नहीं हूं ! इस समय ऐसी सलाह दो जिसमें मेरे सन्तप्त चित्तको कुछ शांतिता मिले । क्या विवाह मुहूर्तके पहले हम लोगोंके लिये कोई ऐसा प्रयत्न नहीं हो सकता कि वह दुःखकर विवाह ही न होवे । अथवा जैसा तुम कहते हो, विवाह होनेपर क्या विजयपुरसे हम अपने मनोरथको सफल कर सकेंगे ऐसी पूर्ण आशा है ?

वलवन्त०–मित्रवर ! परिश्रम करनेसे जो कुछ होगा, उसमें तो किसी प्रकारकी कमी की नहीं जावेगी–यथासाध्य करूगा ही । तौ भी विलासपुरके रंग ढंग देखकर सफलताकी आशा नहीं की जा

सकती, परन्तु विजयपुर पहुंचनेपर तो निश्चय ही समझिये। वहापर मैने एक ऐसे मौकेकी घात सोच रक्खी है कि उसमें कोई विघ्न ही नहीं आ सकता। सुशीला आपके घर आ जावेगी, और किसीको गुमान भी नहीं होगा कि वह कहां गई। फिर क्या है, आपको विहारके लिये इन्द्रकानन मिलेगा और मुझे धन्यवादोंका ढेर।

उदय०—(प्रसन्नतासे वलवन्तको हृदयसे लगाकर) प्यारे मित्र! क्या वह दिन मुझे इस जीवनमें प्राप्त होगा?

बलवन्त०—अवश्य ही होगा—बहुत शीघ्र होगा। (कुछ सोचकर) अच्छा तो अब मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये, क्योंकि मैं किसीसे कुछ विना कहे सुने ही चला आया हूं। ऐसा न हो कि मेरी ओरसे किसीको कुछ सन्देह करनेका अवकाश मिल जावे। हां एक बात आपसे पूछनेकी रह गई। मैंने सुना था कि आपको विजयपुर नरेशने कैदकर लिया था क्या यह सच है?

उदय०—हां, वही सीमाप्रान्तका झगड़ा उठ खड़ा हुआ था। आखिर उसका निवटारा हो गया। दूसरे दिन ही संधिपत्रपर हस्ताक्षर करके हम लोग सूर्यपुर लौट आये थे। किन्तु मित्र! यदि जीते रहे तो भूपसिंहसे इस कैदका बदला अवश्य ही चुकावेंगे। बड़े धोखेसे उसने हमको कैद किया था, नहीं तो बेचारेकी क्या ताकत थी जो मेरे साम्हने जाता। अस्तु इस विषयमें तुमसे बहुत कुछ बातचीत करना है, जो कभी समयपर करूंगा। अभी तुम्हें समय नहीं है। अच्छा है जाओ। परन्तु अब आगे कब और कहां मिलोगे, इसकी प्रतिज्ञा किये जाओ। तुमसे मिलनेसे मुझे बहुत कुछ ढाढस बँध जाता है।

वलवन्त०—अच्छा तो लीजिये जुहारु, मै जाता हूं । और टीलेपर फिर मिलूंगा । समयकी सूचना और उस ओरके सब समाचार आपको हरिहरके द्वारा ही मिला करेंगे ।

इसके पश्चात् दोनों मित्र एक दूसरेसे विदा हुए । कृष्णतृतीयाका चन्द्रमा पूर्व दिशाकी ओरसे आ रक्तवर्ण धारण किये हुये निकल आया । दोनो पापी और मलिनात्माओंके साथ २ अंधकार भी वहासे खिसकनेकी तयारीमें लगा ।

सप्तविंश पर्व ।

दिनके ११ बज चुके है । विलासपुर नेरशका दरवार भरा हुआ है । सव लोग यथास्थान वैठे हुए अपने २ कार्योंमें लग रहे है । इतनेमें एक सेवकने आकर महाराजके हाथमें अदवके साथ एक पत्र दिया । महाराजने उसपर विजयपुरनरेशकी मुहर देखकर उत्कंठासे मत्रीके हाथमें देकर उच्चस्वरसे पढ़नेको कहा । आज्ञा पाकर मत्रीने इस प्रकार पढ़ना प्रारंभ किया:—

नमः श्रीगणधरदेवाय ।

स्वतिश्री विविधवैभवसम्पन्न विलासपुर मनोज्ञराजधान्या विराजमान् सकलकलाकुशल न्यायमूर्ति धीरवीर महाराज विक्रमसिंह प्रति, विजयपूर-भूपाल रणवीरसिंहका प्रेमपुरस्सर जुहारु प्रवेश हो । शमुभयत्रापि । अपरंच—

वहु कालके पश्चात् भवदीय पत्र प्राप्त हुआ । उत्तरमें निवेदन है कि हमारे यहाके श्रीचन्द्र जौहरी एक प्रसिद्ध व्यवसायी

[illegible] पिता एक क्षत्रियकुलके वीर थे, और विज-[illegible] [illegible]करीके लिये आये थे। एक जौहरीकी नोकरीमें [illegible] भाग्यका सितारा ऐसा चमका कि थोड़े ही दिनोंमें लक्षा-[illegible] द्रव्यके स्वामी होकर प्रसिद्ध रत्नपरीक्षक हो गये। समय ऐसा पलटा कि आज बहुत थोड़े लोग इस बातको जानते है कि श्रीचन्द् वणिक है अथवा क्षत्रीपुत्र।

श्रीचन्द्रका पुत्र जयदेव हमारे राज्यका एक आभूषण है, यदि उसपर किसी सम्बन्धके अभिप्रायसे आपकी दृष्टि गई है। तो कहना होगा कि आप भी एक सच्चे रत्नपरीक्षक है। विज्ञेष्वलमिति।

चैत्र शुक्ला अष्टमी. } रणवीरसिंह

पत्रके सुनते ही सब लोगोंका हृदय आनन्दसे उछलने लगा। महाराजके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु निकल पड़े। इतनेमें ही द्वारपालने आके निवेदन किया कि द्वारपर दो सैनिक खड़े हुए भीतर आनेकी आज्ञा चाहते है, कहते है हमको महाराजसे मिलना है। आज्ञा हुई कि उन्हें आने दो। थोड़े ही समयमें दो नवयुवक सैनिकवेषमें आते हुए दिखलाई दिये। जिन्हें देखते ही महाराज प्रफुल्लित होकर अपनी आसनसे उठ बैठे और यह कहते हुए आगे जाकर उन्होने एक युवाका हाथ पकड़ लिया "प्रिय जयदेव! तुम आगये? अच्छा हुआ।" दोनों युवकोंने पूज्यदृष्टिसे महाराजको मस्तक नवाया। महाराजने आशीर्वाद देकर अपना आसन ग्रहण किया, और पास ही दोनों युवकोंको बैठनेका अनुरोध किया। युवा विनयपूर्वक बैठ गये।

महाराज—जयदेव ! सबके पहले मै यह जानना चाहता हूं कि ये तुम्हारे साथ कौन महाशय है ?

जयदेव—(नम्रतासे) ये विजयपुरनरेश महाराज रणवीर-सिंहके पुत्र और मेरे परममित्र भूपसिंहकुमार है। आपके दर्शनोंकी अभिलाषासे ये भी मेरे साथ चले आये है।

महा०–(भूपसिंहकी ओर स्नेहदृष्टि देखकर) तब तो मेरे अहोभाग्य समझना चाहिये, जो आज मेरे परममित्र महाराज रणवीरसिंहके सर्वकलाकुशल और शूरवीर पुत्र भूपसिंह अतिथि हुए है।

भूपसिंह–मै तो आपका पुत्रस्थानीय सेवक हूं। मेरे अहोभाग्य है, जो आज आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूं।

महा०–परन्तु तुम जैसे सत्पुत्रोंकी सेवकाई पाना भी तो अहोभाग्य है।

इसके पश्चात् कुशल प्रश्न हो चुकनेपर महाराजने मंत्रीको इशारा किया कि समय अधिक हो गया है, ये बाहरसे थके हुए आ रहे हैं, शीघ्र ही इनके ठहरनेका राज्योचित प्रबन्ध करो। मंत्री दोनों कुमारोंको लेकर दरबारसे उठ खड़े हुए और एक सुन्दर सजे सजाये महलमें जिसमें अनेक दास दासियां सेवकाईके लिये प्रस्तुत थीं, ले जाकर उन्हें ठहरा दिया। उस समय भूपसिंहने मुसुकुरा कर जयदेवसे कहा, मित्रवर ! मेरे अनुमानमें सन्देह नहीं है, बस 'पौ बारह' है।

कुमारोंके चले जानेपर महाराजने अपने वयोवृद्ध काका महाराज पृथ्वीसिहसे हाथ जोड़के कहा, महाराज ! यही जयदेव सुशीलाका

भावी पति हो, ऐसी मेरी इच्छा है । यह क्षत्रियपुत्र है, यह तो आप विजयपुर नरेश की चिट्ठीसे जान ही चुके है । प्रत्यक्षदर्शन शेष था, सो भी आज हो गया । अब कृपा करके सम्मति दीजिये कि यह सम्बन्ध किया जावे या नहीं ? यदि इस विषयमें और भी कुछ अन्वेषण करनेकी आवश्यकता हो तो वह भी कहिये ।

पृथ्वीसिंह—विक्रम ! मेरी तुष्टि हो चुकी । कुल और वर दोनों देख लिये, दोनों ही उत्कृष्ट और सुन्दर हैं । वरकी विद्वत्ताकी प्रशंसा जो तुम्हारेद्वारा पहले बहुत कुछ सुनी जा चुकी है वह वरकी मुखमुद्रासे स्पष्ट प्रकट होती है । अब इससे अधिक छान बीन करना ही क्या है ? बस मेरी आज्ञा है कि अब विलम्ब मत करो, शीघ्र ही विवाहका मुहूर्त निश्चित कराओ । इस भाग्यशाली जोड़ीकी कुंडली हम समझते है, विधाताने पहले ही से मिलाके रक्खी होगी, पुरोहितजीको अधिक कष्ट नहीं उठना पड़ेगा ।

पुरोहित—महाराज ! मेरा भी ऐसा ही अनुभव है । प्रायः जब एकसे रूपगुणसम्पन्न वर कन्याओंके सम्बन्ध होते हैं, तब जन्मकुंडली स्वयं मिल जाती है ।

विक्रम०—(पृथ्वीसिंहसे) और वरके पितासे आज्ञा लेनेके लिये क्या करना होगा ?

पृथ्वीसिंह—दश पांच सेवकोंके साथ पुरोहितजीको विजयपुर भेज देना होगा । बस ये ही सब कार्य सिद्ध कर लावेंगे । मेरी समझमें श्रीचन्द इस सम्बन्धको अतिशय प्रसन्नतासे स्वीकार करेंगे । तबतक यहां विवाहकी तयारियां होनी चाहिये । और विवाहकी

खुशीमें अपने राज्यमें स्थान २ पर सदावर्त और औषधालय खोल देना चाहिये, तथा वंदीगृहके सम्पूर्ण कैदियोंको छोड़ देना चाहिये। सम्पूर्ण जिनमन्दिरोंमें भगवज्जिनदेवके पंचकल्याणक महोत्सव होना चाहिये। ऋषि मुनि और श्रावकश्राविकाओंको शास्त्रकार्यालयमेंसे नवीन ग्रन्थ लिखवा २ कर दान करना चाहिये।

विक्रम०—ऐसा ही किया जावेगा।

इसके पश्चात् दरवार वरखास्त हुआ। सब लोग आपसमें आनन्दवार्ता करते हुए अपने २ स्थानपर गये। दरबारी लोग अनेक दिनोंकी छुट्टी और नाना प्रकारके पारितोषिक मिलनेके स्वप्न देखने लगे। थोड़े ही समयमें सुशीला और जयदेवके विवाह समाचार नगर भरमें फैल गये।

महाराज विक्रमसिंहके आनन्दकी कुछ सीमा नहीं रही। विजयपुरसे इच्छितपत्रका आना, तत्काल ही वृद्ध काकाकी सम्मति मिल जाना, एकसे इस प्रकार एक अधिक हर्षके विषय एकपर एक उपस्थित होनेसे हर्षोत्फुल्ल होकर वे अपने आपको भूल गये। महाराजके इस हर्षका अनुभव वही कर सकते है, जिन्हें ऐसे अवसर एकपर एक प्राप्त हुए है। संसारमें अभीप्सित विषयोंके मिलनेपर किसको हर्ष नहीं होता? महाराजकी एक अघटनीय इच्छा आज पूर्ण हो गई अतः उनके हर्षका पता लगाना सचमुच कठिन है।

अष्टविंश पर्व।

विलासपुरमें विद्युद्वेगसे चारों ओर यह खबर फैल गई कि महाराजकी कन्या सुशीलाका विवाह विजयपुरके श्रीचन्द्र जौहरीके

पुत्र जयदेवके साथ होना निश्चय हो गया है और जयदेव अपने मित्रके साथ विलासपुर आये हुए है। बस, इस बातकी चरचा घर२ होने लगी। युवा पुरुषोंमें वरकन्याके रूप और गुणोंकी तुलना होने लगी, वहुदार्शियोंमें दोनों कुलोंके इतिहासकी छिड़ी, और विद्वानोंमें दोनोंकी विद्याविलासिता सम्बन्धी वादविवाद होने लगा। परन्तु एक ओर मूर्ख स्त्रीसमाजमें जो आलोचनाका स्टीम चला वह सर्वोपरि था। सुशीलाका पिता कितना धनी है, सुशीलाके शरीरपर कितने आभूषण हैं, महाराज विक्रमसिह अपने जमाईको कितना दहेज देंगे, अमुक राजकुमारी सरीखा विवाह अब काहेको किसीका होता है। श्रीचन्द्र एक साधारण वनिया है, वह महाराजकी होड़ कैसे कर सकेगा। वहिन, सुशीला पढ़ी लिखी है तो क्या हुआ, पर उसका भाग्य अच्छा नहीं निकला। राजकुमारी होकर बेचारी एक वनियेके घरपर जावेगी। वीचमें एक दूसरी बुद्धिमतीने उत्तर दिया, वाह! तू भी वावली हुई है। महाराजके अब दूसरा है ही कौन? जयदेवको ही घरजमाई बना लेंगे, फिर सुशीलाको दुःख ही क्या होगा? दूसरीने कहा, वाह! ऐसा क्या श्रीचन्द्र कंगाल है जो अपने वेटेको दूसरेका कर देगा, वह भी तो एक जौहरी है। जौहरीके धनका क्या पार है? इस प्रकार जगह २ मनोरथोंके घोड़े दौड़ने लगे।

जयदेव अपने मित्र भूपसिंहसहित एक स्वतंत्र राजभवनमें ठहराये गये थे। दूसरे ही दिनसे दर्शकोंकी, आलोचकोंकी और परीक्षकोंकी असीम भीड़ उनके निकट रहने लगी। जितने लोग आते थे, सब ही इन कुमारोंसे मिलकर प्रसन्न होते हुए जाते थे।

जो जिस स्वभावका पुरुष आता था, ये दोनों उसीके अनुकूल हो जाते थे । बड़े २ विद्वानोंके मुखसे द्वारपर लौटते हुए साधु ! साधु ! शब्द ही सुनाई पड़ता था । काव्य, अलंकार, व्याकरण, न्यायादि सब ही विषयोंकी प्रासंगिक आलोचनासे सब ही को उनके पास आनन्द प्राप्त होता था ।

तीसरे दिन पुरोहित महाशय विजयपुरसे विवाहकी स्वीकारता लेकर वापिस आ गये । अर्थात् श्रीचन्द्रजीने यह सम्बन्ध प्रसन्नता पुर्वक स्वकिार कर लिया । थोड़ा सा सन्देह था वह भी दूर हो गय, इससे महाराज विक्रमसिंहको सीमाधिक आनन्द हुआ । चारोंओर आनन्द बधाये बजने लेगे, विवाहकी तयारियॉ होने लगीं । वैशाख शुक्ल २ के शुभमुहूर्तमें पाणिग्रहण निश्चय हुआ । जयदेव और भूपसिंहकी विदाई की गई, बड़े ठाठवाटसे वे विजयपुर पहुंचाये गये।

* * * * *

अब यहांपर हम दोनों ओरकी विविध तयारियोंका हाल लिखकर पाठकोंका समय नष्ट नहीं करना चाहते है । पाठक स्वयं विचार लेवें कि एक पराक्रमी नरेश और दूसरे एक धनकुबेर जौहरीने इस कार्यमें कितनी उदारता न दिखलाई होगी ? विजयपुरसे बड़ी प्रभावशाली बारात आई । विजयपुरके नरेश स्वयं महाराज रणवीरसिंह जिस बारातमें आये, फिर उस बारातमें त्रूटि ही किस बातकी होगी ?

जिस प्रकार महाराज विक्रमसिंहकी उदारतासे उनके राज्यमें चारोंओर आनन्द ही आनन्दकी मूर्तिया दृष्टिगोचर होती थीं, उसी

प्रकार श्रीचन्द्रकी उदारतासे विजयपुर राज्य हराभरा हो गया था। यों तो श्रीचन्द्रकी ओरसे विजयपुर राज्यमें पहले ही से अनेक सदा-वर्त चलते हैं, परन्तु इस पुत्रविवाहकी खुशीमें उन्होंने धनको पानीसे भी हलका बना दिया था।

शुभ दिन और शुभ मुहूर्तमें ऋषिप्रणीत वैवाहिक विधिके अनुसार पाणिग्रहण हुआ। कन्याके माता पितादिकने जिस समय कहा "हे कुमार! यह कन्या हम लोग आपकी चरणसेवाके लिये देते हैं, इसको ग्रहण किजिये और इसकी धर्मपुर्वक पालना कीजिये" इसके उत्तर में लज्जावन्त मस्तक जयदेवने **'वृणेहम्'** कहकर **'धर्मेणार्थेन कामेन पालयामि'** यह वाक्य कहे। उस समय प्रायः सभी दर्शकोंके नेत्रोंसे दो २ चार २ प्रेमाश्रु झड़ पड़े। अहा! दोनों ही ओरके कैसे सुन्दर वाक्य थे, जिनसे आर्यकुलके पुरुष स्त्रियोंका कर्तव्य क्या है, सर्वथा स्पष्ट हो जाता था। स्त्रीका धर्म है कि वह अपने पतिकी चरण सेवा करके अपना जीवन व्यतीत करे और पुरुषका कर्तव्य है, कि धर्म, अर्थ और काम पूर्वक उसका पालन करे। जो स्त्री और पुरुष विवाह समयमें कहे हुए उपर्युक्त वाक्योंका स्मरण नहीं रखते है, वे न केवल अपनी प्रतिज्ञाका ही घात करते है, वरन भगवद्वाक्योंका निरादर करके पापोपार्जन भी करते है। क्योंकि भगवान्का शासन यही है कि गृहस्थजीवनमें पुरुष और स्त्रियोंको एक दूसरेका सहायक होकर कालक्षेप करना चाहिये। गृहवासियोंका यही धर्म है और इसीमें उनका कल्याण है।

विवाह कार्य समाप्त हो गया। श्रीचन्द्रने महाराज विक्रमसिंहके

हृदयसे लगकर विदाई मांगी । उस समय विक्रमसिंहने महाराज रणधीरसिंहसे और श्रीचन्द्रसे अतिशय नम्र होकर यह प्रार्थना की कि आप लोग कृपा करके अपने दोनों पुत्रोंको थोड़े दिनके लिये यहां और छोड़ जावें तो बहुत अच्छा हो, अन्तःपुरकी ओरसे इस विषयका विशेष आग्रह हो रहा है. मै बहुत शीघ्र ही इनके भेजनेका प्रवंध कर दूंगा । महाराजकी प्रार्थना अस्वीकार नहीं हो सकी। बडे स्नेहसे दोनों ओरके सम्बन्धीगण गले लगकर मिले और पीछे विदा हुए । धूमधामके साथ बारात विजयपुरकी ओर लौटी ।

जयदेव और भूपसिंह स्वतंत्र राजभवनमें ठहराये गये । सुशीलाकी समवयस्क सहेलियोंने दोनों कुमारोंसे आमोद प्रमोदकी मीठी २ छेड़ छाड शुरू की । रेवतीने एक दिन बागमें टहलते हुए सुशीलासे कहा, क्यों सरस्वतीजी ! अब तो आप विजयरपुके सेठजीके नामसे नहीं चिढ़ोगी, यदि आज्ञा हो तो उस दिनकी बात सेठजीको बुलाकर कह दूं । सुशीलाने इसके उत्तरमें मुसुकुराकर रेवतीके गालपर एक चपत जमा दी सबकी सब सखियां खिलखिला कर हँस पड़ीं ।

एकोनत्रिंशत पर्व ।

जयदेव और भूपसिंह एक महीने विलासपुरमें रहे । ऐंसा न समझना चाहिये कि दोनोंने ये दिन केवल आमोद प्रमोदमें ही खो दिये । इस बीचमे उन्होंने विलासपुर राज्यके नामी २ पंडितों, राजनीतिज्ञों और दार्शनिकोंसे खूब परिचय कर लिया । उनसे वार्तालाप करके उन्होंने अपरिमित कीर्तिका सम्पादन किया ।

राजाके मंत्रियोंसे, सेनापतियोसे और विविध कार्याध्यक्षोंसे मिलकर उन्होंने राज्यव्यवस्थाकी खूब ही पर्यालोचना की और जो २ त्रुटियां राज्यकार्योंमें जान पड़ीं उन्हें बड़ी सरलतासे मंत्रियोंको समझा दीं। सरस्वती पाठशालाका दो वार निरीक्षण किया और प्रसन्न होकर वालिकाओंको यथोचित परितोषिक दिया। तीसरीवार पाठशालामें फिर जानेकी इच्छा थी, परन्तु एक दिन वगीचेमें टहलते समय सुशीलाकी सखी चन्द्रिका जयदेवसे छेड़ वैठी कि 'कुंअरजी! सरस्वती पाठशाला के देखनेके लिये वार २ आप इतने अधीर क्यों होते है, अब वह किसी दूसरेकी थोड़े ही हो जावेगी।' बस जयदेव फिर सरस्वती पाठशालाको देखनेके लिये नहीं गये।

एक महीना वीत चुका, भूपसिंहने महाराजसे विदाईकी प्रार्थना की और कहा, महाराज! यद्यपि हम लोग यहा आपकी सेवामें रहकर अपने मातापिताके लाड़चावको भूल गये है, तथापि बहुत दिन हो चुके हैं, वहांके लोग भी उत्सुक हो रहे होंगे, इस लिये अब हम लोगोंको जानेकी आज्ञा दीजिये। महाराजने आत्मभावसे कुमारोंकी इच्छा रोकना ठीक नहीं समझा, इसलिये उन्होंने दूसरे दिन ही महाराणीकी सम्मति पूर्वक बिदाईका दिन निश्चित कर दिया।

विदाईका समय आ पहुंचा। महाराणीने सम्पूर्ण सौभाग्यालंकारोंसे सुसज्जित सुशीलाको अपने पास बिठाया और गलेसे लगाकर कहा, प्यारी बेटी! लोकरीतिके अनुसार मुझे अपने प्राणको आज

अपनेसे अलग करना पड़ता है। तूझे अब एक नवीन संसारमें जाकर अपना जीवन व्यतीत करना होगा। यदि लोकरीति दुर्निवार न होती, तो बेटी! तुझे मै अपनी आखोंके साम्हनेसे कभी नहीं टलने देती, परन्तु क्या करूं, कुछ वश नहीं है। अब तू जाती है, अतः इस समय माताका जो धर्म है, उसके अनुसार मेरा कर्तव्य है कि तुझे कुछ उपदेश दूं। परन्तु यथार्थमें तुझे समझानेकी कुछ आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तू स्वयं पडिता है। माताको सबसे बड़ी चिन्ता इस बातकी रहती है कि मेरी लड़की अपने श्वसुरालमें न जाने किस तरहसे रहेगी, परन्तु सरस्वति बेटी! मुझे इसकी सर्वथा चिन्ता नहीं है। तुझ जैसी सुशिक्षित पुत्रीसे दोनों ही कुल शोभायमान होंगे, यह मै अच्छी तरहसे जानती हूं। तेरे दूरदर्शी पिताने जिस प्रकार तुझे सब प्रकारसे पढ़ा लिखाकर विद्यामती बनाई है, और निर्दोष संगतिमें रखकर जिस प्रकार सदाचारके सांचेमें तुझे ढाला है, सौभाग्यकी बात है कि उसी प्रकारका बल्कि उससे कहीं बढ़कर विद्वान् और निष्कलंकपति भी तुझे मिला है। श्रीजिनेन्द्रदेवके प्रसादसे तेरे आगमी संसारमें मुझे किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं दिखलाई देती है। गृहस्थजीवनके सम्पूर्ण सुख पतिकी अनुकूलता, गृहकार्योंमें सुदक्षता, गुरुजनोंकी सेवा और देवगुरुशास्त्रकी सच्ची भक्तिमें है।

सांसारिक दृष्टिसे स्त्रीका मुख्य प्राण पति है और पतिका मुख्य प्राण पतिप्राणा स्त्री है। जहा ये दोनों भाव नहीं है, वहा सुख नहीं है। स्त्रीकी अन्वर्थ सज्ञा गृहिणी है और उसे गृहिणी तभी कह

सकते है, जब वह गृहकार्योंमें दक्ष होकर गृहकी अधिकारिणी हो। गुरुजनोंकी सेवा करना स्त्रीका परमधर्म है, क्योंकि सेवासे वे प्रसन्न होते है; और उनकी प्रसन्नता प्रत्येक व्यक्तिको आशीर्वादस्वरूप होती है। जो स्त्री गुरुजनोंकी सेवा करना नहीं जानती है, वह अतिशय कृतघ्नी है। सच्चा सुख मोक्षमें है। और उसकी प्राप्तिका एक मात्र उपाय देवगुरु और शास्त्रकी भक्ति है। गृहस्थधर्ममें इस भक्तिकी पालना करनेसे परंपरारूप मोक्षमार्गकी प्राप्ति होती है। सुशीला बेटी! बस, यही मेरा उपदेश है। अब तू जा और आजसे अपने पतिको अपने प्राणोंका स्वामी समझ। अपने माता पिताके स्थानमें अपने सास ससुरको नवीन मातापिता समझकर उनकी आज्ञाकारिणी होकर रह।

इसके पश्चात् महाराणीका गला भर आया—अधिक नहीं बोला गया। सुशीलाने अपनी माताके गोदमें सिर रख दिया। इतनेमें महाराजने आकर सुशीलाको उठा लिया और समझाकर कहा बेटी! मूर्खा लड़कियोंके समान क्या तू भी रोती है। छिः! रोनेसे अमंगल होता है। इस समय तो हम लोगोंका आशीर्वाद लेकर प्रसन्नमुख होकर जाना चाहिये। यह सुनते ही सुशीला प्रसन्न हो गई। आसुओंको पोंछकर उसने माताके चरणोंको छुआ। माताने भी महाराजके भयसे आंसुओंका संवरण करके आशीर्वाद दिया। पश्चात् सुशीलाने पिताको नमस्कार किया। पिताने कहा बेटी? तू बुद्धिमती है, जो बुद्धि तूने प्राप्त की है, उसका तू यथोचित उपयोग करके पतिपरायणा होवे, मेरा यही आशीर्वचन

है । इसके पश्चात् अन्य सम्पूर्ण गुरुजनोंकी आशीष पा चुकनेपर सुशीलाको रेवती आदि सखिया बाहर लाईं और उसे एक सजे सजाय रथपर सवार कराके आप भी उसीमें बैठ गईं ।

इसके पश्चात् दोनों कुमारोंने आकर महाराजको नमस्कार किया और आज्ञा चाही । महाराजने आशीर्वाद दिया और कहा कि जिनधर्मके प्रसादसे आप लोगोंमें पराक्रम, साहस, धैर्य्य, विद्या, कला और कुशलताओंकी दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो। आप लोग जाते है, और मुझे इच्छा न रहते भी आप लोगोंसे अगल होना पड़ता है—यह खेद है। अस्तु मै अपने गृहका प्राणोंसे प्यारा अमूल्य रत्न आपकी सेवाके लिये आपके साथ भेजता हूं । यह रत्न ही नहीं, किन्तु मेरा एक प्राण है। अब इसकी रक्षा पालना करना आपका धर्म है । बस, अब मै अधिक कुछ नहीं कहना चाहता हूं, विलम्ब हो रहा है, इसलिये आप लोग जाइये ! परन्तु स्नेह बनाये रखिये ।

इसके पश्चात् ही रथ हांक दिया गया । दोनों कुमार भी अपने घोड़ोंपर सवार होके चलने लगे। नगरके हजारों मनुष्य और राज्यके अनेक कार्यकर्त्तागण बहुत दूर तक पहुंचाने गये दहेजका माल असबाब पीछेसे गाड़ियोंपर लदवा दिया गया, और उसको निर्विघ्न पहुंचानेके लिये बलवंतसिंह गाड़ियोंके साथ गया ।

त्रिंश पर्व ।

सूर्यपुर राज्यकी सरहदमें एक छोटासा ग्राम है उसके निकट एक बगीचा है, जिसमें आम और बड़के अनेक सघन वृक्ष लगे है ।

यहांसे विजयपुर चार पांच कोस दूर है। आज यहीं पर भूपसिंह जयदेव आदिका डेरा पड़ा हुआ है।

रात्रिके १२ बजनेमें १०–५ मिनटकी देर होगी। दिन भरके थके मांदे लोग आनन्दसे नीदके खुर्राटे लगा रहे हैं। यद्यपि शुक्ल पक्षकी रात्रि है, परन्तु आकाशके बादलोंने घेर रक्खा है, इससे चन्द्रमा कहां है, इसका ठीक २ निश्चय नहीं हो सकता है। ग्रीष्मकालकी ऊष्माके मारे लोग पसीनेमें तर हो जाते हैं, जिससे बीच २ में नींद भी खुल जाती है, परन्तु ज्यों ही सामुद्रिक हवाका एकाध झोका आता है कि फिर ध्यानस्थ हो जाते हैं। पहरा देनेवाले सिपाही भी निद्रासे झुक झुक जाते है। कभी २ अचेतताके कारण उनके हाथोंमेंसे बन्दूकें गिरकर लोगोंको चौंका देती है।

इसी समय बलवन्तसिंहने भूपसिंहके तम्बूमें जाकर उन्हें जगाया और कहा कि सबेरा होनेमें अब बहुत थोड़ा विलम्ब है। यदि सामुद्रिक यात्राकी इच्छा हो, तो चलिये मै किनारेपर जाकर सब बन्दोवस्त कर आया हूं। यहांसे सिर्फ २ मीलपर समुद्र किनारा है। वहांपर एक छोटा सा जहाज उपस्थित है। मल्लाहोंसे मैं उसका किराया वगैरह ठहरा आया हूं। वे लोग कहते है कि सबेरे ७–८ बजे तक आप लोग विजयपुर खुशीसे पहुंच जावेंगे।

भूपसिंह बलवन्तकी बातोंमें आ गये, उन्होंने जयदेवको भी जगवाया, और एक सम्मति होकर घोड़े कसवा लिये। सुशीलाके लिये रथ तयार हो गया, रेवतीको भी साथ चलनेको कहा, परन्तु वह कोई विशेष कारण बतलाके समुद्रयात्राके लिये राजी नहीं हुई।

आखिर एक सखी और आठ दश सेवकोंको लेकर जयदेव आदि तीनों व्यक्ति किनारेपर पहुंचे, वहां मल्लाह लोग बाट देख रहे थे। दो तीन सेवकोंको घोड़े और रथके साथ वापिस भेजकर बाकी सेवकोंके साथ वे जहाजपर सवार हो गये। बलवन्तसिंहके प्रयत्नसे जहाज अच्छी तरहसे सजाया गया था, बैठनेके लिये गद्दे वगैरह बिछा दिये गये थे, जिनसे बैठनेमें कष्ट न हो। सुशीलाके लिये एक पृथक् बैठक बनाई गई थी, उसमें सुशीला और उसकी सखी चन्द्रिका बैठ गई।

इसके बाद ही जहाज छोड़ दिया गया। सामुद्रिक वायुके शीतल झोकोंसे निद्रादेवीका पुनराव्हानन होने लगा। सब लोग सिर झुका-झुकाकर उनका सत्कार करने लगे। थोड़ी देरमें बादलोंके बिखरनेसे चांदनी निकल आई, मालूम हुआ कि अभी आधीरात ही हुई है। भूपसिंहने चौंककर कहा—अरे! बलवन्त तो कहता था कि सबेरा होना ही चाहता है।

* * * * *

पाठक गण! इसके बाद क्या हुआ सो आप पहले पर्वमें पढ़ ही चुके हैं कि, थोड़ी देरमें मेघ गरजने लगे, आंधी चलने लगी और जहाज एक छोटी चट्टानसे टकराकर डूब गया। परन्तु शायद आप यह नहीं जानते हैं कि एक छोटीसी चट्टानसे टकराकर जहाज इतनी जल्दी क्यों डूब गया? इसलिये यहां प्रगट कर दिया जाता है कि यथार्थमें इसमें एक गुप्तरहस्य था, वह यह कि जब उस दिन जयदेवादि विलासपुरसे चले थे, उस समय इतनी गर्मी हो रही थी कि वह सहन नहीं हो सकती थी—पृथ्वीने पजावेका रूप धारण किया था। इसलिये उससे व्याकुल होकर जयदेव और भूप-

सिंहने प्रस्ताव किया था कि अब शेष यात्रा यदि समुद्रसे की जावे, तो इस कष्टसे बच सकते है; अन्यथा कल फिर भी यही व्यथा भोगनी पड़ेगी। दो घंटे रात शेष रहने पर कूच कर दिया जावेगा, तो जलमार्गसे सवेरे ही ७–८ बजे तक विजयपुर पहुंच जावेंगे। यह प्रस्ताव कई सेवकोंके द्वारा अनुमोदित होनेपर यह निश्चय किया गया था कि बलवन्तसिंह किनारेपर जाकर जहाज वगैरहका बन्दोबस्त कर आवे, और दो घंटा रात्रि शेष रहने पर सबको जगा देवे। ऐसा ही हुवा। बलवंतसिंहने किनारपर जाकर जहाजको किरायेपर ठहराया और पापीने उन्हें दश २ बीस २ रुपये अधिक देकर मार्गमें जहाज डुबा देने कि बात भी पक्की कर ली। वह समुद्र किनारा सूर्यपुर राज्यमें ही था, और बलवन्तसिंह सूर्यपुरके महाराजका नौकर था, इसलिये मल्लाहोंने उस कार्यमें बिलकुल आनाकानी नहीं की, और आखिर बादलोके घिर आने और आंधी चलनेका अच्छा मौका देखकर उन्होंने सर्वनाश कर दिया!

रेवती इस कारणसे सुशीलाके साथ जहाजपर नहीं गई कि यदि मैं बलवंतका साथ छोड़ दूंगी, तो यह मार्गमें जो २ गुप्त मंत्रणायें करेगा वे मुझे मालूम नहीं होंगी, जिनके न मालूम होनेसे आगे आपत्ति आनेकी संभावना है। परन्तु रेवती चूक गई और बलवन्तका उपाय काम कर गया। अपसोस!
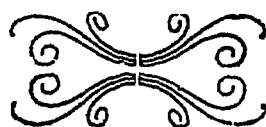
दूसरा भाग।

पहला परिच्छेद।

कर्मोंकी बड़ी विचित्र गति है। जिन बातोंकी कल्पना भी किसीके हृदयमें उत्पन्न नहीं हो सकती, वे बातें हम कर्मोंकी कृपासे प्रतिदिन होती हुई देखते है। राजासे रंक बनाना और रंकसे क्षत्रधारी बनाना कर्मोंका ही कृत्य है। कर्मोंकी दृष्टिमें धनवान्, दरिद्री, विद्वान्, मूर्ख, बलवान् और शक्तिहीन सब एक हैं। वे सबके ही गलेमें एक २ रस्सी डालकर नृत्य कराते हैं। कोई इस नृत्यसे सुखी हो अथवा दुखी हो इसकी उन्हें परवाह नहीं है। उनका कार्य एक क्षणमर भी बन्द नहीं होता।

सूर्यपुरके एकान्त बागके बंगलेमें सुशीला मूर्च्छित पड़ी है। दो तीन दासियां उसको सचेत करनेकी चिन्तामें लगी हुई है। कोई पंखा झलती है, कोई गुलाबजल छिड़कती है, कोई उसके बिखरे हुए केशकलापको सम्हालकर मुखमंडल परके मोतीसे चमकते हुए पसीनेके बिन्दुओंको रूमालसे साफ करती है। साम्हने खड़ा हुआ उदयसिंह विषाद किन्तु हर्षोन्मीलित अनिमिष नेत्रोंसे उसकी ओर देख रहा है। परन्तु सुशीलाके जगज्जयी रूपको देखते हुए उसके नेत्र तृप्त नहीं होते। शरीर कंटकित हो रहा है, पैर स्तंभित हो रहे हैं और वाक्शक्ति स्तम्भायमान हो गई है। ऐसा जान पड़ता है, मानों एक जड़ मूर्ति ही यहां स्थिर हो रही है।

थोड़ी देरमें सुशीलाने आंख खोली, परन्तु उदयसिंहकी ओर एक घृणायुक्त दृष्टि डालकर बन्द कर ली। मूर्च्छित होनेके पहले उसे जो भय हुआ था, उस भयसे बचनेका अपने सामर्थ्यके सिवाय अब दूसरा उपाय नहीं है, वह इसीका विचार करने लगी। उदयसिंहकी जड़मूर्तिमें चेतना आई। दासियां अलग हो गई। उदयसिंहने कोमल स्वरसे कहा, प्रिये! अब वियोग नहीं सहा जाता, इस दासपर और कुछ नहीं तो इस समय एक प्रेमकटाक्षकी ही कृपा करो। सुशीलाने फिर आंख खोली और एक तिरस्कार भरी हुई दृष्टि उदयसिंहपर डालकर बन्द कर ली। अबकी वार उदयसिंहने यह कह कर कि "हृदयेश्वरी! अब यह प्रेमसमाधि कबतक लगाये रहोगी? मुझसे कुछ अपराध हुआ हो तो क्षमा करो, इन तीखे कटाक्षोंके सहन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है।" साहस करके अपना हाथ सुशीलाकी ओर बढ़ाया, परन्तु वह हाथ उस दिव्यमूर्तिसे निकलती हुई पुण्यप्रभाको भेद करके आगे न जा सका। सुशीला चमकके उठ बैठी और बोली—उदयसिंह! मुझे निश्चय हो गया कि तुम्हारे मित्र बलवन्तसिंहने तुम्हारे लिये ही ये सब चक्र चलाये थे। तुम समझते होगे कि ऐसा करनेसे मेरी इष्टसिद्धि हो जावेगी, और दोनों कुमारोंके न रहनेसे मेरे सुखमें कोई काटा नहीं रहेगा, परन्तु यह सब तुम्हारी भूल है। पापियोंको कभी सुख नहीं मिलता, और पापमें सुख नहीं है। यद्यपि मै इस समय अबला हूं, असहाया हूं, इस समय मेरा कोई रक्षक नहीं है; परन्तु स्मरण रक्खो कि स्त्रीको अपने सतीत्वकी रक्षा कर लेना कोई कठिन कार्य नहीं है। स्त्रीके पास एक ऐसा

विषम शस्त्र है कि उसके आगे तुम्हारे जैसे कामार्त्त पुरुषोंका कोई बल नहीं चल सकता है। तुम्हारी सब विटम्बनायें व्यर्थ हैं। तुमने जो पाप विचार किया है, उसकी पूर्ति सर्वथा असंभव है। व्यर्थ ही तुम एक भ्रममें पड़े हुए कर्मबन्ध कर रहे हो, जिसका परिपाक बहुत बुरा होगा। राजा निहालसिंह जैसे सदाचारी और धर्मज्ञ पुरुषरत्नके पुत्र होकर ऐसे दुराचारों और पापकर्मोंमें प्रवृत्त होते हुए तुम्हें लज्जा आनी चाहिये। तुम मेरे भाईके समान हो, इसलिये समझाती हूं कि अब भी इस पापवासनाको छोड़ दो, और मुझे जहांकी तहां पहुंचा दो, तुम्हारा इसीमें कल्याण है।

उदयसिंह—वाह! वाह! आखिर सरस्वती ही तो ठहरी। क्यों न हो? अहा! कैसा बढ़ियां व्याख्यान हुआ है। परन्तु जान पड़ता है कि व्याख्यात्री महाशयाने अभी प्रेमशास्त्रका अध्ययन नहीं किया है। यही कारण है कि आप प्रेमको पापवासना समझती हैं, और उसका परिपाक बुरा बतलाती है, परन्तु यथार्थमें प्रेम एक स्वर्गीय पदार्थ है। वह तभी तक बुरा जान पड़ता है, जब तक कि अनुभवमें न आ जावे। प्रेमका आस्वादन करनेपर समस्त संसार प्रेम ही प्रेममय दिखलाई देता है। और सच पूछो तो प्रेमके विना संसारका कोई काम ही नहीं हो सकता। इसलिये मै प्रेमपूर्वक प्रार्थना करता हूं कि आप प्रेम करना और सीख लें, जिसमें आपकी पढ़ी हुई विद्या परिपूर्ण तथा सफल हो जावे। देखिये, जरा मेरी ओर दृष्टिपात कीजिये! मुझमें आपको प्रेमके साक्षात् दर्शन होंगे।

सुशीला—उदयसिंह! जान पड़ता है कि इस उन्मत्तताकी दशामें तुम्हारे हृदयपर मेरी बातोंका कुछ भी असर न होगा। तुम उपदेशके पात्र नहीं हो, मोहने तुम्हें अंधा कर दिया है। यही कारण है कि भाई! भाई! कहनेवाली इस भगनीको भी तुम पापवासनासे देख रहे हो, और अधमकी नाई उसके आगे भी प्रेम! प्रेम! बकते हुए नहीं लजाते। छिः! छि!! धिक्कार है, तुम्हें हजार वार धिक्कार है! मै अब भी कहती हूं कि तुम विवेकको सर्वथा तिलांजुली मत दे डालो, अपने हित और अहितका कुछ विचार करो।

उदय०—प्यारी! मै अपना हित खूब विचार चुका हूं। तुम चाहे मेरा तिरस्कार करो, चाहे धिक्कार दो, मुझे अविवेकी कहो, हिताहित-विचार—शून्य कहो, और चाहे जो कहो, परन्तु मैने अपना कल्याण एक तुम्हारे प्रेममें ही समझा है। तुम्हारा प्रेम ही मेरा जीवन है, तुम्हारा प्रेम ही मेरे प्राण है और तुम्हारा प्रेम ही मेरे सुखकी पराकाष्ठा है। आज तक जो कुछ मैने विरहदुःख सहे है, वे सब एक तुम्हारे प्रेमके लिये सहे है। अपने हृदयमंदिरमें तुम्हारी इस मनोमोहिनी मूर्तिकी स्थापना मैने इसी प्रेमफलके लिये की है। तबसे अबतक मैं प्रतिदिन चार चार छह छह घंटे नेत्र बन्द किये हुए अविश्रान्त आँसुओंसे तुम्हारा अभिषेक किया करता हूं। पाषाणकी मूर्तियां सुनते है कि सेवकजनोंकी अर्चासे प्रसन्न होकर उनके अभीष्ट मनोरथोंको पूर्ण करती है। परन्तु हाय! तुम्हारी यह सजीव सदयहृदय मूर्ति उस पाषाणसे भी कठोर हो रही है, जो अपने इस अनन्य भक्तपर तनिक भी दया नहीं करती हो। मेरा हृदय तुम्हारी वियो-

गाग्निसे जल रहा है, दया करके अब भी उसे अपने प्रेमवारिसे सिंचन करके शान्त करो, नहीं तो ये प्राण नहीं बचेंगे।

सुशीला—देखो उदयसिंह! मै एक बार फिर कहती हूं कि तुम अभी तक समझ जाओ और ये पागल जैसी बातें छोड़ दो। इन चाटुकारोंसे मेरे द्वारा तुम्हारी इष्टसिद्धि कदापि नहीं हो सकती। सूर्य पूर्वसे पश्चिममें ऊग सकता है, अग्नि शीतल हो सकती है, पानी पर पत्थर तैर सकते है और समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ सकता है, परन्तु वीरकुल-शिरोमणि महाराज विक्रमासिंहकी पुत्री और पंडितमुकुट श्रीजयदेवकी सहधर्मिणी सुशीलाके जीतेजी उसका पातिव्रतपूर्ण शरीर कोई स्पर्श नहीं कर सकता है। जो शरीर अपने आराध्य देव जय-देवके लिये समर्पित हो चुका है, संसारमें उस निर्माल्यद्रव्यके पानेका कोई अधिकारी नहीं है।

उदयसिंह—बस! बस! अब यह नखरे रहने दीजिये। तुम्हारी इस ज्ञान गुदड़ीको फिर कभी देखूंगा। इस समय तो केवल प्रेमकी पिपासा है, सो एक वार अपने अधरामृतका पान करके उसको शान्त करने दीजिये।

यह कहकर उदयसिंहने अपना बाहुपाश सुशीलाकी ओर ज्यों ही बढ़ाया, त्योंही सुशीलाने उसे झिड़ककर उच्चैःस्वरसे कहा, मूर्ख कामान्ध! खबरदार! मुझे स्पर्श नहीं करना।

यह कठोर कंठस्वर तीक्ष्णधारवाले बाणकी तरह उदयसिंहकी छातीपर जाके लगा कि उदयसिंह उस क्रोध-प्रज्वलित मूर्तिके आगेसे कांपते २ दो तीन हाथ पीछे हट गया।

सुशीलाने भृकुटिसंचालन करते हुए कहा कि चांडाल ! तेरे घर जो माता है; मैं तेरी वही माता हूं, तेरी जो कन्या है, मै तेरी वही कन्या हूं, और तेरी जो बहिन है, मैं तेरी वही बहिन हूं । क्या अपनी माता, कन्या और बहिनसे तू प्रणयकी याचना करता है ? छिः पापी ! मुझे जहांकी तहा पहुंचा दे और अपने पापका प्रायश्चित्त कर ।

जय०—ओह ! क्या श्रीमतीजी रुष्ट हो गई हैं । हां ! हा ! मानिनी हुई है । अच्छा, तो मै हाथ जोड़ता हूं, मेरी धृष्टतां क्षमा कीजिये और आलिङ्गन दे........

सुशीला बीचमें रोककर बोली,—रे पशु ! मै तेरी माता हूं, अपनी जिन्हाको रोक ।

उस समय सुशीलाकी अवस्था दर्शनीय थी । क्रोधकी प्रचंड ज्वाला लज्जालु, कोमल, सरल और सदय मूर्तिको कैसा बना देती है, सुशीला उसका उदाहरण थी । उसके आकर्ण—विस्फारित नेत्र नीलकमलकी उपमाको छोड़ रक्तकमल बन रहे थे, बिम्बाफलसे ओ-ष्ठयुगल फड़क रहे थे, भृकुटियां खींचे हुए धनुष्यकी तरह वक्र हो रहीं थीं और सारे शरीरमेंसे एक प्रकारकी तेजःप्रभा निकल रही थी ।

" अब चाटुकार और आनुनयोंसे कार्यसिद्धि होनी कठिन है; स्त्रीजाति विना थोड़े बहुत भयके वशमें नहीं आती । " उदयसिंहने यह सोच कर दासियोंको पुकार कर कहा कि इसके दोनों हाथ पकड़ लो, क्योंकि ऐसा किये विना अब यह प्रसन्न होती नहीं दिखती । आज्ञाके साथ ही दो दासियां दोड़ी आईं और सुशीलाकी

ओर पकड़नेके लिये झपटी। परन्तु उस समय सुशीलाके सुकोमल शरीरमें अमानुषीय बल आ गया। उसने हाथ लगानेके साथ ही ऐसा झटका दिया कि दोनों दासियां चार. २ हाथके अन्तरपर जा पड़ी। उनके पड़नेपर सुशीलाने चोट खाई हुई भुजङ्गनीके समान चंचल होकर और उदयसिंहकी ओर तर्जनी उठाकर कहा, पापात्मन्! अब क्या तू मुझे भय दिखलाकर वशमें करनेका स्वप्न देख रहा है? छिः यदि एक वार साक्षात् यमराज भी मेरे सन्मुख आ जावे, तो मै उससे डरनेवाली नहीं हूं, तुझ नरकीटकी तो बात ही क्या है? जिस सच्चे पातिव्रतको रावण जैसा पराक्रमी और प्रचंड पृथ्वीपति भंग नहीं कर सका है, जिस स्त्री मर्यादाको दुर्योधन जैसा वैभवशाली तोड़ नहीं सका है, और जिस शीलरत्नके लेनेके लिये अनेकानेक राजा अपनी सम्पूर्ण राज्यलक्ष्मी नष्ट कर देनेपर भी नहीं पा सके है, छिः! उस पातिव्रत, मर्यादा और शीलरत्नका तेरे जैसे कायर, कापुरुष, और रंक क्या विगाड़ सकते है? तू किस खेतकी मूली है? जिस पुण्यकर्मने सीता, द्रोपदी, मनोरमा, गुणमाला आदि नारीरत्नोंकी रक्षा की थी, पापी! तेरे हाथसे वही पुण्य आज मेरी भी रक्षा करेगा। तू समझता होगा कि इस समय सुशीला मेरे अधिकारमें है, मै भय दिखाकर चाहे जो कर सकता हूं; परन्तु मूर्ख! जरा विचारके देख कि पहरेदारों और दासदासियोंसे घिरे हुए इस एकान्त भवनमें जिस तरह तू मेरे शरीरको कैद रख सकता है, क्या उस तरह मेरे इस अदृश्यभूत अन्तरात्मापर भी तू कुछ बल चला सकता है? नहीं, मेरा निष्पाप और निर्लेप आत्मा सब प्रकारसे स्वतंत्र है, उसपर किसीका अधिकार नहीं है।

तेरे पापपंकलिप्त घृणित शरीरके स्पर्श होनेके पहले ही मेरे प्राण चूक कर देंगे। फिर पिशाच! खूब प्रेमसे इस रक्त मांस और हड्डियोंके पिंडको श्वानकी तरह चाट चाटके प्रसन्न होना। तू यह न जानना कि प्राण निकालना कोई असंभव कार्य है। नहीं, देखते ही देखते केवल एक ही उच्चोश्वासमें यह शरीर प्राणहीन हो जावेगा तुझ जैसे नराधमोंको सन्मुख देखनेकी अपेक्षा मर जाना अच्छा है! हजार वार अच्छा है!!

उदयसिंह सन्न हो गया। सुशीलाकी रुद्र मूर्ति और साहस देखकर वह हक्कावक्का हो गया। फिर उसका साहस नहीं हुआ कि कुछ अधिक कहे। उसी समय बंगलेसे उतर कर नीचे बागमें आया और एक लतामंडपके नीचे पड़ी हुई वेतकी आरामकुर्सीपर सिरपर हाथ रखके लेट गया। फूलोंकी भीनी हुई सुगंधित पवनने कोमल २ थपकियां देकर बहुत चाहा कि उसे सुला दूं, परन्तु फल उलटा हुआ। उसकी कामाग्नि और भी सुलगने लगी। उसके मुंहसे रह रहके निकलती हुईं गरम उस्वासोंसे कामाग्निका अनुमान अच्छी तरहसे होता था। इस समय रातके १० बज चुके थे।

दूसरा परिच्छेद।

जहां तक नजर उठाकर देखते है, पानी ही पानी दिखलाई देता है। विस्तृत समुद्र लहरा रहा है। अपने ज्वारभाटाको बढ़ाता हुआ और घर घर शब्द करता हुआ जान पड़ता है कि वह अपने मार्गके रोकने

वाले किनारेपर बड़बड़ाता हुआ क्रोधका उबाल निकाल रहा है। मल्लाहोंके छोटे २ लड़के आनन्दक्रीड़ा कर रहे है। कोई तो छोटी २ डोंगियोंपर चढ़कर उन्हें अपना भरपूर जोर लगाकर यहां वहा फिरा रहे है। कोई २ यों ही उथले पानीमें अपनी तरणचातुरी दिखला रहे हैं। वे ज्योंही कुछ भीतर प्रवेश करते है कि समुद्र उन्हें उछालकर बाहेर फेंक देता है। तब बेचारे हतप्रभ होकर भी फिर भीतरको दौड़ते है, परन्तु फिर भी वैसे ही उछाल दिये जाते है। कोई २ लड़के किनारेकी कोमल रेतमें खूब उछलकूद मचाकर व्यायाम कर रहे है, और कोई २ शान्तमूर्ति और कुछ नहीं है तो मुट्ठी भर भर रेत ही एक दूसरेपर फेककर फागकी धुलैड़ीका दर्श दिखला रहे है। परन्तु जो लड़के चतुर और उद्योगी हैं, वे यहां वहां घूमते हुए शंख शुक्ति अभ्रक प्रवालादि पदार्थोंका अन्वेषण कर रह है।

किनारेपर पानीसे ३०–३५ गजके फासलेपर कुछ ऊंची जगहपर १०–१२ फूसकी झोपड़ियां बनी हुई है। इनमें मल्लाह लोग रहते हैं। अनेक झोपाड़ियोंके द्वारोंपर चारपाइयां पड़ी हुई हैं। उनपर दो २ चार २ मल्लाह बैठे हुए बातचीत कर रहे है। मल्लाहोंकी स्त्रियां गृहसम्बन्धी काम काजोंमें लगी हुई है। चमकते हुए उज्वल शंख शुक्ति आदिके गहने उनके श्यामवर्ण शरीरपर बड़े सुहावने जान पड़ते है।

संध्या निकट आ रही है। सूर्यकी विदाईका समय समीप जान कर प्राची (पूर्वदिशा) विवर्ण होकर शोक करने लगी। पुत्रस्नेह

ऐसा ही अपूर्व होता है। प्राची दिशा सूर्यकी जननी है, इसी कारण उसको इतना दुःख हुआ; अन्यथा और दिशाओंको भी होना चाहिये था। सचमुच संसारमें माताके स्वर्गीय स्नेहकी समता करनेवाला दूसरा प्रेम नहीं है।

सूर्यका अरुणवर्ण प्रतिविम्ब समुद्रकी उछलती हुई जलकल्लोलोंमें तिरत वितर होता हुआ ऐसे भ्रमको उत्पन्न करता है, मानो तपाये हुए सुवर्णकी धाराएं ही लहरा रहीं है।

थोड़ी देर पीछे विधाता रूपी सुनारने अपने संसारका एक आभूषण वनानेके लिये सूर्यरूपी सुवर्णके गोलेके किरणरूपी संडासीसे पकड़े हुए समुद्रके पानीमें डाल दिया आकाशमें एकके पीछे एक इधर उधर चमकते हुए तारागण ऐसे जान पड़ने लगे, मोनों सूर्य समुद्रमें डुवकी लगाकर नाना प्रकारके प्रकाशमान रत्नोंको पाकर फेंक रहा है।

अंधकारको सम्पूर्ण संसारके राज्यका चार्ज मिला। जान पड़ता था कि अव कुछ समय आपके ही अनवूझ राज्यमें सवको रहना होगा, परन्तु सर्वथा ऐसा नहीं हुआ। थोड़ी ही देरमें लाल पीले होते हुए चंद्रदेव निकलते दिखलाई दिये, जिससे वेचारे अंधकारके यहां वहां छुपनेके प्रयत्नमें लगना पड़ा। इस समय दो साधु मल्लाहोंकी झोपड़ियोंकी ओर आये। दोनोंके सिरपर वड़ी २ भारी जटायें थीं, शरीर पीले वस्त्रोंसे ढका हुआ था, वगलेंमें एक२ मृगछाला थी, हाथोंमें एक एक लोहेका चमटा तथा कमंडलु था। एक साधुके कंधेपर एक झोला भी था जिसमें कुछ आवश्यक सामान जान पड़ता था। यह साधू दूसरे साधूको अपना गुरु मानता था। साधुओंको देखकर

मल्लाहोंने उठकर प्रणाम किया। साधुओंने आशीर्वाद देकरे इच्छा प्रगट की कि आज रातभर टिककर हम लोग सवेरे यहासे कूच कर देंगे। मल्लाहोंने भक्तिपूर्वक उनके ठहरनेके लिये चबूतरेपर कम्बल बिछा दिया। एक ओर धूनी लगा दी, और भी जिन २ पदार्थोंकी आवश्यकता थी, लाके रख दिये। एक मल्लाह एक थालीमें सीधा लेकर आया और हाथ जोड़के बोला, महाराज! इसको स्वीकार कीजिये। परन्तु साधुओंने अनिच्छा प्रगट करके उसे स्वीकार नहीं किया। कहा, हमारे भगवतका भोग दिनमें एक ही वार लगता है, तुम लोग कुछ चिन्ता मत करो हम तुम्हारी सुश्रूषासे सन्तुष्ट हुए है। मल्लाहगण चबूतरेपर साधुओंकी धूनीके पास घेरकर इधर उधर बैठ गये। एक साधु कूपमेंसे कमंडल भर कर लाया। उससे गुरु महाराजने हाथ पैर मुखमार्जन करके मृगछालापर आसन जमाके ध्यान लगा दिया। चेलाजी मल्लाहोंको गप्पशास्त्रका अध्ययन कराने लगे। यहा वहाकी जमीन आसमानके कुलाबे मिलानेवाली बातोंका कांड पूरा होनेपर गुरु माहात्म्यका आल्हा शुरू हुआ। एक मल्लाहने पूछा, जब आपके गुरुजी ऐसे २ मंत्रतंत्रोंके जाननेवाले हैं, तब वे भविष्यकी तथा दूसरोंके मनकी बातें भी जानते होंगे?

चेला—अजी! एक भविष्य ही क्या चीज है, वे सर्वज्ञ है। सब संसार उनकी हथेलीपर रक्खा हुआ है। इस समय ध्यानमें वे और करते ही क्या है? नेत्र बन्द करके सब जगत्को हस्तामलक देखते है। उसी जगत्में उन्हें आनन्दकन्द भगवतका दर्शन होता है, जो परम दुर्लभ है। मुझे बारह वर्ष सेवा करते हो गई, परन्तु अबतक भी मेरी वैसी विशददृष्टि नहीं हुई है।

एक मल्लाह—हम लोगोंको कैसे विश्वास हो कि गुरु महाराज सब कुछ जानते देखते है।

चेला—कोई बात पूछ कर देख लो चट विश्वास हो जायगा। करकंघनको आरसीकी क्या जरूरत है?

ए० म०—परन्तु आगेकी बातपर विश्वास कैसे हो सकता है? क्या तबतक आप यहा बने रहेंगे?

चेला—साधु संन्यासी एक जगह कहीं नहीं रह सकते। नदीका पानी एक स्थानमें ठहर कर जैसे गॅदला हो जाता है, एक स्थानमें रहनेसे साधुओंका चरित्र भी वैसा ही गॅदला हो जाता है। और हम लोग तो संसारको एक दृष्टिसे देखते हैं, किसीपर न्यूनाधिक मोह नहीं रखते। यदि एक स्थानपर ठहर जावें तो दूसरे स्थानके लोगोंका उपकार कैसे हो? यदि इतना अविश्वास है और परीक्षा करना ही है तो क्या हर्ज है? कोई पिछली बात पूछ लो जो बीत चुकी हो। और मत पूछो तो उन्हें कुछ इसकी गरज भी नहीं है। उन्हें अपनी प्रशंसा बिलकुल ही नहीं भाती है, जाने दो।

दूसरा मल्लाह—हा महाराज! आप ठीक कहते हैं। साधुओंका इन संसारी झगड़ोंसे प्रयोजन ही क्या है? उन्हें तो भगवद्भजनसे काम है। गरज तो हम लोगोंकी है, सो हम महाराजसे अवश्य ही कुछ पूछेंगे।

चेला—हां पूछना! परन्तु इतना ख्याल रखना कि महाराज दो चार प्रश्नोंका ही उत्तर देते है, जब तक उनकी मौज रहती है; और सो भी तभी जब उनका ध्यान खुलता है। पीछे हजार प्रश्न

करनेपर भी वे कुछ नहीं कहते । उनकी लीला ही ऐसी विचित्र है

एक मल्लाह—क्या हर्ज है? एक दोके पूछनेसे ही विश्वास दृढ़ हो जवेगा ।

अनुमान दो घंटेमें महाराजकी समाधि पूर्ण हुई । मल्लाह उत्सुक होकर उनके सन्मुख हुए । डरते डरते एक मल्लाहने हाथ जोड़के कहा, गुरु महारारज ! हम लोग कुछ पूछना चाहते है ।

गुरु०—(आख उठाकर) पूछो ! क्या पूछते हो?

मल्लाह—हम लोगोंपर जो बीत चुकी हो, ऐसी कोई बात बतलाइये!

गुरु—अच्छा, बतलाते है ! बोलो, नवीन बतलायें या पुरानी?

मल्लाह—जो आपकी इच्छा हो ।

गुरु—(उदासीनतासे) हमारी इच्छा कुछ भी नहीं है, जाओ।

मल्लाह—नहीं, महाराज ! हम सब लोग बहुत उत्कंठित हो रहे है, कुछ तो बतलाइये?

गुरु—जो तुम लोग पूछो, वही बतलावें ।

मल्लाह—(एक दूसरेके कानके पास कुछ गुनगुनाकर मस्तक हिलाते हुए) अच्छा, आज हम लोग समुद्रमें किस ओर गये थे?

गुरु—(नेत्र बन्द करके) दक्षिणकी ओर ।

मल्लाह—(मुसुकुराते हुए और एक दूसरेके मुंहकी ओर देखते हुए) हम लोगोंके हाथ आज कुछ शिकार लगी या नहीं?

गुरु—हां, बहुत सी ।

मल्लाह—कितनी।

गुरु—खूब मुट्ठी भर भर।

इस उत्तरको सुनकर मल्लाहगण बहुत सिटपटाने। अनेक लोगोंको भय होने लगा कि कहीं हमपर इस बातके प्रकाशित होनेसे कोई विपत्ति न आवे। परन्तु जो मुखिया लोग थे, उन्होंने एक बार गुरु महाराजकी ओर कड़ी दृष्टि डालकर देखा। परन्तु उनकी चेष्टा निर्विकार दीख पड़ी। इससे सबको अपनी भावभंगीसे समझा दिया कि कोई डरनेकी बात नहीं है। तब एकने और प्रश्न किया कि आज हमारे जहाजपर कितने आदमी थे?

गुरु—(उंगलियां गिनकर) तुम्हारे सिवाय दो स्त्रियां दश पुरुष थे।

मल्लाह—वे यहांसे कहां जानेवाले थे?

गुरु—(आंख बन्द करके) जहन्नुमको।

मल्लाह—(परस्पर देखते हुए) महाराज! जहन्नुम कहां है?

गुरु—बस, तुम्हारे बहुत प्रश्न हो चुके। अब हम नहीं बतलावेंगे।

मलाह सब मिलके—फिर हमको विश्वास कैसे होगा?

गुरु—न हो, हमको परवाह नहीं है।

चेला—बस, अब महाराज कुछ नहीं बोलेंगे। बड़ा भाग्य समझो कि तुम्हारे कई प्रश्न उन्होंने बतला दिये। इतनी बातचीत वे किसीसे भी नहीं करते हैं। भगवद्भजन ही उन्हें सबसे प्यारा है।

इसके पश्चात् मल्लाह लोग व्यालूकी आज्ञा लेकर अपनी अपनी झोपड़ियोंमें चले गये। एकान्त पाकर गुरु चेलाकी बहुत देर तक गुप्त बातचीत होती रही।

तीसरा परिच्छेद।

विजयपुरके जौहरीबाजारमें सेठ श्रीचन्द्र अपनी दूकानपर तकियेके सहारे बैठे हुए है। साम्हनेकी ओर उनका पुत्र विजयदेव किसी हिसाबकी बहीमें अपने चित्तको जमाये हुए है। मुनीम गुमाश्ते लोग अपने २ कामोंमें लगे हुए है। ग्राहकगण भावकी पूछताछ कर रहे हैं।

झाड़, फानूस, हांडी, आइने आदि सामानोंसे दूकानकी खूब सजावट हो रही है। छोटी छोटी, किन्तु चौड़ी चोंकियोंपर जिनपर लाल मखमल और गोटेकी किनारी सिली हुई है, मोती माणिक, हीरा, पन्ना, नीलम आदि नाना प्रकारके रत्न ढेरके ढेर शोभायमान हो रहे है। उनकी शीतल प्रभासे दर्शकोंके नेत्र तर हो जाते हैं। एक ओर अनेक कारीगर रेशम और कलाबत्तूसे हार गूंथ रहे हैं, दूसरी ओर जवाहिरताके सुन्दर सुवर्णमयी जड़ाऊ जेवर तयार हो रहे है। कहीं २ अनाजकी तरह चलनियोंमें मोती चलाये जा रहे है, और कहीं २ बड़े २ ढेरोंमेंसे एक एक जातिके रत्नोंका चुनाव हो रहा है। एक ओर अनेक परीक्षक चुने हुए रत्नोंपर एकटक दृष्टि लगाये हुए उनकी कांति और पानीकी परीक्षासे अन्तिम चुनाव कर रहे है।

इस समय दिनके ग्यारह बजे होंगे। सेठजी अपनी बाई आंख

फड़कनेकी चिन्तामें मग्न थे कि इतने ही में एक उदासीनमुख आद-मीने आकर उन्हें प्रणाम किया और एक बन्द चिट्ठी सेठजीके हाथमें दी, जिसपर सेठजीका सिरनामा किया हुआ था। सेठजीने आतुरतासे चिट्ठी खोलकर विजयदेवको पढ़नेके लिये दी। वह इस प्रकार पढ़ने लगा:—

पूज्यवर श्रेष्ठि श्रीचन्द्रजी !

बड़ा धोखा हुआ। बलवन्त सर्पने जिसका जिकर आपने सुना होगा, आखिर काट ही खाया। कल रात्रिको हम सब लोग बगीचेमें ठहरे हुए थे। दिनकी उष्मासे विकल होकर एकाएक कुमारोंका विचार हुआ कि स्थलकी अपेक्षा जलमार्गसे जाना सुखकर होगा। बलवन्तने अपने प्रयोजन सिद्धिकी आशासे इस विचारकी पुष्टि की और वह स्वयं किनारेपर जहाजका प्रबंध करनेके लिये गया। पीछे उसकी सम्मतिसे दोनों कुमार सुशीला चन्द्रिका और आठ दश सेवक आधी रातके अनुमान जहाजपर सवार हो गये। शेष आदमी सामानकी गाड़ियोंके साथ रहे।

मै बलवंतकी ओरसे सदा सशंकित रहती थी; इसलिये उसपर कड़ी दृष्टि रखनेके लिये मैने उसका साथ छोड़ना ठीक नहीं समझा। परन्तु यथार्थमें वह गलती हुई, जहाजका प्रबंध करते समय वह कुछ दुष्टता करेगा, इसका मुझे ख्याल भी नहीं हुआ। कुमारोंको पहुंचाकर हम लोग डेरेमें आकर सो रहे। सबेरे मालूम हुआ कि बलवन्त पाखानेका बहाना करके जाकर वापिस नहीं लौटा। बस, मेरा माथा ठनक उठा कि कुमारोंके साथ अवश्य ही दगा हुआ।

मुझे बीस विश्वा विश्वास है कि आपके कुमार सकुशल विजयपुर नहीं पहुंचे। उनके ऊपर अवश्य ही कोई बड़ी भारी विपत्ति आई है। आपके कुमार वीर क्षत्रिय पुरुष है, इसलिये चिन्ता होनेपर भी उनका इतना खटका नहीं है जितना कोमलांगी सुशीलाका है। इस समयकी एक एक घड़ी उसके लिये बड़ी जोखिमकी है। इसलिये मैं आपके पास तक नहीं आकर यहींसे सुशीलाकी रक्षाके लिये जाती हूं। आप विचारशील और दूरदर्शी है। चिन्ता न करें, श्रीजिनेन्द्रदेवकी कृपासे शीघ्र ही इस विपत्तिका अन्त आवेगा।

उचित समझें तो महाराज रणवीरसिंहजीको भी इसकी खबर करा दें। परन्तु इतना स्मरण रक्खें कि यद्यपि ये सब कर्म सूर्यपुरके राजकुमार उदयसिंहके है, परन्तु सूर्यपुर नरेश महाराज निहालसिंहको इसकी कुछ भी खबर नहीं है। इसलिये कहीं ऐसा न हो कि सूर्यपुर राज्यपर महाराजका क्रोध उमड़ उठे और चढाई कर दी जावे। ऐसा करनेसे आपकी पुत्रवधूकी जान जोखिममें आ जावेगी। 'मरता क्या न करता' इस लोकोक्तिके अनुसार दुष्टहृदय उदयसिंह न जाने उस समय क्या कर डालेगा। इसलिये जो कुछ प्रयत्न किया जावे गुप्त रीतिसे किया जावे।"

आपकी पुत्रवधूकी दासी—रेवती।

* * * * *

चिट्ठी सुनते २ श्रीचन्द्रकी अजब हालत हो गई। वे इसके सिवाय कि जयदेवादि किसी भयंकर आपत्तिमें फँस गये है और कुछ न समझ सके। पुत्रशोकके असीम उद्रेकसे उन्हें मूर्छा आ गई।

सब लोग घबड़ा उठे कि इन्हें यह क्या हो गया। विजयदेव पिता! पिता! कहकर चिल्लाने लगा, पर कुछ उत्तर नहीं मिला। आखिर वह घबड़ाकर रोने लगा। हाय! हाय! यह क्या हुआ। आजका सुखमय दिन घोर दुःखरूप हो गया। न जाने अब प्यारे बंधुओंके दर्शन कब होंगे! वह दुष्ट उदयसिंह न जाने मेरी सकुमार भावजके साथ कैसा क्रूर वर्ताव करेगा, इत्यादि बड़ा कोलाहल मचा। दुकांनके सब ही लोग हाय! हाय! करने लगे। कोई २ श्रीचन्द्र को मूर्छामुक्त करनेके लिये शीतोपचार करने लगे। किसीने अन्तःपुरमें जाकर भी यह दुःखद वार्ता सुना दी। विद्यादेवी पछाड़ खाके गिर पड़ी, सिरमें चोट लगनेसे खून बहने लगा। दासियां घबड़ा गई। इधर किसीने महाराज रणवीरसिंहसे भी जाकर यह समाचार निवेदन किये। उनके हृदयपर भी इसकी बड़ी भारी चोट लगी। परन्तु वे घबड़ाये नहीं, उसी समय अपने गुप्तचरोंको सूर्यपुरकी ओर जयदेवादिका अनुसंधान करनेके लिये भेजकर आप श्रीचंद्र जौहरीकी दूकानपर दौड़े हुए आये। देखा, तो श्रीचन्द्र तकियेके सहारे पड़े है, आंखोंसे आंसूओकी अविरल धारा बह रही है। अभी तक उन्हें अपनी सुधि नहीं है। विजयदेव भी रो रहा है। महाराजके पहुंचते ही सब लोग उठ खड़े हुए, कोलाहल एकाएक शांत हो गया। महाराजने श्रीचन्द्रको सचेत करके समझाया। शोक करनेका यह कोई समय नहीं है। अपने पुत्र जीते जागते बहुत जल्दी आकर मिलेंगे। हमें शोककी जगह उनके पता लेगानका प्रबन्ध करना चाहिये। एक साधारण कष्टके सिवाय (विपत्तिके सिवाय) उनके प्राणका भय सर्वथा नहीं

करना चाहिये, क्योंकि वे क्षत्रियपुत्र है। उदयसिंहका बल उनके साम्हने कोई चीज नहीं है। हा यदि चिन्ता है, तो आपकी बहूकी है। सो उसकी रक्षाके लिये मै कई गुप्तचर भेजके आ रहा हूं। और भी जो आप कहें, प्रबंध किया जावे। सिवाय इसके रेवती बड़ी चतुर दासी है, वह सुशीलाकी रक्षाके लिये कोई भी उपाय शेष नहीं रक्खेगी। श्रीचन्द्रने कहा, महाराज! मेरा हृदय बहुत कोमल है, वह एक सामान्य दुःखसे ही छिन्न भिन्न हो जाता है, फिर यह तो असह्य शोक है। क्या करना चाहिये और क्या नहीं, यह सब आप ही सोच सकते है, मै तो अब कर्तव्यविमूढ़ हो गया हूं। जिस तरह और जितनी जल्दी हो सके जयदेव भूपसिंहको लाकर मेरे हृदयसे लगा दीजिये, नहीं तो मेरे प्राण अब नहीं बचेंगे।

इतना कहते २ श्रीचन्द्रका गला भर आया। महाराजने उनका हाथ पकड़ लिया और फिर यथाशक्ति समझाया। बड़ी कठिनाईसे श्रीचन्द्रका चित्त कुछ स्वस्थ हुआ। फिर महाराज बहुतसा आश्वासन देकर राजमहलकी ओर गये और श्रीचन्द्र दूकानसे उठ कर अन्तःपुरकी ओर गये।

विजयपुरमें घर घर जयदेव भूपसिंहकी शोकवार्ता होने लगी। जिसने सुना उसीने शोक किया। कीर्तिमान् गुणवान् पुरुषोंके वियोगका शोक किसको नहीं होता?

चौथा-परिच्छेद।

घंटे भर पीछे धीरे २ एकके पश्चात् एक इस तरह सब मल्लाह धूनीपर आ जमें। नशा पानीकी उड़ने लगी। साथ ही चेला महा-

शयके साथ फिर गप्पोंका बाजार गरम हुआ। गुरु महाराजका वकध्यान लगा हुआ था। एक थैलीमें पड़ी हुई बड़े २ गुरियोंकी माला उंगलियोंके सहारेसे चक्कर खा रही थी।

एक बजेके अनुमान झोपड़ियोंकी बगलसे जो पगडंडी आई है, उस परसे आता हुआ एक सिपाही दिखलाई दिया। बड़े ऊंचे कदका आदमी था। सिरपर बड़ा ऊंचा पंजाबी फैटा बँधा था, जिससे ऊंचाई और भी ज्यादा दिखलाई देती थी। रंग गेंहुआं था, बड़ी २ मूंछों और दाड़ीसे चेहरा भरा हुआ था। उसके हाथमें बरछी बगलमें तलवार और कंधेपर एक बटुआ लटक रहा था। कपड़े पसीनेसे भींग गये थे, जान पड़ता था बड़ी लम्बी सफर करके आ रहा है। चालढालसे बड़ा जवांमर्द जान पड़ता था। एक झोपड़ीके साम्हने आकर उसने एक भारी आवाजसे मल्लाहको पुकारा। सुनते ही धूनीपर जो मल्लाह बैठे थे, उनमेंसे दो तीन मल्लाह उस ओरको दौड़े। जो धूनीपर रहे उन्होंने वहीं बैठे २ अपनी दृष्टि और कान उस ओरको दौड़ाये। वकव्रती गुरुजीके कान उसके निकट पहले ही से पहुंच गये थे, इसलिये उनके मुंहसे अचानक निकल पड़ा, "हरी! हर!" मल्लाहोंने समझा, महाराज भगवान्का नाम ले रहे हैं, पर चेला जी सुनते ही सिपाहीकी ओर यह कहते हुए झपटे कि देखें तो सही कौन आया है? वहा जाके देखा तो सिपाहीसे इस प्रकार वार्त्ता हो रही थी।

सिपाही—महाराज निहालसिंहकी आज्ञासे मैं बलवन्तसिंहकी खोजके लिये आया हूं। तुम्हें उसका पता जरूर मालूम होगा,

जल्दी बतलाओ। मुझे उससे मिलकर कल शाम तक वापिस सूर्यपुर पहुंचना है।

एक मल्लाह—(सकपकाता हुआ) बलवन्त कल रातको यहा थे, परन्तु कहां गये, यह हमको मालूम नहीं है। कहते थे, एक कामके लिये विलासपुर जाना है, सो बहुत करके वे वहीं गये होंगे। परन्तु अब रात थोड़ी रह गई है, थक भी गये होगे, इसलिये हमारी समझमें दो घटे यहां विश्राम करके सबेरे ४ बजेके पहले कूच कर देना। आगे बहुत दूर तक इससे अच्छा स्थान आपको नही मिलेगा। सिपाहीको आशा थी कि बलवन्तसिंह यहां अवश्य मिल जायगा अथवा उसका ठीक २ पता लग जावेगा। परन्तु यह कुछ भी नहीं हुआ, इससे कुछ उदाससा हो गया। परन्तु क्या करता? पासकी पड़ी हुई एक चारपाईपर मल्लाहोंकी बात मानकर बैठ गया। पश्चात् कपड़े बगैरह खोल थोड़ासा जल मंगा हाथ मुंह धोकर सफेद् चद्दर तानकर सो गया। थक बहुत गया था, चांदनी खिली हुई थी। सामुद्रिक हवाके झोकोंने पड़ते ही मुरदेका जोड़ीदार बना दिया।

चेला महाशय आगत मनुष्यको खूब बारीकीसे देखकर और उसकी बातोंको ध्यान पूर्वक सुनकर लौट आये। आते२ एक जगुहाई ली और जोरसे कहा, 'हरी हर नाम सच्चा है।' गुरुजी महाराजने यह सुनकर मुसुकरा दिया। धूनी परसे बहुतसे मल्लाह धीरे धीरे खिसक गये थे, जो रहे सहे थे वे भोजनके नशेमें झूम रहे थे। चेलारामन कहा, भाई! अब तुम सो जाओ, रात बहुत थोड़ी रह

गई है, हम लोगोंके साथ कहां तक जागोगे ? हम तो रात दिनको एक ही सी समझते है, जितना भगवद्भजन हो सके, उतना ही अच्छा है। बस, मल्लाह लोग तो यह चाहते ही थे, मनकी कह दी। प्रणाम दंडवत कर करके वे अपने २ शयनस्थानमें गये। विलम्ब हो जानेसे अनेक युवतियोंने बड़े उलहने दिये। किसी २ को तो रूसी हुई लक्ष्मियोंके मानमोचनके लिये विनय आनुनयोंकी चक्की चलाते चलाते ही सवेरा हो गया।

दो की घंटी हुए कुछ ही देर हुई होगी। सब लोग निद्राकी एकान्त उपासनामें दीन दुनियांकी खबर भूले हुए थे। एक आदमी काले कम्बलसे अपने शरीरको छुपाये हुए सिपाहीकी चारपाईके पास खड़ा हुआ उसके कपड़े लत्ते टटोल रहा था। वह यहां वहां नजर फैंकता हुआ बड़ी सावधानीसे यह काम कर रहा था, बहुत देरके पीछे उसे सिपाहीके झोरेमें एक कागज मिला, जिसे लेकर वह साधुओंकी धूनीके पास आया, और आगीके उजालेमें उक्त चिट्ठीको पढ़कर बहुत प्रसन्न हुआ। उसमें लिखा हुआ था:-

"प्यारे मित्र! तुम्हारी तारीफ मै किस मुंहसे करूं। संसारमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे देकर मैं तुम्हारे ऋणसे उऋण हो सकूंगा। तुमने मेरे लिये अपनी जानपर खेलकर जो परिश्रम किया है, वह वर्णनातीत है। परन्तु मेरे सुख दुखके साथी बन्धु! मै अभागा इतनेपर भी सुखी नहीं हुआ। प्राणप्यारी सुशीला हजार समझानेपर भी मेरी ओर नजर नहीं उठाती। मै गिड़गिड़ाता हूं, वह घृणा करती है। मै भय दिखलाता हूं, वह जान देनेको तयार है।

मै वलात्कारका उपक्रम करता हूं, वह वीररूप धारण करती है। और मै प्रार्थना करता हूं, तो वह धर्मोपदेश करती है। इस तरह कुछ भी वश नहीं चलता है। जवसे आई है, अन्न पानीके ओर देखा भी नहीं है। क्या करूं कुछ समझमें नहीं आता। मेरे दुःखका कुछ ठिकाना नहीं है। तुमसे साक्षात बात करनेकी बहुत अभिलाषा है। मुझसे एकवार मिलो, तो कुछ सम्मतिपूर्वक उपाय निश्चित किया जावे।

पिताजीकी वर्तमानमें इस ओर कुछ कड़ी नजर जान पड़ती है, इससे वड़ा भय रहता है। यदि उन्हें इस बातका पता लगेगा, तो वडी कठिनाई होगी। वर्तमानमें सुशीलाको बगीचे वाले बंगलेमें रख छोड़ा है। विशेष सन्मुख कहूगा। मेरा मस्तिष्क बिगड़ रहा है। यदि मुझे सकुशल देखा चाहते हो, तो शीघ्र आकर मिलो।"

तुम्हारा कृतज्ञ मित्र—उदय।

* * * * *

इस चिट्ठीको उसने सन्मुख रखकर शीघ्र ही एक दूसरे कागजमें नकल कर ली और फिर असली चिट्ठीको जहांकी तहां रख आया। ऐसी सावधानीसे कि किसीको झोरेके खोले जानेका गुमान भी न हो।

प्रातःकाल समीप हुआ। पक्षियोंका कलरव सुनाई पड़ने लगा। चन्द्रमाका प्रकाश मन्द हो गया। तारे एक एक करके विदा लेने लगे। गुरु महाराजने सिपाहीकी चारपाईकी ओर देखकर एक प्रभाती गाई:—

हे नर ! भ्रम नींद क्यों न, छांड़त दुखदाई।
सोवत चिरकाल सोंज आपनी ठगाई ॥ हे नर० ॥

प्रभातीके पूरे होते २ सिपाही जाग उठा। देखा तो उजेला हो गया था। चटसे उठ बैठा और "आज बड़ी बुरी नींद आई, यह बड़ी मुश्किल हुई, बिलासपुर बहुत दूर है। वहां जाकर आज ही सूर्यपुर पहुंचना है।" इस तरह बड़बड़ता हुआ कपड़े लत्ते सम्हालकर बिलासपुरकी ओर चल पड़ा और थोड़ी ही देरमें अदृष्ट हो गया। इधर गुरुदेव भी उठ बैठे और चेलेको सम्बोधन करके बोले, बच्चा गोवर्धनदास ! रात भर सोया तौभी पेट नहीं भरा क्या ? अरे ! क्या इसी तरह भगवद्भजन करेगा ? त्रिलोकीनाथ क्या इसी तरह सोते २ मिल जावेंगे ? संसार समुद्रमें आकंठ निमग्न हुए गृहस्थ लोग भी इस समय राम नामका जप कर रहे है। देख तो, कैसा अमूल्य समय जा रहा है ? इस समयको जो लोक नींदके घुर्राटे लगाते हुए खो देते है वे बड़े मूर्ख है। वे अपना आत्मकल्याण कभी नहीं कर सकते। इसपर चेलाराम छटपटाकर रामनामकी झड़ी लगाते हुए उठ बैठे। कमंडलुमें रक्खे हुए पानीसे हाथ मुंह धोकर गुरु महाराजको साष्टांग नमस्कार किया। उन्होंने आशीर्वाद देकर कहा, देखा गोवर्धन ! अब विलम्ब मत करो, आगे धूप हो जावेगी, तो कष्ट होगा, चलनेके लिये यही समय अच्छा है। यह सुनकर गोवर्धन दंड कमंडलु चीमटा वगैरह उठाकर आगे हो गया और बोला, चलिये। गुरु महाराज भी उठकर साथ हो लिये। इतनेमें कई

मल्लाह दौड़े हुए आये और हाथ जोड़कर बोले, महाराज! कहते है साधुओंकी सबपर सदा कृपा रहती है, परन्तु हम लोगोंके यहां आप एक दिन भी न ठहरे इससे हम लोग क्या समझें? यदि आप चले जावेंगे तो हमको बड़ा दुःख होगा। गुरुजीने कहा— भाइयो! हमारी सबपर एकसी ही कृपा रहती है। तुम लोगोंसे हम बहुत प्रसन्न है। परन्तु हमको रामेश्वर भगवान्के दर्शनकी बडी उत्कंठा है इससे ठहर नहीं सकते है। और एक स्थानपर एक रात्रिसे अधिक रहना साधुओंका धर्म भी नहीं है। तुम सबको हमारा आशीर्वाद है, खुश रहो। परन्तु हमको रोको मत। यह सुनकर मल्लाह चुप हो रहे और गुरु चेला सूर्यपुरकी राह लग गये।

पांचवां परिच्छेद।

सुवर्णपुरसे अनुमान दो मील ईशानकी ओर एक सुन्दर सरोवर है। उसके चारों ओर एक साफ और सुव्यवस्थित सड़क बनी हुई है। सरोवरका किनारा कहीं २ कच्चा और कहीं २ बँधा हुआ है। और किनारेके बीचमें चारों ओर जो थोड़ीसी जगह है, उसमें एक साधारण फुलवारी लगी हुई है। फुलवारी नाना प्रकारके सुन्दर २ फूलोंके गमलों, लहलही लताओं, हरे भरे खूबसूरत वृक्षों और हरी हरी दूवसे बहुत भली जान पड़ती है। स्थान २ पर छूटते हुए अनेक फव्वारोंसे तो उसकी श्री और भी द्विगुणित हो रही है। सड़कके दूसरी ओर आम्र, बकुल, कदम्ब, अर्जुन, जामुन, निम्ब आदि बड़े २ वृक्षोंकी एक श्रेणी है, जो इस मनेहर स्थानकी रक्षा

करने वाली सन्नद्ध सेनासी जान पड़ती है। यह रम्य सरोवर और उसकी चतुर्दिग्वर्ती सम्पति महाराज विजयसिंहकी स्थापित की हुई है, जी वहलाने और समीर सेवन करनेके लिये सुवर्णपुरमें इसके अतिरिक्त दूसरा अच्छा स्थान नहीं है।

आज सूर्यअस्त होनेके कुछ पहले हम राजकुमार भूपसिंहको यहां पर टहलते हुए देखते है। यद्यपि अभी तक ग्रीष्मकी उष्मा समाप्ति नहीं हुई है, और ग्रीष्मकाल भी अवशेष ही है, तथापि दो तीन दिन लगातार पानी वरसनेसे इस समय उस रातदिन वरसने वाली प्रंचड अग्निसे, पिंड छूटा हुआ जान पड़ता है। समस्त पशु पक्षी प्रसन्न चित्त दिखलाई देते है। सूखे पड़े हुए मेड़कोंके शरीरमें जीव आगये है। वे इधर उधर उछलते हुए वड़े वक्रियोंके मदको मात कर रहे है। सारस, हंस, मयूर आदि पक्षी चैनसे क्रीड़ा कर रहे है। पानीके बहुत ही समीप बक गणोंका ध्यान लग रहा है। पांवके नीचे कोई जीव न मर जावे इसलिये धीरे २ पांव रखते हुए वे बाह्य दृश्यसे ईर्यापथ शोधके चलनेवाले मुनियोंका भी नम्बर ले रहे है। परन्तु उनका यह बकव्रत तब ही तक रहता है, जब तक कोई मछली साम्हने नहीं आजाती।

एक साथ चलते हुए, एक साथ मधुर शब्द करते हुए, और एक साथ उड़ते हुए स्नेहमय सारसके सरस जोड़ोंको देखकर भूपसिंहके हृदयमें शीघ्र ही प्राप्त होने वाले दाम्पत्य प्रेम की मीठी २ कल्पनायें उठने लगीं, कोकिलके कोमलालापसे चित्त उत्कंठित होने लगा और मयूरोंके आनन्द नृत्यसे मुखपर स्वदे झलकने लगा। आगे चलनेको जी नहीं,

हुआ शरीर स्तब्धसा हो गया । इसलिये वे टहलने से विरक्त होकर तालाबकी एक सीढ़ीपर जा बेठे । विचारा था कि यहां जी बहला लेंगे और पूर्व विचारको भुला देंगे । परन्तु चक्रवाकके जोड़ेको एक दूसरे के समागमके लिये व्याकुल देखकर और भी उत्तेजना हुई। उस समय वीर पुङ्गव भूपसिंहका हृदय डिगमगाने लगा। पाणिग्रहणके समय की मदनमालतीकी प्रतिमा साम्हने आ गई । रूपामृतका पान करनेके लिये उन्होंने नेत्र बन्दकर लिये। उस समय ऐसा जान पड़ा था कि मदनमालती हाथ जोड़के कह रही है, "प्राणनाथ बहुत विलम्ब तक बाट देखी, पर आपके दर्शन न हुए । इसलिये विरह सन्तापके सहन करने में असमर्थ होकर यह दासी स्वयं आई है ।" भूपसिंह इसका कुछ उत्तर देना ही चाहते थे कि, कायेल की कूकसे आखें खुल गईं । देखा, सूर्य अस्त हो गया है, और सबके सब कमल जो थोडी देर पहले खिले हुए थे सकुचित होकर प्रभाहीन हो गये है । भूपसिंह विचारने लगे, मित्र (सूर्यके) वियोगमें जो उदासीन और हतप्रभ हो जाते हैं, वही सच्चे मित्र है । धिक्कार हैं मुझे, जो एक सर्व श्रेष्ठ मित्रको खोकर विषयवासनाओंकी कल्पनाओंमें उलझा हूं। हाय! जयदेव जैसे मित्रको भूलनेवाला मुझ जैसा कृतघ्न और कौन होगा ! वह देखो हंसता हुआ चन्द्रमा गगनमंडलमें आ बिराजा है। अहो पामरचन्द ! तुम्हें सहस्रवार धिक्कार है जो अपने मित्र (सूर्य) के अस्त होनेपर प्रफुल्लित होते हो। और उदय होनेपर हतप्रभ हो जाते हो। लोग कहते है, तुम मित्रके प्रतापसे चमकते हो और मित्रकी कृपासे तुममें

प्रकाश है, इतनेपर भी मित्रके साथ तुम्हारा ऐसा निंद्य वर्ताव है? अतएव कृतघ्नी चन्द्र! तुम्हें लाख बार धिक्कार है। अस्ताचल पर्वत की गव्हार गुफाओंमें मित्र (सूर्य) पर न जानें कैसी बीती होगी। इसका कुछ भी सोच न करके तुम अपनी ज्योत्स्ना प्रियाके साथ क्रीड़ा कर रहे हो, एवं कुमोदनीको मुदित कर रहे हो। अतः कलंकी चन्द्र! तुम्हें अनन्तवार धिक्कार है। तुम्हारे इन गुणोंके कारण ही कदाचित् तुम्हारे निर्मल शरीरमें ये कलंकके चिन्ह दिखलाई दे रहे हैं। परम अहिंसा धर्मके उपदेशक प्यारे जयदेव! सुशील जयदेव! विद्वान् जयदेव! न जाने इस पापीको तुम्हारे दर्शन कब होंगे, तुम्हारा वियोग असह्य हो उठा है। क्या करू, कहा जाऊं, तुम्हें कहां ढूंढूं। तुम्हारे लिये अब मै सब कुछ परित्याग कर सक्ता हूं। मेरा अपराध क्षमा करो, न जाने, मुझे क्या हुआ था जो मैने तुम्हें सर्वथा भुला दिया। हाय! तुम्हारी कोमलागी सुशीलापर न जाने क्यौ २ विपत्तियां पड़ी होंगी। और न जाने बेचारी अपने शरीरकी रक्षा किस तरहसे कर रही होगी। तुम्हारी ऐसी विपत्तिमें भी यदि मै कुछ सहायता न कर सका तो मेरा यह शरीर और किस काममें आवेगा? बस! अब मै इस सुवर्णपुरमें एक क्षण भर भी नहीं ठहर सकता, तुम्हारे लिये मै अपना जीवन उत्सर्ग करनेको प्रस्तुत हूं। मनकी गति बड़ी विचित्र है। कुछ क्षण पहले जो मन मदनमालतीके समागम संकल्पों में मग्न हो रहा था, जिसे प्रहर दो प्रहरका वियोग ही असह्य हो उठ था, और जो अपनी प्रियाके रूपामृतका पान करके सुखी हो रहा था, वही मन चिरकालके लिये वन वन भटकनेको तयार है, कष्ट सहनेको प्रस्तुत है और सब

सुखोंको जलांजुली देनेको उद्यत है। इसके पश्चात् भूपसिंहने खींसे-मेंसे कागज कलम निकालकर निम्न लिखित चिट्ठी लिखीः—

" प्रिय मदनमालती! यहा सरोवरपर बैठे हुए अचानक मुझे अपने मित्रका स्मरण हो आया है। मेरे मित्र किसी विपत्तिमे फँसे हैं। उनकी सहायता करना मेरा परम धर्म है। इसलिये मैं तुमसे विना मिले ही उनकी खोजमें जाता हूं। आजकी सुहागरात्रि जैसे सुखके समयमें मेरे वियोगसे तुम्हें दु ख अवश्य होगा। परन्तु क्या किया जाय, विवश हूं। मित्रका जब तक पता न लगा लूगा, तब तक सुखोंकी ओर देखूगा भी नहीं, यह मेरी प्रतिज्ञा है, इसलिये जाता हू। कहां जाऊगा, कह नहीं सकता। परन्तु मित्रके दर्शन करके जितनी जल्दी हो सकेगा तुमसे आकर मिलूगा तुम्हें। मैं जीसे चाहता हूं। इस हृदयका अधिकारी तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं है। व्याकुल नहीं होना, धैर्य्यसे समय व्यतीत करना। अधिक क्या लिखू तुम स्वय बुद्धिमती हो। "

चिट्ठी बन्द करके भूपसिंहने मदनमालतीका सिरनामा किया और सड़कपर आकर अपने सेवकके हाथमें देकर जो कि घोड़ेकी बाग-डोर पकड़े हुए खड़ा था कहा, भवानी! इस चिट्ठीको तुम महलोंमें पहुंचा देना। मै किसी कामके लिये पास ही के इस गावको जाता हूं। घोड़ेको भी तुम लिये जाओ, क्योंकि मेरी इच्छा पैदल जाने की है। बहुत जल्दी मै वहा से लौट आऊंगा। बेचारा सेवक हाक्का बक्का सा हो गया। कुछ पूछना चाहता था, परन्तु भूपसिंहके रौबके मारे कुछ न पूंछ सका, और जो आज्ञा! कह कर सुवर्णपुरकी ओर चल पड़ा। इधर भूपसिंह भी उसके चले जानेपर एक ओरको चल दिया।

छट्ठा परिच्छेद ।

हीरालाल और रामकुँवरिको पलंगसे जकड़े हुए छोड़े बहुत दिन हो गये, पाठकोंको अब उनकी भी खबर लेनी चाहिये । जयदेवने पूछा, हीरालाल ! तुम लोगोंकी दशा देखकर मै अवाक् हूं । कुछ भी अनुमान नहीं कर सकता कि तुम्हें इस तरह वेवश किसने किया ? जल्दी कहो, तुम्हारे साथ यह अत्याचार किसने किया ? हीरालालने मुखकी चेष्टा बदलकर कहा, " हाय ! हाय ! हम लोग चिल्ला चिल्ला कर मर गये, पर किसीने कुछ नहीं सुना। डांकुओंने हमारी बड़ी दुर्दशा की । मारा पीटा और जकड़के बांध दिया । " इतने में रामकुँवरिने आंखोंसे आंसू बहाते हुए कहा, " और हाय! मेरा तो सर्वस्व ही लूट लिया । वे (रतनचन्द) खेटपुरसे रातको लौट आये थे, सो उन्हें तो वे दुष्ट बांध ही ले गये ! मै जीती ही मर गई ! अब इस संसारमें किसका मुँह देखके जीऊंगी । हाय ! हाय !! वे दुष्ट न जाने उनकी क्या दुर्दशा करेंगे । " यह सुनकर जयदेवने पूछा, हीरालाल ! क्या यह सच है कि वे सब डांकू थे ?

हीरालाल—हां वे डांकू ही थे ।

जयदेव—यदि वे डांकू थे, तो उन्होंने चोरी भी अवश्य की होगी ।

हीरालाल—हां ! तिजोरीके कोठेमें वे बहुत देर तक घुसे रहे थे । न जाने वहांसे क्या ले गये और क्या छोड़ गये ?

जयदेव—परन्तु तुम्हारी चाचीके शरीरपर जो कीमती जेवर है, उसको वे क्यों नहीं ले गये? और तुम्हारे गलेमें जो जड़ाऊ गोफ और रत्नोंकी माला है, क्यों छोड़ गये?

रामकुँवरि——नहीं जी। वे डाकू नहीं थे। कोई बस्तीके ही दुश्मन थे। उन्हें चोरीसे मतलब नहीं था। हम लोगोंको तकलीफ देने और सेठजीको ले जानेके अभिप्रायसे ही वे आये थे। सो पापियोंकी इच्छा पूर्ण हो गई। अब सेठजीकी जान बचना कठिन है! हाय! यदि तुमसे कुछ हो सके तो उन्हें बचाओ (रोती है)।

जयदेव—परन्तु जब सेठजी सवेरे खेटपुरको चले गये थे, तब डाकुओंको यह कैसे मालूम हो गया कि वे आ गये है? और मै देखता आया हूं कि घुड़शालमें घोड़ा नहीं है। यदि सेठजी रातको आ गये होते तो घोडा अवश्य होता। यदि कहो कि वे लोग ले गये होंगे, तो जब वे चोरी करनेके अभिप्रायसे नहीं आये थे, तब अकेले घोडेको ही क्यों ले जाते? और बस्तीमें घोड़ेकी चोरी छुप नहीं सकती, इतना क्या उन लोगोंको ज्ञान नहीं होगा? इसके सिवाय इस बातपर भी तो सर्वथा विश्वास नहीं होता कि सेठ रतनचन्द्जीके इस बस्तीमें क्या, इस संसारमें भी कोई दुश्मन हों। मै उनके स्वाभावको भली भाति जानता हूं। उनके दुश्मनोंका अस्तित्व बतलाना एक प्रकारसे उनको गालियां देना है। और यह तो बताओ, तुम दोनोको उन्होंने इकट्ठा एक पलंगपर एक साथ क्यों बाधा? तथा ये दो चिट्ठियां कौन लिखके डाल गया है? यह कहकर जयदेवने वे

चिट्ठिया उठा ली और बांचकर अपने प्रश्नोंका उत्तर पानेके लिये उन दोनो पापियोंकी ओर देखा। परन्तु उन्हें अधोवदन और सर्वथा मौनयुक्त पाया। आखिर झूठ झूठ है और सच सच है। काठकी हंडी बहुत समय तक नहीं चढ़ती। अन्तमें पोल खुल ही जाती है। हीरालाल शायद पलंगसे जकड़े जानेका कुछ उलटा सीधा उत्तर दे देता, परन्तु चिट्ठिकी बातपर तो मौनके सिवाय गत्यन्तर ही नहीं था। प्रत्यक्षके लिये प्रमाणकी जरूरत ही नहीं रही। उन्हें इस प्रकार निःशब्द देखकर जयदेवने कहा, कहो कहो हीरा-लाल! चुप क्यों हो रहे? और भी कुछ झूठ बोलो! रामकुंवरिसे भी कुछ मदद मांगो! एक महा पाप कर चुके हो, अब उसको छुपानेके लिये और भी पाप करो। अरे पापियो! क्या तुम मुझे अन्धा समझते हो? जो इस तरह बेसिर पैरकी बातें सुनाकर भुलाया चाहते हो। शायद अब भी तुम्हें पवित्र पुण्यात्मा बननेका हौसला है। परन्तु जरा दर्पण लेकर अपना मलिन मुख तो देखो, वह क्या कह रहा है? याद रक्खो, तुम्हारे सब पाप प्रगट हो चुके है, तुम्हारे हृदयकी कालिमा बाहिर निकल आई है, अब वह छुपानेसे नहीं छुपेगी! सच कहो, क्या तुमने इन चिट्ठियोंको नहीं पढ़ा है? और क्या तुम लोग यह नही जानते कि तुम लोगोंके घोर नारकी कर्मको देखकर सेठ रतनचन्दजी संसारसे वैराग्य प्राप्त हो गये है? अरे नारकियो! सेठ रतनचन्दजी तो वैसे ही सौम्य प्रकृतिके संवेगी सज्जन् थे, यदि कोई पाषाण हृदय पुरुष भी तुम्हारी अयोग्य, अघट और अश्रुतपूर्व नारकी लीलाको देखता तो संसारसे

भयभीत हो जाता। हाय! दुर्लभ मनुष्यजन्मका तुमने ऐसा दुरुपयोग किया है, जिसका प्रायश्चित्त नहीं है! नराधमो! जिस शरीरसे देव दुर्लभ संयमकी पालना होती है, उससे तुमने पशुओंसे भी नीचतर कर्म किया है। काकके उड़ानेके लिये तुमने अमूल्य रत्न खोकर यह दीनातिदीन अवस्था प्राप्त की है, जिसे देखकर दया उत्पन्न होती है। शोक है कि मैने दूसरों जैसा क्रूर और कठिन हृदय नहीं पाया, नहीं तो तुम्हारे पापके प्रायश्चित्तका फैसला यहीं कर देता। सचमुच तुम्हारा अपराध अक्षम्य और असह्य है। परन्तु शायद तुम्हें अपने जीवनमें और भी कुछ पुण्य कमाना है। इसलिये मेरे हृदयमें ग्लानि तथा विरतिके सिवाय क्रोधका अंश भी उद्भावित नहीं होता। यदि मै सेठ रतनचन्दजीको पूज्यबुद्धिसे नहीं मानता और उनके आदेशकी पालना अपना कर्तव्य नहीं समझता, तो तुम्हारा मुंह देखे विना ही आज इस नगरको छोड़ देता। क्योंकि तुम जैसे नरपिशाचोंके दर्शनसे अपरिमित दुःख होता है। परन्तु क्या करूं अपने हितचिन्तकके अनुरोधकी अवहेलना करते नहीं बनती। शायद तुम्हें भरोसा नहीं होगा कि तुम्हारी सम्पूर्ण सम्पत्तिका एक मात्र अधिकारी मै बनाया गया हूं, इसलिये एक वार तुम दोनों इस वसीयतनामेको पढ़ लो, और देख लो तुम्हें तुम्हारे पापोंका फल मिलना प्रारंभ हो गया है। ऐसा कह कर जयदेवने उसी बेवशीकी हालतमें उन दोनोंके साम्हने वह वसीयतनामा रख दिया। उसके बाचते समय उन पापियोंके हृदयकी जो दशा थी, उसका चित्र इस लेखनीसे नहीं खींचा जा सकता।

पाठकगण अनुमानसे जान लें। एक तो वे अपने पापोंका भंडाफोर होनेसे वैसे ही सूख रहे थे, दूसरे वसीयतनामेकी सूरत देखकर तो बेचारे अधमरे हो गये। कर्तव्यविमूढ़ होकर चित्र लिखेसे रह गये। जयदेवने वसीयतनामेको अपने खीसेमें सम्हालके रख लिया और उन दोनोंको बेबशीसे मुक्त करके कहा—"तुम लोग यह मत समझो कि तुम्हारी इस सम्पत्तिका मै उपभोग करूंगा। नहीं, मैं इससे सर्वथा पृथक् रहूंगा। मुझे इसकी जरूरत भी नहीं है। परन्तु तुम जैसे दुराचारियोंके हाथ इसे न लगने दूंगा। किसी सत्कार्यमें लगाकर महानुभाव रतनचन्दजीके परिश्रमको सफल करूंगा। हां! तुम लोग यदि अपने आचारोंको सुधार सको, अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर सको, अपने मनुष्य जन्मके गौरवको समझ सको और सत्कार्योंके लिये अपना जीवन उत्सर्ग करके संसारमें कीर्ति सम्पादन कर सको तो मै सच कहता हूं, इस सम्पूर्ण सम्पत्तिके अधिकारी तुम्हीं हो। एक बात और है। वह यह कि तुम अपने मलीन जीवनसे निराश न हो जाओ और यश प्राप्तिके लिये प्रयत्न करनेमें उत्साह दिखलाते रहो। इसलिये सिवाय मेरे तुम्हारे इस दुष्कृत्यको कोई भी नहीं जान सकेगा। प्रायः ऐसा देखा गया है कि जिनका पापकर्म एक बार संसारमें प्रगट हो जाता है, वे निर्लज्ज होकर उससे भी अधिक घोर कर्म करने लगते है। इसी विचारसे तुमपर यह दया की जाती है। आशा है कि तुम अपने चरित्र दिनपर दिन उन्नत करके इस कलंकको धोकर उज्वल बननेका प्रयत्न करोगे। जाओ और आज ही से पश्चात्ताप आदिसे अपने पापोंका प्रायश्चित्त करना प्रारंभ कर

दो । लोगोंको किसी प्रकारका सन्देह न हो, इसलिये मैं इस समय तुम्हारे रहनेके स्थानादिका परिवर्तन नहीं कर सकता । जिस तरह पहले रहते थे, उसी प्रकारसे रहो । दूकानकी सम्पूर्ण व्यवस्था मैं अपने हाथमें रक्खूगा ।

इसके पश्चात् जयदेवने तिजोरी वगैरहकी सम्पूर्ण सम्पत्ति संभालकर उसकी एक फेहिरिस्त तयार की, और ताले आदिकी सब व्यवस्था करके दूकानकी राह ली । उस दिन रामकुँवरि और हीरालालने शोक संतापमें भोजन नहीं किया ।

सातवां परिच्छेद ।

हीरालाल और रामकुंवरिकी इस घटनाको वहुत दिन हो गये । जयदेवको आशा थी कि ये सुधर जावेंगे, परन्तु ऐसा नहीं हुआ । हीरालालने दुराचार नहीं छोड़े । कदाचित् सस्त्रीक रहनेसे यह सम्हल जावेगा—ऐसा विचार कर जयदेवने पीहरसे हीरालालकी बहूको भी बुलवा दिया । परन्तु 'नीम न मीठी होय खाव गुड़ घीसे' के अनुसार वह ज्यों का त्यों बना रहा । हीरालालकी स्त्री सुभद्रा सुशीला और बुद्धिमती थी । उसने अपने पतिको सदाचारी बनानेके लिये शक्ति भर प्रयत्न किये । मन वचन कायसे सेवा की, नानारूपमें प्रार्थनाएं कीं, पर स्त्रियोंकी, वेश्याओंकी निन्दा की, उनके समागके दोष बतलाये, तज्जनित पापोंके नरक निगोदादि फल बतलाये और लोकोपवादका भय बतलाया; परन्तु यह सब 'चिकने घड़े परका पानी हुआ ।'

हीरालालका वज्र हृदय किसी प्रकारसे नरम नहीं हुआ। उस बेचा-रीको उलटा अपमानित और तिरस्कृत होना पड़ा।

रामकुँवरि भी यद्यपि प्रगट रूपमें पतिव्रता बनी रहती थी, परन्तु दुराचार सेवनकी ओर उसकी प्रवृत्ति पहलेकी अपेक्षा कई गुणी अधिक हो गई थी। हीरालालसे भी उसका सम्बन्ध नहीं छूटा था। यद्यपि रामकुँवरि और हीरालाल जानते थे कि हमारे दुराचारोंका जाननेवाला कोई नहीं है, परन्तु जयदेव उनके कृत्योंको रत्ती २ जानता था।

एक दिन जब विश्वस्तमार्गसे यह मालूम हुआ कि 'हीरालाल और उसके सहचारी इस बातकी गुप्त मंत्रणा कर रहे हैं कि जयदेवको किसी प्रकारसे खपा डालना' तब जयदेवको बहुत दुःख हुआ। यद्यपि उसे यह आशा बहुत कम थी कि हीरालाल और रामकुँवरिके चरित्र अच्छे हो जावेंगे। तौ भी उसे यह स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था कि मुझे उस चिरस्मरणीय अपरिमित उपकारका बदला पापियोंकी ओरसे इस रूपमें मिलेगा।

उस दिन इन्हीं सब बातोंका विचार करता हुआ और दुःखरूप संसारका भयानक चित्र देखता हुआ जयदेव सो गया। आंख लगते ही वह देखता क्या है कि एक विकटाकार पुरुष सुशीलाका अंचल पकड़के खींच रहा है, जिससे उसका आधा शरीर उघड़ गया है। और आधेको वह अपने हाथोंसे बड़ी कठिनाइसे संभाले हुए है। बाल खुले हुए है। आंखोंसे आंसुओंकी अविरल धारा बह रही है। जोर २ से चिल्लाकर कह रही है, नाथ! मुझे बचाओ, देखो, तुम्हारे

देखते हुए यह दुष्ट मेरी लज्जा हरण कर रहा है । हाय ! हाय ! तुम्हारा पुरुषत्व, तुम्हारा क्षत्रीधर्म आज क्या लुप्त हो गया? जो मेरी ओर देखते भी नहीं हो । हाय ! आप जैसे जगच्छिरोमणि विद्वान् वीररत्नकी पत्नी क्या मैं इसीलिये हुई थी कि मेरा सतीत्व संकटमें आ पड़ेगा, और कोई साहाय्य नहीं करेगा । हे प्राणेश्वर ! क्या मुझ वीरबालाको अब यह समझकर कि संसारसे क्षत्रियोंका पराक्रम विदा ले चुका है । " स्वयं अपने प्राणोत्सर्ग कर देना चाहिये? अच्छा, जीवनाधार ! तुम कुछ उत्तर नहीं देते हो, तो लो मै चली। हो सकेगा और मेरा अटल प्रेम कुछ सहायता करेगा, तो दूसरे जन्ममे आपसे मिलूंगी । नहीं तो..... . इतना कहते २ उस कल्पना मूर्तिने अपने आन्तरीयवस्त्रमेंसे एक तीक्ष्ण छुरी निकाली और चाहा कि पेटमें पैराकर पार हो जाऊं कि जयदेव चिल्लाकर उठ खड़ा हुआ और छुरी पकड़नेके लिये साम्हनेकी ओर उसने हाथ फैलाये । परन्तु वहां था क्या, जो पकड़ लेता ! पहरेपर टहलते हुए सिपाहीका हाथ पकड़ लिया ! वह घबड़ाकर बोला, मुनीमजी ! आप यह क्या कर रहे हैं? यह तो मैं आपका सिपाही हूं । जान पड़ता है, इस समय आप कोई स्वप्न देख कर बहक गये है । सचेत होकर अपनेको संभालिये । जयदेवने आख खोलकर देखा तो सचमुच सिपाहीका हाथ उनके हाथमें है । और कमरेमें चिराग जल रहा है, जिसमें वहां की सब चीजें साफ २ दिखलाई दे रही है । न सुशीला है, न विकटाकार पुरुष है और न वह स्थान है । जयदेव इससे कुछेक लज्जित होकर सिपाहीका हाथ

छोड़ कर बैठ गया और हाथ मुंह धोकर चादर ओढ़कर फिर लेट गया। परन्तु बहुत समय तक नींद नहीं आई, स्वप्नके ध्यानसे वह विकल होने लगा । सुशीलाकी बेवशी उसके हृदयके टुकड़े २ करने लगी। उसकी अत्यन्त करुणध्वनि कानोंके पास वार २ गूंजकर दुखी करने लगी। जयदेवने सोचा 'क्या सचमुच सुशीला ऐसी विपत्तिमें होगी। हाय! मै कैसा निर्दयी हूं, जो उसे भूलकर यहां दूसरोंकी चिन्तामें दुर्बल हो रहा हूं। भला मुझे इन व्यर्थकी चिन्ताओंसे क्या? यह तो संसार है 'घर घर ऐसे ही मटियारे चूल्हे हो रहे है' मूझे अब अपनी चिन्ता करनी चाहिये। प्यारे भूपसिंह! तुम न जाने कहां होओगे? हाय! मैं तुम जैसे सच्चे मित्रको भी भूल गया। न जाने समुद्रसे तुम्हारा उद्धार हुआ होगा या नहीं। तुम्हारे वृद्ध पिता तुम्हारे वियोगसे कितने दुखी होंगे? हाय! मुझ अभागेके कारणही तुम्हें अपने प्राणोंका संकट सहना पड़ा!

इस प्रकार नाना प्रकारके विचारोंमें गोते खाते खाते रात पूरी हो गई। जयदेवने उठकर नमस्कारमंत्रका स्मरण किया और अपने दिनके कर्तव्योंका निश्चय करके शय्याका त्याग किया। पश्चात् शौच मुखमार्जन स्नानसंध्या भोजनादि कार्योंसे निर्वृत्त होकर उसने अपने एक सदाचारी विश्वस्त मित्रको बुलाकर दूकानका सम्पूर्ण कार्य समझा दिया और उचित वेतन नियत करके उसे दूकानका मैनेजर बना दिया।

इसके पश्चात् नगरके सम्पूर्ण प्रतिष्ठित पुरुषोंको और कंचनपुर नरेशको आमंत्रित करके जयदेवने एक सभा की। उसमें सबका

यथोचित सत्कार करके उसने कहा " महाराजाधिराज ! और सभ्यगण ! आप लोग जानते ही है कि मै एक परदेशी व्यक्ति हूं। सुनामधेय सेठ रतनचन्द्जी विश्वास करके मुझे अपनी दूकान सौप गये थे। तदनुसार आजतक जिस तरह बना, मैने इस दूकानका प्रबंध किया। परन्तु अब मै स्वदेश जाना चाहता हू। चूंकि सेठ जीके पुत्र हीरालाल इस योग्य नहीं है कि दूकानका कार्य चला सकें, इस प्रतिष्ठित दूकानकी देखरेख आप लोगोंके जिम्मे करके और इसकी उन्नति अवनतिकी लज्जा आपके हाथ देकर निश्चिन्ततासे जाता हूं। वर्तमानमें मैने दूकानका प्रबंध अपने विश्वस्त मित्र विनीतचन्द्रको सोंपा है, आशा है कि आपकी देखरेखमें वे उत्तम रीतिसे कार्य सम्पादन करेंगे। सेठ रतनचन्द्जी आपकी नगरीके एक यशस्वी और प्रतिष्ठित वणिक थे। इसलिये मुझे सम्पूर्णतया आशा है कि आप लोग उनकी इस दूकानको चिरकाल तक रक्षित रखके उनका कीर्तिस्तंभ बनाये रक्खेंगे। इसके सिवाय दीक्षित होनेके समय सेठ रतनचन्द्जी मुझे एक लाख रुपया इसलिये सौप गये हैं कि उससे कोई लोकोपकारी धर्मकार्य सम्पादन किया जावे। सो यह रुपया मै महाराजके हस्तगत करता हूं, और प्रार्थना करता हूं कि शीघ्र ही इस रुपयेसे एक पाठशाला खोल दी जावे। और उसका नाम 'सेठ रतनचन्द पाठशाला' रक्खा जावे। उसमें ऐसे विद्यार्थी पढ़ाये जावें, जो २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य पूर्वक विद्याध्ययन करें और उत्तीर्ण होकर देश तथा धर्मकी सेवा करें। असमर्थ विद्यार्थियोंको पाठशालाकी ओरसे भोजनवर [illegible] प्रबन्ध किया

जावे। महाराज! मुझे खेद है कि उक्त भावी पाठशालाकी मैं कुछ भी सेवा न कर सका, और जाता हूं। तौ भी यह संतोष है कि आप जैसे विद्वान् नरनाथके हाथसे उसका कार्य बहुत उत्कृष्ट रीतिसे सम्पादन होगा। अन्तमें बिदाईकी क्षमा प्रार्थना करके मैं आप लोगोंकी आज्ञा लेता हूं।

जयदेवका वक्तव्य समाप्त होनेपर महाराजने उसका अनुमोदन किया और अपनी प्रसन्नता प्रगट की। साथ ही अन्यान्य सभ्यगणोंने भी करतल ध्वनिसे उसमें सम्मति प्रदर्शित की। इसके पश्चात् महाराजकी आज्ञानुसार उनके मंत्रीने दूकानके सम्पूर्ण वही खातोंकी जांच करके कोषकी संभाल की और सबको यथावस्थित पाया। तदनन्तर सभा विसर्जन करके जयदेवने महाराजको एकान्त स्थलमें ले जाकर सेठ रतनचन्दका लिखा हुआ वसीयतनामा सौंप दिया और हीरालाल रामकुँवरिके कच्चे चिट्ठेको सुनाकर कहा, 'इस जायदादपर हीरालालका कोई स्वत्व नहीं है, और अपने दुराचारोंसे वह दयाका पात्र भी नहीं है, तो भी यदि आपकी सम्मति हो, तो मै चाहता हूं कि कुछ पूंजी देकर उसे एक दूकान करा दी जावे, जिसमें वह अपना उदर निर्वाह कर सके, और राम कुँवरिको भी कुछ निर्वाह योग्य द्रव्य दे दिया जावे। महाराजने जयदेवके करुण हृदयपर आश्चर्य करते हुए इस विषयमें स्वीकरता दे दी। और पूछा करुणामूर्ति जयदेव! यह तो सब हो चुका, परन्तु अभी तक यह प्रगट नहीं हुआ कि तुम कहां जाते हो, क्यों जाते हो, और इस विपुल सम्पत्तिका उपभोग कव करोगे? जयदेवने नम्र होकर कहा, महाराज! आपकी कृपासे मैं

स्वयं एक विपुल लक्ष्मीका स्वामी हूं। मेरे भोगनेके लिये वही यथेष्ट है। एक आकस्मिक घटनासे मैं इस नगरमें आ गया था। सो रतन-चन्दजीके स्नेहसे इतने दिन तक यहां ठहरा रहा। अब बन्धुजनोंका मोह अतिशय व्याकुल कर रहा है, इसलिये जाता हूं। रतनचन्दजी मुझे अपनी सम्पत्तिका अधिकारी बना गये है—यह सच है, परन्तु-मै स्वयं उसपर अपना अधिकार नहीं समझता। इसलिये उसे आप लोगोंको सौपे जाता हूं। आप जो चाहें सो करें। यद्यपि मित्रताके सम्बन्धसे मै यह सलाह दे सकता हूं कि आप उसे किसी धर्मकार्यमें लगाते रहें, परन्तु स्वामी बनकर उसका स्वयं दान नहीं कर सकता; क्योंकि उसपर मेरा उतना ही स्वत्व है, जितना आपका। कंचनपुर नरेश जयदेवके उदार विचारोंको सुनकर अवाक हो रहे, आंखोंसे स्नेहके आनन्द आसू टपकने लगे। खड़े होकर उन्होंने उसे हृदयसे लगा लिया और कहा, ' जयदेव! अफसोस है कि तुम जैसे पुरुष रत्न अभी तक हमसे अप्रकट रहे और आज जब प्रकट हुए तब वियोग सन्मुख खड़ा है। जी कहता है कि तुम्हें जैसे तैसे अपने नेत्रोंके साम्हनेसे अलग न होने दूं, परन्तु तुम्हारे असह्य बन्धु वियोगको भी मै सहन नहीं कर सकता। अस्तु! तुम सज्जन हो, विद्वान् हो और हृदयके परीक्षक हो मेरे नवीन स्नेहकी अवहेलना न करोगे और अपना सम्पूर्ण परिचय देकर बहुत शीघ्र मुझसे मिलोगे, इसलिये इस समय मै तुम्हें नहीं रोकता हूं। जाओ प्रसन्नतासे जाओ। परन्तु चलते समय एकवार मुझसे फिर मिलते जाना महाराज के प्रेमपूरित वाक्योंसे जयदेवका गला भी भर आया। एक काग-

पर अपने ग्रामादिका पता लिखकर देनेके सिवाय मुंहसे वह कुछ भी न कह सका। महाराजने अपने महलोंकी ओर गमन किया, सत्कारके लिये जयदेव उन्हें कुछ दूर तक पहुंचानेके लिये गया।

इसके पश्चात् उस दिन और कुछ नहीं हो सका। क्योंकि चारों ओर यह खबर फैल गई कि "जयदेव स्वदेश जानेवाले है" इसलिये झुडके झुंड लोग उनसे मिलनेके लिये आने लगे। और जयदेव उन्हें आश्वासन देकर विदा करने लगे। कंचनपुरमें शायद ही कोई ऐसा होगा, जो जयदेवको न चाहता हो। उसके प्रत्येक गुणकी घरघर प्रशंसा होती थी। इसलिये आज उसके गमन समाचारसे सब ही को दुःख हुआ। लोगोंके आवागमनकी भीड़ उस दिन आधी रात तक कम नहीं हुई।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही जयदेव कंचनपुर नरेशसे मिलने गये वहां जाकर देखा तो लोगोंकी अगणित भीड़ एकत्र थी। मालूम हुआ यह सब उन्हींकी बिदाईकी तयारी हो रही है। महाराजाने बड़े स्नेहसे उन्हें बिठाया। पश्चात् राजपुरोहितने जयदेवके ललाटपर मंगल तिलक करके अक्षत डालते हुए एक आशीर्वादात्मक श्लोक पढ़ा, और महाराजने एक श्रीफल और बहुतसी भेंट दी।

तदनन्तर बड़ी धूमधामसे जयदेवकी विदाई हुई। गाजेबाजेके साथ सब लोग अनुमान १ मील पहुंचानेके लिये गये। अन्तमें अश्रुबिंदुओंके पुष्प समर्पित करते हुए और जुहारादिके लिये करव्यजन संचालन करते हुए, सब लोगोंने उन्हें जानेकी आज्ञा दी।

महाराजने एकवार फिर भी हृदयसे लगाकर आशीर्वाद दिया और जयदेवने प्रणाम करके अपने अभीष्ट स्थानकी ओर गमन किया। लोगोंके बहुत आग्रह करनेपर भी एक घोड़ेके सिवाय जयदेवने और कुछ भी साथमें न लिया।

आठवां परिच्छेद।

पृथ्वीका सार प्राणिवर्ग, प्राणी जगतका सार मनुष्य समाज, मानव समाजका सार रमणी, और रमणीका सार रूप है। रूप ही स्वर्ग, रूप ही सम्पत्ति और रूप ही सम्पूर्ण सुखोंका प्रस्रवण है। परन्तु रूप भी सारहीन नहीं है। रूपका भी सार है। यदि रूप सुखोंका निर्झर है, तो उसके सुखोंके सारका निर्झर कहना चाहिये। इस सारका नाम सुनते ही हृदयमें आनन्दामृत प्लावित होने लगता है, सम्पूर्ण दुःख भूल जाते है, योगियों कि नाई चित्तकी सम्पूर्ण वृत्तिया एकाग्र हो जाती है, और ससारीक लज्जा, भय, तिरस्कार, ईर्षा, द्वेष, लोभ, क्रोधादि विकारभावोंका लय हो जाता है। मानवीय भाषामें उस सारको प्रेम—स्वर्गीय प्रेम—स्वच्छन्द प्रेम कहते है। यह समस्त चेतनात्मक जगत इसी प्रेमका फल है। प्रेम न होता, तो संसार भी नहीं होता। प्रेमके विना जीवन भारभुत है, मर्कटके गलेका हार है अथवा शवका श्रृंगार है। जो प्रेमकी उपासना नहीं करता है, वह मानवजन्मका तिरस्कार करता है। प्रेमकी पूजा करना प्राणीका पवित्र पुण्यकर्म है। उसमें दोषका—कलंकका प्रवेश नहीं है। जो प्रेमको पापदृष्टिसे देखते है,

वे स्वयं पापी है। प्रेमसे पापका सम्बन्ध नहीं है। बल्कि प्रेमका प्रतिपक्षी अप्रेम ही पाप है। जिन्होंने यौवनके साथ २ जगन्मनोहारि रूप और लावण्य पाया है, उन्हें इस पापसे बचना चाहिये और सुखरूप स्वच्छन्द प्रेमके एकान्त उपासक बनना चाहिये।

प्रेममें द्वित्व नहीं है। प्रेम सबको एक दृष्टिसे देखता है। एक कोपीनाशेष दरिद्री और कुबेर सदृश धनिकमें प्रेम एक रूपसे प्रवेश करता है। विद्वान्, मूर्ख, बलवान्, निर्बल तथा रूपवान् और कुरूप सब ही प्रेमके समान अधिकार—प्राप्त मित्र है।

प्रेमके समदृष्टि राज्यमें 'निज' और 'पर' का भेद नहीं है। प्रेमराज्यकी सीमामें आते ही 'पर' को 'निजत्व' प्राप्त हो जाता है। बल्कि यों कहना चाहिये कि निजत्वका भी लोप होकर 'एकत्व' एक प्राणत्व हो जाता है। 'पर, शब्दकी व्युत्पत्ति ही प्रेमशास्त्रमें नहीं है। जो प्रेमका उपासक है—सच्चा सेवक है, वह परत्वबुद्धिको सर्वथा छोड़कर एकत्वके एक प्राणत्वके आनन्दराज्यमें विहार करता हुआ स्वर्गसुखका परिहास करता है। तुम स्वयं विदुषी हो, प्रेमकी उक्त व्याख्या करनेकी तुम्हारे सन्मुख आवश्यकता नहीं थी; स्मरणमात्र करानेके लिये मैंने यह सब किया है। यदि तुमने अपने चित्तको स्थिर करके मेरे यह चार शब्द सुन लिये है, तो मैं "सुखतर माराध्यते विशेषज्ञः" के सिद्धान्तके अनुसार कह सकती हूं कि अब तुम्हारे हृदयसे परत्वरूपी पिशाच निकल गया होगा और एकत्वके लिये व्याकुलता होने लगी होगी। बाह्य दृष्टिसे भी देखो, उदयसिंहमें किस बातकी त्रुटि है? ईश्वरकी कृपासे रूप, लावण्य, पराक्रम, प्रतिभा,

वैभव सब ही कुछ उनमे मौजूद है, वे अपनी विपुल सम्पत्तिके एक मात्र अधिकारी है। सेकड़ों रूप गर्विता सुन्दरियां उनके लिये तरस रहीं है, जीवन दे रही है, पर वे आंख उठाकर भी नहीं देखते। तुम्हारा परम सौभाग्य है, जो तुमपर उनका जी लग गया है। समझ लो कि इस समय तुम्हारे हाथमें तीन लोकका मुकुटमाणि आ गया है, अतएव उसकी अवहेलना मत करो। उसे हृदयसें लगाकर जीवन सफल करो। यह दुर्लभ मनुष्यजन्म वार २ नहीं मिलता। सूर्यपुरके पूर्व परिचित बागके कमरेमें शोकाकुल सुशीलाके सम्मुख एक स्त्री उपर्युक्त प्रेमशास्त्रका व्याख्यान कर रही है। यह स्त्री उमरमें ३० वर्षसे कम न होगी, तौभी यौवन सौन्दर्य्य उसके अंग अंगमें निवास कर रहा था। वह बड़ी सजधजसे बैठी हुई कटीली बड़ी २ आखोंसे भावभगी प्रगट करती हुई और ताम्बूल रंजित अधर पल्लवोंमेंसे कुन्दकलिका सदृश दन्तपक्तिकी प्रभा प्रस्फुटित करती हुई, अपना व्याख्यान दे रही थी। सुशील एक चटाईपर भीतके सहारे बेठी हुई, सिर नीचा किये, यह सब कुछ सुन रही थी। व्याख्यात्री स्त्री सूर्यपुरकी एक प्रसिद्ध दूती है, अपने सम्पूर्ण प्रयत्नोंको निष्फल देखकर उदयसिंहने इसीकी शरण ली है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इस दूतीके द्वारा अशक्यसे भी अशक्य कार्य सिद्ध हुए है। जहां इसके हाथ लगे है, वहा सफलता अवश्य हुई है। दूती प्रत्येक विषयमें असाधारण पांडित्य रखती है। बड़े २ वाचाल उसके साम्हने चुप हो जाते है, चालाक चूक जाते है, और दृढ़ प्रतिज्ञ प्रतिज्ञा भ्रष्ट हो गुलाम बन जाते है। बड़ी २ पतिव्रता

कुलांगनायें उसकी कृपासे आज पर पुरुषोको गले लगा रही है, बडे २ विचारशील एक पत्नी व्रतधारी पर रमणियोंके एकान्त प्रेमी हो रहे हैं, और जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी गण कुलटा तथा वेश्याओंके क्रीतदास बने हुए जीवन सार्थक कर रहे है। उदयसिंहको खूब आशा है कि आज इसके द्वारा हम सफल मनोरथ होंगे और बहुत शीघ्र इन्द्रकाननमें विहार करनेका आनन्द लूटेंगे।

दूतीका व्याख्यान समाप्त होने पर सुशीलाने कहा, "मै तुम्हारा उपदेश सुन चुकी, अब विशेप परिश्रम मत करो। तुम्हारा पाडित्य यहा काम न देगा। आकाशपुष्पोंको तोड़नेके लिये हाथ मत फैलाओ। रेतको पेलकर तेलकी आशा छोड़ दो। यहां वे चने नहीं है, जो दातोंसे पिसकर चूर्ण हो जाते है। ये दांतोंको भी चूर्ण करनेवाले लोहेके चने है। प्रेमकी मीमांसा करनेके लिये तुमने जो बुद्धि खर्च की है, उसपर हंसी आती है। भेदज्ञानपर तुमने खूब ही कुठार चलाया है। जिस "निज—पर" के भेद ज्ञान विना यह जीव अनादि कालसे चारों गतियोंमें भ्रमण करता हुआ नाना प्रकारके दुःख भोग रहा है, उस ही को समूल नष्ट करनेके लिये तुम्हारा प्रयत्न हुवा है। तुम्हारा प्रतिपादन किया हुआ प्रेम! प्रेम नहीं।, किन्तु पैशाचिक, पाशविक किंवा अमानुपिक कर्म है। पशुओंमें ऐसा ही प्रेम देखा जाता है। माता बहिन स्त्रीके भेद ज्ञान विना वे ही प्रेमकी उपासना करते है, मनुष्य नहीं। मनुष्य और पशुओंमे यही भेद है। तुम्हारे प्रेम राज्यकी दुहाई पशुसमाजमें ही फिर सकती है, मानव समाजमें नहीं। जिस दिन तुम्हारे प्रेमका राज्य मानवसमाजमें होगा उस दिन पृथ्वी कॉप उठेगी, प्रलय हो जावेगा"

दूती–ओ! हो! बड़ा उलहना दे डाला! खैर ऐसा ही सही, परंतु मेरी पिछली बातका भी तो उत्तर दे दो। यों तो तुम पंडिता हो, मै शास्त्रार्थमें तुमसे कब जीत सकती हूं?

सुशीला—क्या इतनेसे तुम्हारी बातका उत्तर नहीं हुआ? अस्तु अब सुन लो और खूब ध्यान लगाकर सुन लो कि तुम जैसी हजार उपदेशिका भी आ जावें, परन्तु मेरा बाल बाका नहीं कर सकेंगीं। तुम क्यों व्यर्थ ही प्रयत्न करती हो, " **बाज पराये पाणि परि, तू पंछिन जिन मार** " की उक्तिपर जरा तुम भी विचार करो और इस पापरूप व्यवसायको तिलांजुली दे दो। उदयसिंहसे कह दो, ' सूर्य पूर्वसे पश्चिममें ऊग सकता है, अग्नि शीतल हो सकती है, पाषाणपर कमल जम सकता है, पृथ्वीपर जहाज चल सकते है; परन्तु सुशीलाके हृदयका अधिकारी महामति जयदेवके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं हो सकता। प्राण चले जावेंगे, पर यह प्रतिज्ञा नहीं जावेगी–सदा स्थिर एक स्वरूप रहेगी। साथमें यह भी कहे देती हूं कि स्त्रियां स्वभावतः लज्जाशीला होती है, परंतु तुममें यह गुण सर्वथा नहीं है; यह देख मुझे तुमपर दुःख और ग्लानि होती है। इसलिये जाओ और अब मेरे सन्मुख नहीं आना। '

दूती–(नखरेसे) भला, मुझपर इतनी खफगी क्यों? तुम्हारे मिलनेकी कोशिशका मुझे क्या यही इनाम मिलेगा? मेरे सरीखा परोपकारका व्यापार और दूसरा कौन है? तुम जैसे हजारों तरसते हुओंको मिलाना और प्रेमके सूत्रमें बांधना जिसका पवित्र कर्म है, उसे बुरा व्यवसाय कौन कह सकता है? मुझसे घृणा करना तुम्हारी

गलती है। अस्तु अब यह तो कहो कि ये नाज नखरे दिखला २कर उन्हें कब तक तरसाओगी। बहुत तो हो चुका, अब जाने दो, परीक्षा हो चुकी। कहीं ऐसा न हो कि परीक्षा ही परीक्षामें बेचारोंकी जानपर आ बने। तुमने तो वही मसल कर रक्खी है कि 'मेंड़कोंकी जान जावे, लड़कोंका खेल' तुम्हें विश्वास न हो, तो चलो, मैं चलके दिखला दूं कि उदयसिंह तुम्हारे वियोगमें कैसे कराह रहे हैं।

इतना कह कर दूती हाथ पकड़के उठानेको अग्रसर हुई कि वह शान्तिमूर्ति सुशीला क्रोधसे कांप उठी। एकाएक सिंहनीसी क्रोधस्फुरित कंठसे बोली, "खबरदार पापिनी! एक शब्द भी मर्यादासे बाहर उच्चारण करेगी, तो जिव्हा खींच लूंगी। यदि कुशल चाहना है तो चुप चाप यहांसे चली जा।" दूती बिलकुल नहीं डरी उसीका सिर मटका कर कहने लगी "ऊंह? बड़ी मर्यादावाली हो, कहीं वहां भी मर्यादाको पकड़े न बैठी रहना।" इतना कहा ही था कि सुशीलाके नेत्रोंसे क्रोधकी चिनगारियां निकलने लगीं दिवालपर लटकते हुए कोड़ेको निकाल कर वह दूतीदेवीकी पूजा करने लगी। दूती चिल्लाकर भागी तौभी दरवाजे तक जाते २ अच्छे ताजे २ पच्चीस तीस कोड़ोंसे कमका प्रसाद नहीं चढ़ा। कोलाहल सुनकर चारों ओरसे दासियां दौड़ आईं। देखा, तो दूती भागी जा रही है और सुशीला सुकुमार रौद्र रूप धारण किये खड़ी है।

नवमां परिच्छेद।

आज सूर्यपुरमें घरघर गलीगली इस बातकी चर्चा हो रही है कि तालाबके समीप बगीचेमें एक बड़े महात्मा योगी ठहरे हुए हैं। वे पंचाग्नि तपते है, अधोमुख झूलते है, कण्टक शैय्यापर सोते हैं और केवल फलाहार करते हैं। वे न किसीसे कुछ याचना करते हैं और न किसीके यहां भोजन करते हैं। निरंतर मौन धारण किये रहते है। परन्तु कभी किसीपर प्रसन्न होते हैं, तो एक दो बातें करते है। उनकी कृपासे सैकड़ों अंधोंको सूझने लगा है, सैकड़ों जन्म रोगी निरोगी हो गये हैं, पागल चतुर हो गये हैं, लंगड़े दौड़ने लगे हैं, बहरे सुनने लगे है और निर्धन धनी हो गये हैं। मारन, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तंभन आदि सम्पूर्ण विद्याओंके वे पारगामी है। कहां तक कहें, जहां सुनिये वहां ही उनकी महिमाकी एक नई बात सुनाई देती है। बालक, युवा, वृद्ध, पुरुष, स्त्रियां सब ही इसी कथाके प्रेमी बन रहे है।

जिस जगह योगीजी ठहरे है, वहां हजारों पुरुष स्त्रियोंकी भीड़ हो रही है। साधु महाशय झाड़की डालीसे उलटे लटके हुए धूम्रपान कर रहे हैं। एक चेला उनके पास ही हाथ जोड़े खड़ा है। दर्शक गण बन्दना नमस्कारादि कर रहे है। दश पन्द्रह अंधे लँगड़े बहरे धूनीके चारों तरफ जम रहे है। एक घंटेके पश्चात् योगीजी झाड़से उतरे। लोगोंने 'जय जय' शब्द करके उनका अभिवादन किया। पश्चात् एक एक करके लोग प्रार्थना करने लगे और योगीजी धूनींमेंसे थोड़ी २ विभूति उठाकर देने लगे। अंधोंसे

कहा, घीमें घिसकर आंजो, लँगड़ोंसे कहा, पानीमें घिसकर लेप करो, बहरोंसे कहा, पानीमें घिसकर कानमें डालो। सारांश यह कि सब प्रकारकी आधिव्याधियोंपर योगीजी एक मात्र धूनीकी राख देते थे। दूसरी ओरसे अनेक पुरुष 'धन्य धन्य, जय जय' कहते हुए आ रहे थे। कोई कहता था, महाराज! एक ही वार लगानेसे मैं सूझता हो गया, कोई कहता था मेरे पैर अच्छे हो गये, और कोई कहता था मेरा कुष्ट जाता रहा। इस तरह कोई कुछ कोई कुछ कहते थे और आकर महात्माके चरणोंसे लपट जाते थे। दर्शकगण आश्चर्यान्वित होते हुए अपने २ घर जाते थे और उनके द्वारा आश्चर्यजनक प्रशंसा सुनके दूसरे दर्शक आते थे। इस तरह सारे दिन आवागमन जारी रहता था। योगीजी कभी धूनीपर बैठके भस्म वितरण करते थे, कभी कंटक शय्यापर लेटते थे और कभी पंचाग्नि तपते थे।

योगीजीकी कलाको फैले महीने भरसे ज्यादा हो गया। एक दिन उदयसिंह अपने दो चार मित्रोंके साथ बैठा हुआ था। बलवन्तसिंह भी उपस्थित था। उनमें यहां वहांकी गपोड़े बाजी होते होते इसी विषयकी चरचा छिड़ी। बातों ही बातोंमें वशीकरणकी बात चली। एकने कहा अन्यान्य कलाओंकी नाईं इस विषयमें भी योगीजी बड़े सिद्धहस्त है। अनेक लोगोंको उनके वशीकरणसे प्रत्यक्ष फल मिले हैं। दूसरेने कहा उस दिन दो तीन पनिहारियोंको देखो न! उन्होंने धूल फेंककर कैसा मंत्र मुग्ध कर दिया था कि घंटोंसे टकटकी बांधे हुए खड़ी रही थीं। जब दूसरी धूल फैंकी थी तब

कहीं बेचारी वहांसे टली थीं । तीसरेने कहा, भाई! उनकी सबही बातें विचित्र होती है। सच तो यह है कि आज तक न कोई ऐसा महात्मा आया है और न आवेगा । क्यों उदयसिंहजी आपने तो उनके दर्शन किये ही होंगे ! उदयसिंहने कहा, नहीं, अभी तक तो मैं वहां नहीं गया हूं, परन्तु अब विचार है कि जरूर जाऊंगा । बल्कि बलवन्तसिंह यदि सम्मति देंगे, तो आज ही जाके दर्शन करूंगा ।

इसके पश्चात् सब लोग अपने २ घर चले गये, और बलवन्त-सिंह तथा उदयसिंह परस्पर सम्मति मिलाकर योगीराजके दर्शनके लिये गये । इन्हें दूरसे आते हुए देखकर चेलारामने जम्हाई लेते हुए कहा निश्चय ही 'उदय बलवान्' है । योगीजीने अभिप्राय समझके मुसुकरा दिया ।

रात्रिका समय था । दश पांच आदमियोंके सिवाय योगीराजके यहां अधिक भीड़ न थी । सो भी जब उदयसिंहने एकान्तमें कुछ प्रार्थना करनेकी इच्छा प्रगट की तब वहांसे हटा दिये गये । जब उदय, बलवन्त, योगी और उनके शिष्यके सिवाय वहां कोई न रहा तब उदयने अतिशय नम्र होकर बशीकरण मंत्रकी याचना की।

योगी—ओह ! इस ! जरासे कार्यके लिये तूने इतना ढोंग फैलाया, उन लोगोंको वृथा कष्ट दिया, सबके साम्हने इशारा करनेमें क्या हर्ज था । वशीकरण कोई बुरा कर्म नहीं है, जो इतना छुपाया जाय । यह तो प्रत्येक पुरुषके पास रहने योग्य विद्या है। अच्छा तो इसके पहले कि तुम्हें वशीकरण सिखलाया जावे, हमको

इस बातका विश्वास होना चाहिये कि तुम किसी उच्च कुलके पुरुष हो। क्योंकि यह विद्या अपात्र वा अयोग्यको नहीं दी जाती।

बलवंतसिंह—महाराज! ये यहांके राजकुमार हैं, बड़े ही योग्य है, इनकी पात्रताके विषयमें आप कुछ भी शंका न करें। यहाका प्रत्येक पुरुष इनकी साक्षी दे सक्ता है।

योगी—अच्छा! (झोरेमेंसे एक पोटरी निकाल कर) यह थोड़ीसी धूप ले जाओ। इसे रविवारकी रात्रिको १२ बजेके पश्चात् किसी निर्जनस्थानके मान्दिरमें जलाओ, और पद्मासनसे बैठकर (एक कागजपर लिखकर) इस मंत्रको १००८ बार पढ़ो। अन्तमें धूपके साथ ही इस कागजको जला दो। बस, मंत्र सिद्ध हो जावेगा। जिसकी ओर एक दृष्टिसे तुम देख दोगे, वह तुम्हारा चेला हो जावेगा। पर बच्चा किसी बुरे कर्ममें इसका उपयोग नहीं करना।

उदयसिंह—(हाथ जोड़के) महाराज! आपकी आज्ञाके विरुद्ध कुछ नहीं होगा। परन्तु यह तो बतलाइये कि मंत्र सिद्ध करते समय इन्हें (बलवंतको) पास रख सकूंगा या नहीं? और आपने शायद देखा होगा। वह नदीके पासका फूटा मंदिर इस कार्यके योग्य है या नहीं?

योगी—मंत्रका जप करते समय तो नहीं, परंतु यदि तेरी इच्छा है तो धूप जलाते समय तक इसे पास रख सकता है। उस मंदिरको हमने देखा है, बहुत अच्छा है। हम स्वयं वहां मंत्र सिद्ध करनेको जाया करते है। अन्य स्थानोंकी अपेक्षा वहां सिद्धि भी

शीघ्र होती है। अच्छा, जाओ अब हम लोगोंके ध्यानका समय हो गया है।

यह सुनकर दोनों मित्र प्रसन्नतासे साष्टांग नमस्कार करके वहांसे चले गये। उदयसिंहको उस रात खूब नींद आई।

दूसरे ही दिन रविवार था। आधी रात होते ही दोनों मित्र खुशीसे फूटे मन्दिर में जा पहुंचे। अग्नि साथ ही लिये गये थे। नदीमें हाथ मुंह धोकर शुद्ध वस्त्र परिधान करके उदयसिंहने धूप जलाना प्रारंभ किया, जिससे थोड़ी ही देरमें मान्दिरका गर्भ गृह धुएंसे परिपूर्ण हो गया। वह धुआं खूब खुशबूदार था, इसलिये पहले तो उससे अरुचि नहीं हुई, परन्तु पीछे उसके असरसे दोनोंके मस्तक घूमने लगे। उदयसिंहने कहा, न जाने क्यों मुझे स्मृति भ्रमसा होता जाता है। बलबंतने कहा, और मेरी भी यही दशा है। इसके पश्चात् उदय कुछ कहा ही चाहता था कि बेहोश होकर गिर पड़ा और तबतक बलवंतने भी पैर फैला दिये। उन दोनोंके गिरते ही मानों ताक ही में बैठे थे, इस तरहसे दो मनुष्योंने आकर उन्हें बांध लिया और एक एककी गठरी पीठपर लाद ली। बाहर दो साधु भगवां वस्त्र पहने खड़े थे। उनसे गठरीवालोंने आकर कहा, कहिये अब हम लोगोंके लिये क्या आज्ञा है!

एक साधु—जितनी जल्दी जा सको, तुम दोनों सीधे विजयपुर चले जाओ और वहां इन्हें खूब बन्दोवस्तके साथ कैद करा दो।

एक मनुष्य—और आप लोगोंके विषयमें क्या कह दूं?

एक साधु— यही कि दूसरा कार्य सिद्ध करके शीघ्र ही आते

है । बहुत करके कल ही अपनी माया समेट कर हम लोग यहांसे चल देंगे।

इतनी बातचीतके पश्चात् वे दोनों पुरुष गठरी लादे हुए विजयपुरकी ओर रवाना हो गये और दोनों साधू वहासे चलकर सीधे उदयसिंहके बंगलेमें पहुंचे । परन्तु वहां जाकर जो कुछ सुना, उससे वे चकित स्तंभित हो गये । महलके दास दासी पहरेदार घबड़ाये हुए फिर रहे है, और कह रहे है, " हाय ! सुशीला न जाने कहां लोप हो गई ! " सब लोगोंकी आंखोंमें धूल डाल कर न जाने कहां अन्तर्धान हो गई ।

* * * * *

पाठकोंकी उत्कंठा मिटानेके लिये यहां यह कह देना अनुचित न होगा कि ये दोनों साधू वहीं थे, जो कुछ दिन पहले समुद्रके किनारे मल्लाहोंके महमान बने थे और जिन्होंने सूर्यपुरमें अपनी योगमाया फैलाकर लोगोंको चकित स्तंभित कर दिया था । इनमेंसे एक गुरुजीके वेषमें हैं विजयपुरके मंत्रीका पुत्र बलदेवसिंह है और दूसरा जो चेला बना हुआ है, सुशीलाकी प्यारी सखी रेवती है । ये दोनों ही सुशीलाका पता लगानेके लिये घरसे निकले थे । रास्तेमें भेंट हो जानेसे दोनोंने साथ रह कर पारस्परिक सहायतासे अपने अभीष्टको सिद्ध करनेका निश्चय कर लिया था । मल्लाहोंके आश्रममें उदयसिंहकी चिट्ठी जो बलवन्तसिंहके लिये उसका एक सेवक लिये जा रहा था, चालाकीसे बांचकर उन्होंने यह जान लिया था कि सुशीला अमुक स्थानमें रक्खी गई है और उदयसिंह उसे किसी प्रकारसे वश

करनेके प्रयत्नमें है । इसीलिये उन्होंने सूर्यपुरमें अपनी योगमाया फैलाई थी । सो उसके प्रभावसे उन्होंने उदय और बलवन्तको तो कैद कर लिया, परन्तु सुशीला हाथ न आई ।

योगलीलामें जो उन्होंने नाना प्रकारके चमत्कार दिखलाये थे, वे सब जाली थे । विजयपुर और विलासपुरके जो जासूस सुशीलादिका पता लगानेको आये थे, वे ही नाना प्रकारके वेष धारण करके अंधे लँगड़े बहरे बनकर आते थे, और फिर भस्ममात्रसे अपनेको अच्छे हुए बतलाते थे । अनेक लोग ऐसे भी चारों ओर फैल गये थे, जो लोगोंसे मिलकर योगिराजकी झूठी प्रशंसा करते थे । इसी विलक्षण चालाकीसे बलदेवसिंह और रेवतीने सूर्यपुरको अंधा बना दिया था। परन्तु अफसोस है कि जिस मुख्य कार्यके लिये उन्होंने इतने सब आडम्बर किये थे, वह सिद्ध न हुआ । सुशील फिर लापता हो गई ।

दशवां परिच्छेद ।

जिस दिनसे सुशीला जयदेव तथा भूपसिंहकी किसी विपत्तिमें फँस जानेकी वार्ता सुनी है, उसी दिनसे महाराज विक्रमसिंह निरं-तर उदास और सचिन्त्य रहा करते है । किसी भी राज्यकार्यमें उनका जी नहीं लगता । सदा एकान्त स्थानमें बैठे हुए वे अपने भाग्यकी गतिपर विचार किया करते है । उनकी पुत्रस्थानी या प्राणप्यारी सरस्वती (सुशीला) क्या खोई है ? ऐसा जान पड़ता है, उनकी सरस्वती (बुद्धि) भी उसके साथ खो गई है । वे बड़े दूरदर्शी और विद्वान् समझे जाते थे, परन्तु इस समय मोहके वशसे

उनमें न धीरता रही है और न दृढ़ता। यद्यपि सुशीला आदिकी खोजके लिये उनके बुद्धिमान् मंत्री अनेक गुप्तचर भेज चुके हैं और प्रतिदिन आश्वासन दिया करते है, परन्तु इससे उन्हें संतोष नहीं होता है।

एक दिन उन्होंने यह विचार कर कि 'बैठे रहनेकी अपेक्षा कुछ करना अच्छा है' अपने शूरसेन मंत्री और दो चार वयोवृद्ध तथा विशेषज्ञ राज्यकर्मचारियोंको एकान्तमें बुलाकर एक बैठक की। उसमें प्रस्ताव किया गया कि रेवती तथा रणवीरसिंहकी चिट्ठियोंसे अब इसमें तो सन्देह रहा ही नहीं कि सुशीला आदिपर जो विपत्ति आई है उसका कर्त्ता उदयसिंह है। ऐसी अवस्थामें सूर्यपुरपर चढ़ाई क्यों न की जावे? और उसे कैद करके सुशीला आदिका पता उसीसे क्यों न लगाया जाय? सूर्यपुरका राज्य हमसे कुछ जबर्दस्त नहीं है और न वहां कुछ ऐसी तयारी है, जिससे हमें डरनेका कोई कारण हो। इसके सिवाय यदि हम चढ़ाई करेंगे, तो विजयपुर राज्यसे भी हमें सहायता मिले विना न रहेगी। और जहां तक मेरा ख्याल है, अपनी सेना भी किसी प्रकार शिथिल नहीं है।

शूरसेन मंत्री—महाराज! आपका प्रस्ताव बहुत उचित है। परन्तु वह तब ही काममें लाया जाता, जब सूर्यपुर राज्यने अपने साथ खुले मैदान शत्रुता की होती। यह कार्य केवल एक गीदड़का है, जो एक बार अपने यहां कैद रह चुका है। उसमें महाराज निहालसिंहकी सर्वथा सम्मति नहीं है। वे स्वयं बड़े न्यायी और सज्जन

राजा है। मुझे विश्वास है कि यदि वे अपने पुत्रका यह दुराचार सुन पाते, तो उसे अवश्य ही दंड देते। ऐसी अवस्थामें सूर्यपुरपर चढ़ाई करना न्यायसंगत नहीं है।

विक्रमसिंह—यदि ऐसा है और निहालसिंहपर तुम्हारा इतना बड़ा विश्वास है, तो फिर उन्हें एक पत्रके द्वारा इस विषयकी सूचना क्यों नहीं दी जाती। जिसमें वे उदयसिंहको दंडित करके यदि उसकी कैदमें सुशीला हो, छुड़ाकर हमारे यहां भिजवा दें।

शूरसेन—परन्तु ऐसा करनेमें एक बड़ा भारी डर यह है कि यदि उदयसिंहको यह बात मालूम हो जावेगी और उसके अधिकारमें सरस्वती होगी तो '**मरता क्या न करता**' की नीतिके अनुसार न जाने वह क्या अनर्थ करनेपर उतारू हो जावे! और यह संभव नहीं है कि उसे इस बातकी खबर न हो। क्योंकि राज्य के प्रधान २ कर्मचारी उससे मिले हुए है। इसलिये मेरी समझमें जबतक खूब विचार न कर लिया जावे, पत्रादि लिखना भी उचित नहीं है।

विक्रमसिंह—प्रत्येक कार्य विचार करके करना चाहिये, यह ठीक है। क्योंकि अविचार पूर्वक कार्य करनेका ही यह फल है, जो आज इस दुःखके देखनेका समय आया है। हाय! वह कितनी बड़ी राजनैतिक भूल थी, जिससे एक विदेशी पुरुषको जो एक बार अक्षम्य अपराध कर चुका था, मैंने अपना विश्वासपात्र सेवक बना लिया था। परन्तु 'यह भी नहीं करना वह भी नहीं करना' तब क्या हमेशा इसी प्रकार निश्चेष्ट बैठे रहना चाहिये? तुम्हारे

जासूसोंने भी कोई आशाप्रद कार्य करके नहीं दिखलाया, जिससे कुछ धैर्य हो। भला! तुम ही कुछ कहो, उन्होंने कुछ किया है?

शूरसेन—नहीं महाराज! ऐसा न समझिये। जासूस लोग वरावर काम कर रहे हैं। सुशीलाका पता लग चुका है। रेवती वहुत जल्दी उसको छुड़ाके लावेगी। वहां उसकी माया अच्छी तरहसे फैल रही है। मुझे वहाकी रिपोर्ट दूसरे तीसरे दिन वरावर मिला करती है।

विक्रम०—देखो शूरसेन! तुम्हारी वातोंपर मुझे वड़ा भारी भरोसा है और अभी जो कुछ तुमने कहा है वह संतोष योग्य है। परन्तु वर्तमानमें मेरा चित्त ऐसा उद्विग्न और आकुलित रहता है कि प्रयत्न करनेपर भी स्थिर नहीं हो सकता। यदि तुम्हारी सम्मति हो, तो इस समय विजयपुर जाकर महाराज रणवीरसिंह तथा अपने सम्वधीसे मिल आऊं। उनके परामर्शसे चित्त कुछ स्थिर होगा और जी भी वहला रहेगा। सिवाय इसके उनकी सम्मतिसे कुछ प्रयत्न भी हो सकेगा।

शूरसेन—महाराज! विचार उत्तम है। मेरी भी राय है कि आप थोड़े दिनोंके लिये विजयपुर जा आवें। ईश्वरने चाहा तो आपके लौटनेके पहले ही सुशीला विलासपुरमें आ जावेगी। साथ ही उदयसिंह और वलवन्त भी अपने चेहरेपर कालिख लगाये हुए आ जावेंगे।

अन्यान्य कर्मचारियोंने भी महाराजके विचारका अनुमोदन किया और वैठक समाप्त की गई। सव लोग अपने २ घर गये और महाराज

शयनागारकी ओर चले गये। बहुत दिनके पीछे उस दिन उन्होंने महारानी मदनवेगाके साथ प्रेमसंभाषण किया।

दूसरे दिन थोड़ेसे सवारोंको साथ लेकर विक्रमसिंह मामूली ढंगसे विजयपुर पहुंचे। उनके एकाएक आनेसे महाराज रणवीरसिंहको आश्चर्य और हर्ष हुआ। उन्होंने बड़े प्रेमसे उनका स्वागत सत्कार किया। और दूसरे दिन सवेरे ही उनके आगमनकी खुशीमें एक बड़ा भारी दरबार किया। उस समय अपने सम्बन्धी जौहरी श्रीचन्द, सम्पूर्ण राज्यकर्मचारियों और नगरके प्रतिष्ठित पुरुषोंसे मिलकर विक्रमसिंहने प्रसन्नता प्रगट की और यथोचित वार्तालाप किया। इसके पश्चात् वे सुशीला जयदेव तथा भूपसिंहकी चर्चाका उपक्रम करना ही चाहते थे कि इतनेमें दो पुरुष दो गठरी पीठपर लादे हुए दरबारमें उपस्थित हुए।

गठरियोंमें क्या है, और ये लोग क्या कहते हैं, यह जाननेके लिये लोग अतिशय उत्कंठित हुए। महाराज रणवीरसिंह आगत पुरुषोंको पहिचान कर प्रसन्न हुए और बोले, क्यों! कुशल तो है? तब उनमें से एकने कहा, हां, महाराज! आपकी कृपासे उदयसिंह और बलवन्त दोनों ही आज अपनी कैदमें आ गये है। और ईश्वरने चाहा, तो आज संध्या तक श्रीमती सुशीलादेवी भी बंधनमुक्त होकर यहां आ जावेगी। यह सुनते ही विशेष कर पिछले वाक्यको, महाराज विक्रमसिंह आनन्दसे उछल पड़े। मेघपटलोंके फट जानेसे चन्द्रमाका बिम्ब जिस तरह खिल उठता है, उसी प्रकार उनका शोकग्रस्त मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। इतनेमें दूसरे पुरुषने दोनों

गठरी खोलकर दोनों कैदियोंको सचेत किया। तब होशमें आकर कैदियोंने अपनेको एक अचिन्त्य स्थानमें हथकड़ी बेड़ियोंसे विवश देखा। विक्रमसिंहने कहा, क्यों उदयसिंह! अब भी तुम अपनी बुराइयोंसे संतृप्त हुए कि नहीं? परन्तु उसने उत्तर नहीं दिया। इसी प्रकार बलवन्तसे भी कई प्रश्न किये, परन्तु कुछ उत्तर नहीं पाया। तब महाराज रणवीरसिंहकी आज्ञासे वे दोनों कारागृहमें भेज दिये गये। वहां उनके कारण पहरे आदिका जबर्दस्त प्रबन्ध किया गया।

इसके पश्चात् दरबार बरखास्त किया गया और एकान्त स्थानमें दोनों नरेशों, मंत्रियों और श्रेष्ठि श्रीचन्द्रने मिलकर सूर्यपुर राज्यके और कैदियोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ विचार किये। इसपर भी विचार किया गया कि भूपसिंह तथा जयदेवके अन्वेषण करनेके लिये और क्या उपाय किये जावें।

सुशीलाके आनेके समाचारसे श्रेष्ठि श्रीचन्द्र उनके कुटुम्बीजन प्रसन्न हुए, परन्तु जयदेवके वियोगके स्मरणसे उनकी वह प्रसन्नता फीकी रही।

ग्यारहवां परिच्छेद।

रतनचंद मुनिराजके साथ २ जा रहे हैं। आगे मुनिराज हैं, पीछे रतनचंद है। मुनिराज ईर्यापथ–शोधन करते हुए अर्थात् यह देखते हुए, कि मार्गमें कोई जन्तु तो नहीं है जिसका प्रमादसे घात हो जावे, गमन कर रहे है। रतनचन्द विचारता है, अहो! मुनि-

राजोंकी दया कैसी अपूर्व और लोकोत्तर है। भला जीवोंका परमबंधु इनके समान और कौन होगा? जिनकी दृष्टिमें शत्रुमित्र, तृण-कंचन, राजा रंक, मूर्ख विद्वान् सब एक समान हैं। पंचमहाव्रतरूप इनके एक अपूर्व सम्पत्ति है। अन्य कोई भी परिग्रह इनके पास नहीं है। शरीरसे ऐसी निष्पृहता कहीं भी नहीं देखी जाती। नग्नपरीषहको सहन करते हुए कामके बाणोंको विफल करना इन्हींका काम है। यद्यपि नाना प्रकारकी तपस्याओंसे इनका शरीर क्षीण हो गया है, परन्तु प्रभा चतुर्गुणी है। सामान्य पुरुषोंमें यह दिव्यप्रभा दिखाई नहीं देती। तपके प्रभावसे इन्हें अवधिज्ञान प्राप्त हो गया है, इसीसे इन्होंने मुझे रतनचंद कहकर संबोधित किया था। वाह! यह भी कैसी दिव्य शक्ति है। इससे दूर २ के विषय स्मरण मात्रसे प्रत्यक्षवत् हो जाते है। इसीसे अनुमान होता है कि एक ज्ञान ऐसा भी है, जिसमें तीन लोकके त्रिकालगत पदार्थ हस्तामलक हो जाते है। आत्मापर एक प्रकारका आवरण होता है, जिससे कोई आत्मा अधिक ढका रहता है, कोई उससे कम, और कोई उससे भी कम। अर्थात् किसी पुरुषको कम ज्ञान होता है किसीको उससे अधिक और किसीको उससे भी अधिक। तब बुद्धि स्वयं स्वीकार करती है कि कोई आत्मा ऐसा भी है जो इस आवरणसे सर्वथा रहित है, उसको सर्वज्ञ कहते है। और उसके ज्ञानको केवलज्ञान कहते हैं। इसी अवस्था और इसी ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये मुनियोंका यह प्रयत्न है। इसीको जैनमार्ग कहते है। यही आत्माका स्वभाव है। अब मुनिराजोंकी कृपासे मैं भी इस स्वभावके प्राप्त करनेका उद्योग करूंगा। अहा!

वह समय कब आवेगा, जब मै मुनिव्रत अंगीकार कर बीत गया आत्मकल्याणमें लगूंगा। महामुनि

मेरें कब व्है है वा दिनकी सुघरी, मेरे कब व्है है० —टेक।
तन विनवसन असनविन वनमें, निवसों नासादृष्टि धरी। १
पुण्य पाप परसों कब विरचों, परचों निजनिधि चिर विसरी।
तज उपाधि सज सहज समाधी, सहों धाम–हिम-मेघ-झरी॥ २॥
कब थिर जोग धरों ऐसो मुहि, उपल जान मृग खाज हरी।
ध्यान कमान तान अनुभव सर, छेदों किह दिन मोह अरी॥ ३॥
कब तृन कंचन एक गनों अरु, मनि जड़तालय शैलदरी
दौलत सतगुरु चरनसेव जो, पुरवो आश यहै हमरी॥ ४॥

इस प्रकारके नाना विचारोंमें मग्न हुए रतनचंदने देखा कि मैं [illegible]थानमें पहुंच गया हूं। इसके पहले अन्यमनस्क होनेके कारण [illegible] यह मालूम नहीं था कि मै कहां चल रहा हूं। परन्तु मुनिराज [illegible]के साथ वह आया था, जब खड़े हो रहे; तब वह भी खड़ा हो [illegible]। उस समय उसने देखा कि एक उंची शिलापर एक महामुनि [illegible]राजमान हो रहे हैं और आगत मुनि मस्तक नम्र किये उन्हें नमस्कार [illegible]हे है। शिलाके चारों ओर भी बहुतसे मुनि बैठे हुए है, जिनकी [illegible]ंख्या ९० से कम नहीं है। ऐसा जान पड़ता है शिलास्थित [illegible]हामुनि किसी व्याख्यानका प्रारंभ करना चाहते है और यह मुनिपरि[illegible]र उसके सुननेके लिये उत्कंठित हो रहा है। महामुनि संघाधीश आचार्य और मुनिगण शिष्यसम्प्रदायमें है। महामुनिके शरीरसे एक [illegible]वेलक्षण प्रभा प्रस्फुटित हो रही है, जिसके दर्शन मात्रसे उनका [illegible]मुख्यत्व, तथा महत्व प्रगट होता है। उसके मुखमंडलकी सौम्यता,

थे सम्पूर्ण प्रशंसा और सरलता देखते ही बनती है और मौन धारण किये बिना भी उनका शान्त शरीर संसारको वैरागतत्त्वका निरूपण करता हुआ सा दीख पड़ता है। उनके चारों ओर जो मुनिपरिकर है वह भी एक शान्तिताकी श्रेणी है। सब ही दिगम्बर मुद्राके धारण करनेवाले मोक्षमार्गके पाथिक हैं। सारांश उस पुण्य परिषत्में सर्वतः शान्ति वैराग्यकी अनुपम धारा बह रही है। जिस स्थानमें यह परिषद विराजमान था, वह स्थान बड़ा ही सुहावना जान पड़ता था। नाना प्रकारके सुन्दर वृक्षोंकी पंक्ति चहुँ ओर धीर गंभीर भावसे खड़ी थीं, मानो मुनियोंके संसर्गसे उसने ये गुण प्राप्त किये हों। बीचमें थोड़े २ अन्तरपर अनेक वसतिकायें बनी हुई थीं, जो किसी धर्मात्माने मुनियोंके विश्रामके लिये बनवाई थीं। सैकड़ों बड़ी २ शिलायें यत्र तत्र पड़ी थीं, जिनपर बैठकर मुनिगण ध्यानस्थ होते थे। वासतिकाओंके आसपास छोटी २ हरी २ दूब जो मुनियोंके कमंडलुओंके जलसे जम आई थी, बड़ी भली मालूम होती थी। मृगगण निडर होकर उसे चरते थे। मानों मुनियोंके उस रक्षितराज्यमें उन्होंने अपना स्वभाविक डरपोकपन भुला दिया था। जो हरिण जरासी आहट पाते ही सिरपर पैर रखके चौकड़ी भरने लगते हैं, वे ही उस निर्भय स्वर्गभूमिसे टाले नहीं टलते थे। पक्षीगण भी आनन्द कलरव करते हुए स्वच्छन्दतासे यहां वहां उड़ते फिरते थे।

रतनचन्दने उस दिव्यमंडलीको देखकर तत्काल ही साष्टांग नमस्कार किया और कहा, नाथ! इस शरणागतकी रक्षा करो, दुर्जय कर्मोंके

पंजेमें फँसे हुए इस दीनातिदीनको बचाओ। अनन्तकालसे सहते सहते अब ये कर्मोंके अत्याचार सहे नहीं जाते। यह सुन कर मुनिराजने आसन्नभव्य जानकर रतनचन्दको दयादृष्टिसे निरीक्षण करते हुए धर्मवृद्धि दी, और कहा भव्य! शान्त हो, चित्त स्थिर कर, तेरी इच्छा बहुत जल्दी पूर्ण होगी। तुझे अपने घरका विषमचरित्र देखकर जो वैराग्य प्राप्त हुआ है, वह अडोल रहेगा और उसके कारण संसार कारागृहसे तुझे थोड़े ही समयमें छुट्टी मिल जावेगी। योगीश्वरका आशीर्वाद सुनकर उत्तप्त उद्विग्नचित्त रतनचन्दको कुछ संतोष हुआ। और नवागत मुग्धबधुके अननुभूत पति—समागम सुखकी कल्पनाओंके समान जैनेश्वरीदीक्षा-प्राप्तिके सुखकी विचारतरंगोंमें वह फिर गोते खाने लगा।

इधर योगीश्वरने अपना व्याख्यान प्रारंभ किया। अत्याचार सम्बन्धी अनेक गूढ़ विषयोंको बड़ी सुगम भाषामें नानाप्रकारके दृष्टान्त दार्ष्टान्तोंसे उन्होंने सबके हस्तामलक कर दिया। उनकी अपूर्व, उपदेश शक्तिके प्रभावसे सम्पूर्ण श्रोताओंके हृदयकपाट खुल गये। सब ही धन्य धन्य करने लगे। तदनन्तर रतनचन्दने हाथ जोड़कर निवेदन किया, भगवान्! अब इस जिज्ञासुकी ओर भी दृष्टि कीजिये और कृपाकर बतलाइये कि आत्माका हित क्या है?

योगीश्वर—भव्यात्मन्! आत्माका यथार्थ हित आत्माके निजस्वभावकी प्राप्ति है। जैसे अपनी विपुल सम्पत्तिके खो जानेसे लोग दुःखी होते हैं और जब तक वह फिर न मिल जावे तब तक सुखी नहीं हो सकते। उसी प्रकार निजस्वभावरूप सम्पत्तिके लुप्त हो जानेसे

ये सम्पूर्ण प्राणी दुःखी हो रहे हैं, और उस सम्पत्तिको पुनः प्राप्त किये विना कदापि सुखी नहीं हो सकते। यद्यपि संसारके सब ही प्राणियोंकी यह इच्छा रहती है कि हमें सुखकी प्राप्ति हो, और दुःख हमारे पास भी न फटकने पावे, परन्तु हजार प्रयत्न करने पर हजार सिर पटकने पर भी वे सुखी नहीं हो सकते। जिसको दखिये वही दुखी दिखलाई देता है। जिससे पूछिये वही आपको दुखियोंका शिरोमणि बतलाता है, और जहां सुनिये वहा दुःख ही दुःख सुनाई पड़ता है! जानते हो, इसका कारण क्या है? यही कि वे सुखके यथार्थ स्वरूपको नहीं जानते हैं, और दुःखमें ही सुखकी कल्पना किया करते है। परन्तु जो अज्ञानी अंगारको सुन्दर शीतल मानकर हाथमें ले लेता है, क्या वह उससे जलकर दुःखी नहीं होता? अवश्य होता है। इसी प्रकार दुःखमें सुखकी कल्पना करनेसे उन्हें दुःख सुखरूप नहीं हो जाता, दुःख ही रहता है। सो ये प्राणी इस भ्रामक सुखकी प्राप्तिका प्रयत्न तो करते रहते है, परन्तु यथार्थ सुखरूप निजस्वभाव सम्पत्तिको सर्वथा भूल गये है, जो कि आत्माका सच्चा हित है।

रतनचन्द—नाथ! तो उस आत्महित आत्मसुख अथवा आत्मस्वभावको हम लोगे क्यों भूल रहे है? एक दो चार नहीं, किन्तु जब सब ही प्राणी उसे पानेका प्रयत्न नहीं करते, तब इसका कोई असाधारण कारण होना चाहिये।

योगी॰—हां! उस आत्मस्वभावपर एक प्रकारका दुर्निवार परदा पड़ा हुआ है, जिससे हम उसे देख नहीं सकते, विचार नहीं सकते और विना गुरुके उपदेशके समझ नहीं सकते। यही कारण है कि

सामान्य जीवोंकी प्रवृत्ति उसकी ओर नहीं होती। प्रत्येक पदार्थमें स्वभाव और विभाव दो प्रकारकी शक्तियां रहती है। स्वभाव स्वकृत शक्ति है। विभाव परकृत विकारशक्ति है। स्वभाव शक्ति कभी नष्ट नहीं होती, परन्तु विभावशक्ति विकार करणोंके पृथक् होते ही नष्ट हो जाती है और जब तक विभावशक्ति व्यक्त रहती है, तब तक स्वाभावशक्ति अव्यक्त रहती है। और उस अव्यक्त अवस्थामें ही अल्पबुद्धि समझ नहीं सकते कि उसका अस्तित्त्व है या नहीं। जैसे जलका शीतलपना उसका स्वभाव है और उष्णपना विभाव है। शीतलपना स्वयं होता है, परन्तु उष्णपना अग्निके संयोगसे होता है। जब तक उष्णपना रहता है तब तक शीतलपना अव्यक्त रहता है। परन्तु शीतलपनाके व्यक्त होते ही उष्णपना नष्ट हो जाता है। इस उष्ण जलमें हाथ डालनेसे जैसे वह आदमी जिसने कभी शीतल जल नहीं देखा सुना है, यह अनुमान नहीं कर सकता कि जलमें शीतलपना भी होता है। उसी प्रकार स्वभावशक्तिको भूले हुए जीव उसके प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं कर सकते है। क्योंकि विभावके कारण वह शक्ति अव्यक्त रहती है। यह विभाव ही एक प्रकारका परदा है, जिसका अनादिकालसे आत्माके साथ सम्बन्ध है। इसीके कारण आत्मा पराधीन, दुःखान्तरित और पापबीजरूप क्षणभंगुर सांसारिक सुखोंको सुख मान करके संसारमें भटकता फिरता है, और स्वतंत्र, सदास्थिर, एकस्वभावी सुखसे अभी तक बंचित है। जबतक वह परदा आत्माके आगेसे सर्वथा न हट जावेगा तबतक उसका निजस्वभाव प्रगट नहीं हो सकता।

रतन०—योगिनाथ! मुझ अल्पज्ञकी समझमें सामान्य कथनसे यह बात नहीं आई कि सचेतन आत्माके साथ उस जड़ रूप परदेका सम्बन्ध कैसे हो सकता है। इसलिये कृपा करके उस परदेका और उसके सम्बन्धका स्वरूप विस्तृतरूपसे समझानेकी कृपा कीजिये।

योगी०—रतनचन्द! जल्दी समझमें आनेके लिये सामान्य विविक्षासे यह विषय कह दिया गया है। परन्तु परदा कहनेका अभिप्राय यहा केवल इतना है कि आत्माके स्वभावपर एक प्रकारका कोई आवरण पड़ा हुआ है। जिससे उसके सम्पूर्ण गुण ढँके है। इसीको जैनशासनमें कर्मावरण कहते है। अब यह जानना चाहिये कि कर्मावरण क्या चीज है।

अनन्त आकाशके ठीक बीचमें जैसे एक पूरे मृदंगके ऊपर आधा मृदंग रक्खा हो, इस आकारका लोक संस्थित है—यह स्वयं सिद्ध है। इसका न कोई बनानेवाला है और न अन्त करनेवाला। अनादि कालसे ऐसा है और ऐसा ही रहेगा। इसकी उंचाई चौदह राजू और विस्तार ७-१-५-१ राजू अर्थात् मूलमें ७ राजू, मध्यमें १ राजू, ब्रह्मस्वर्गके अन्तमें ५ राजू और अन्तमें एक राजू है। घनवात घनोदधिवात और तनुवात इन तीन वायु मंडलोंसे वेष्टित हुआ उन्हींकी शक्तिविशेषसे आकाशमें ठहर रहा है। इस लोकमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पाच द्रव्य है। इनमें पूर्व कथित अनन्त आकाशद्रव्यको मिलानेसे छह द्रव्य कहलाते है। इन छह द्रव्योंमें एक आकाश द्रव्य सर्वव्यापी तथा सम्पूर्ण द्रव्योंका आधारस्वरूप है। अर्थात् पहले जीवादि पांचों द्रव्योंके ठहरनेका स्थान है और शेष पांचों द्रव्य अल्प क्षेत्रव्यापा

तथा आधेयस्वरूप हैं। अर्थात् जितने आकाशमें शेष पांच द्रव्य विद्यमान है, उसको तथा उन पांच द्रव्योंको मिलाकर लोक कहते हैं।

रतनचन्द०—भगवन्! लोकका स्वरूप मैं समझ गया हूं, परन्तु द्रव्यका स्वरूप अभी तक नहीं जाना है, सो कृपा करके समझाइये।

योगी०—अनन्त गुणोंके समुदायको द्रव्य कहते हैं। अर्थात् प्रत्येक द्रव्यमें अनन्त गुण होते है। इनमें कुछ तो सामान्य गुण हैं और कुछ विशेष गुण हैं। जो गुण दूसरे द्रव्योंमें पाये जावें अर्थात एक द्रव्यमें जो गुण हों और वे दूसरे द्रव्योंमें भी पाये जावें, उन गुणोंको सामान्य गुण कहते हैं। और जो गुण अन्य द्रव्योंमें न पाये जावें, केवल एक ही द्रव्यमें हों, उन्हें विशेषगुण कहते है। जैसे जीवका प्रदेशत्व सामान्य गुण है। क्योंकि जीवके सिवाय पुद्गलादि द्रव्योंमें भी वह पाया जाता है। अर्थात् पुद्गल, धर्म, अधर्मादि द्रव्य भी प्रदेशवान् होते है। और चेतना असाधारण विशेष गुण है। क्योंकि जीवके सिवाय अन्य कोई भी द्रव्य चेतनावान् नहीं है। यद्यपि प्रत्येक द्रव्यमें विशेषगुण भी अनन्त होते है, परन्तु उनमें एक विशेषगुण ऐसा होता है, जो लक्षणस्वरूप होता है। मिले हुए अनेक पदार्थोंमेंसे किसी एक पदार्थको भिन्न करनेके हेतुको लक्षण कहते है। जैसे कि चैतन्य कहनेसे अनेक द्रव्योंमेंसे वह जीवद्रव्य भिन्न करके समझ लिया जाता है जो चेतनायुक्त है। जिस गुणमें पदार्थ प्रतिभासित होता है उसको चेतना कहते हैं। अतएव

जीवका निर्दोष असाधारण लक्षण चेतना है । इसी प्रकार पुद्गलका लक्षण मूर्तत्त्व अर्थात् स्पर्श रस, गन्ध, वर्णवन्त है। धर्मद्रव्यका लक्षण जीव पुद्गलके गमन करनेमें सहकारित्व (सहायक) रूप है। अधर्म द्रव्यका लक्षण जीव पुद्गलकी स्थितिमें सहकारित्वरूप है। आकाशका लक्षण जीवादिक द्रव्योंको अवकाश-दातृत्वरूप है और काल द्रव्यका लक्षण जीवादिक पदार्थोंके परिणमन करानेमें सहकारित्वरूप है। द्रव्योंका संक्षेपसे यही स्वरूप है।

इन छह द्रव्योंमें एक जो पुद्गल द्रव्य है, जिसे कि जड़ तथा अजीव भी कहते है और जिसका लक्षण ऊपर कह दिया गया है, उसके मुख्य दो भेद हैं। एक अणु और दूसरा स्कन्ध । पुद्गलके सबसे छोटे खंडको अणु तथा परमाणु कहते है और अनेक परमाणुओंके समूहको स्कन्ध कहते है । इनके अनेक भेद है, जिनमेंसे एक स्कन्ध विशेषको कार्माणवर्गणा कहते है, जो कि संसारमें प्रायः सर्वत्र भरी हुई है, और जिनकी संख्या अनन्त है । जिस प्रकार आगमें तपाया हुआ लोहेका गोला जलमें डालनेसे वह अपने चारों तरफके जलको खींचता है। उसी प्रकार यह आत्मा रागद्वेषसे संतप्त होकर कार्माणवर्गणाओंको अपने चारों ओरसे आक-र्षित करता है। इस कार्माणवर्गणा और जीवके सम्बन्धको बंध कहते है। और जीवसे सम्बन्धप्राप्त कार्माणवर्गणाको ही कर्म कहते है। इनके कारण आत्माके ज्ञानादिक गुणोंका घात होता है अर्थात् ज्ञानादिक गुण ढॅक जाते है। इसीसे इन्हें कर्मावरण अथवा कर्म-रूपी परदा कहते है।

रतन०— मुनिनाथ ! आत्मा रागद्वेषादिके कारण संतप्त होकर कर्मबन्ध करता है, यह ठीक है। परन्तु रागद्वेषादि भी तो आत्माके स्वभाव नहीं है—विभाव है, जो कि परकृत होते है। अतएव यह बतलाइये कि उनका उत्पन्न करनेवाला कौन है ?

मुनि०—जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि कालसे बीज वृक्षके समान चला आता है। अर्थात् जैसे बीजसे वृक्ष उत्पन्न होता है और वृक्षसे बीज उत्पन्न होता है, उसी प्रकारसे आत्मा और कर्मका निरन्तरसे अनादिसन्तान रूप क्रम है। कोई समय ऐसा नहीं था, जब बिना वृक्षके बीज उत्पन्न हुआ हो अथवा विना बीजके वृक्ष उत्पन्न हुआ हो। इसी प्रकार कर्मके निमित्तसे आत्माके रागद्वेषादि भाव उत्पन्न होते हैं और रागद्वेषादिक भावोंके कारण कर्मबन्ध होता है। अर्थात् रागद्वेष होनेमें पुरातन कर्मबन्ध हेतु है, और नवीन कर्मबंध होनेमें रागद्वेष हेतु है। कभी ऐसा नहीं हुआ जब कि विना रागद्वेषोंके कर्मबन्ध हुआ हो, अथवा पूर्व कर्मबन्धके विना रागद्वेष उत्पन्न हुए हों। सारांश यह है कि यह संसारी आत्मा अनादिकालसे कर्मबन्धसहित है। अर्थात् प्रारंभसे ही उसपर कर्मावरण पड़ा हुआ है। यह कर्मावरण आत्माके स्वभावमें अनेक प्रकारके विकार करता है, जिसके कारण वह नाना प्रकारके सुख दुःख भोगता है, और भ्रामक कल्पनामें पड़कर उस स्वभाव-सुखसे वंचित रहता है, जो अचिन्त्य अनुपम और अनन्त है।

इतना कह कर मुनिराजने सामायिकका समय समीप आया जानकर उस दिनका व्याख्यान समाप्त किया।

बारहवां परिच्छेद ।

सुवर्णपुरके अन्तःपुरमें खलबली मच रही है । सखियां घबड़ाई हुई यहा वहा भाग रही है । कोई महाराणीको खबर देनेके लिये दौड़ीं है, कोई महाराजको बुला लानेके लिये जा रही है, और कोई शीतोपचारकी सामग्री जुटा रही हैं । अनेक सखियां मदनमालतीको चारों ओरसे घेरे हुए खाड़ी है । उनमें कोई पंखा झल रही हैं, कोई शीतल जलके छाटे दे रहीं है, किसीका हाथ नब्ज (नाड़ी) पर है, कोई मुखकमलपर बिखरे हुए पसीनेके कनूकोंको रूमालसे पोंछ रही है और कोई निश्चल निस्तब्ध है। सबके चेहरोंपर एक प्रकारका आश्चर्य भय झलक रहा है ।

मदनमालती मूर्छित अचेत है । आज उसकी सुहागरात्रि थी, इसलिये उसका नखसे शिख पर्यन्त सारा शरीर रत्नजटित आभूषणों और अनुपम शृंगारोंसे सुसज्जित हो रहा है । ऐसा जान पड़ता है, मानों तारागणोंका एक स्वरूपवान् सुडौल पिंड है । उसके खुले हुए मुखकमलकी शोभा देखते ही बनती है । बड़े २ खजनमदभंजन नेत्र धनुषाकार भ्रूयुगुल, लाली लिये हुए गोलकपोल और कुँदरूके फल सरीखे सुन्दर अधर देखकर जी चाहता है कि इसे देखते ही रहें । वाम कपोलपर सुन्दर तिल ऐसा जान पड़ता है, मानों विधि चित्रकारकी कलममेंसे मुखचन्द्रका चित्र खींचते हुए स्याहीका एक बिंदु गिर पड़ा है । वक्षस्थलपरसे अंचल अलग हो गया है, इसलिये उसके कमनीय कुचयुगलोंपर पड़ी हुई मोतियोंकी माला कमलकलिकाओंपर पड़े हुए जलके कनूकोंकी शंका उत्पन्न करती है ।

थोड़ी देरमें महाराणी दौड़ी आई तब तक प्रयत्न करनेसे मदनमालतीकी मूर्छा दूर हो गई। सचेत होनेपर पूछा, बेटी! तुझे अचानक यह क्या हो गया था? परन्तु कुछ उत्तर नहीं मिला। लज्जाके मारे सिर नीचा करके वह चुप हो रही। इतनेमें एक चन्द्र-लेखा नामकी सखी वहींपर पड़ी हुई एक चिट्ठी जो मदनमालतीकी असावधानीसे गिर गई थी, उठाकर बांचने लगी। उसे पढ़कर वह एक आह खींचकर रह गई। यह देख महाराणीने पूछा, चन्द्रलेखा! तू अभी यह क्या पठ रही थी? और यह आह क्यों खींची? चन्द्रलेखा जीके दुःखको छुपा न सकी, इसलिये भूपसिंहकी चिट्ठी उनके हाथमें देकर वह बोली, माता! यह पढ़िये, कुमार भूपसिंह कैसे कठोर हृदयके निकले? कैसे समयमें प्रवंचना करके वे चले गये! कुमारीकी मूर्च्छाका यही कारण था। अफसोस! कि विना कहे सुने ही चला जाना उन्होंने अच्छा समझा! क्या हर्ज था, सबसे विदाई लेकर हँसी खुशीसे जाते। उन्हें कौन रोक सकता था? महाराणीने भी चिट्ठी पढ़कर एक दीर्घ निश्वास ली। आखोंमें आंसू भर लाई। उन्हें आंचलसे पोंछते हुए उन्होंने कहा, चन्द्रलेखा! क्या किया जावे, भाग्यकी बात है। उसपर किसीका वश नहीं है। कुछ विचारा था, कुछ हो गया। कठिनाईसे सुखके दिन आये थे, सो विधिकी गतिसे दुःखमें परिणत हो गये। परन्तु अब खेद करनेसे क्या? मदनमालती स्वयं बुद्धिमती है। वह इन सब बातोंका विचार कर सकती है। और यह भी तो सोचो कि भूपसिंहने अपनी चिट्ठीमें जो कुछ लिखा है, उससे उसमें कृतज्ञता, उदारता, इन्द्रि-

यनिग्रहता आदि गुणोंकी कितनी अधिकता प्रतीत होती है। अपने मित्रके लिये जो अपने सम्पूर्ण सुखोंपर छार डाल सकता है, उसे एक महापुरुष ही समझना चाहिये। और इससे मदनमालतीको इस बातका अभिमान होना चाहिये कि मुझे कैसा गुणवान् पति मिला है। बल्कि एक प्रकारसे शोकके स्थानमें उसे हर्ष होना चाहिये,जो मोहकी सबसे कठिन परीक्षामें उसका पति उत्तीर्ण हो गया और परोपकारके अद्वितीय सत्कारका भोजन हुआ। जो दूसरेके दुःखसे दुखी होता है, उसी पुरुषका जीवन सफल है। नहीं तो अपने सुखकी खोजमें अपना पापमय जीवन कौन समाप्त नहीं करता? और भूपसिंहने आश्वासन भी तो दिया है। वे बहुत जल्दी आवेंगे। तुम सबको चाहिये कि निरन्तर उनकी मंगलकामना करती रहो, और भगवान्से इस विषयमें प्रार्थी रहो। अच्छा, तो अब मै जाती हूं। तुम सब लड़कीको समझा बुझाकर ऊपर ले जाओ और उसका मन बहलाओ। मैं महाराजसे कहकर भूपसिंहकी खोजके लिये यदि उचित समझा गया, तो एक दो चतुर पुरुष भिजवाऊंगी।

महारानी चली गई। सखीगण मदनमालतीको उनकी आज्ञानुसार महलकी छतपर ले गईं। आकाश स्वच्छ था। तारिकाप्रभा और चांदनी छिटक रही थी। खसखसकी टट्टियोंसे और चारों तरफ रक्खे हुए फूलोंके सुन्दर गमलोंमेंसे शीतल सुगंधित हवाके झोंके आ रहे थे, और भी नाना प्रकारकी शीतल सामग्रियोंसे उस ग्रीष्मको शिशिर-ऋतु बना रक्खी थी। ऐसा नहीं जान पड़ता था कि यह वही ग्रीष्म-काल है, जो बेचारे दीनहीन पुरुषोंको उनकी जर्जर कुटीरोंमें झुलसा

रहा है। कैसा अन्याय है। जिसके राज्यमें रहकर एक पुरुष स्वर्गसुखोंका अनुभव करता है, उसीके राज्यमें दूसरा नारकीय वेदनायें सहता हुआ दिन काटता है। जबर्दस्तके दो हिस्से होते है। जुल्मीसे भी जुल्मी राजाओंको जबर्दस्त लोग शीतल बना लेते है, इसका अनुभव वहां अच्छी तरहसे होता था। मदनमालती वहींपर पड़े हुए एक पलंगपर लेट गई, जिसपर सुन्दर पुष्पोंकी शय्या बिछी हुई थी। सखीजन चारों ओर घेरकर बैठ गईं। कोई पंखा झलने लगीं, कोई गुलाबपाश लाकर उसके उदास मुखपर गुलाब-जल छिड़कने लगीं, और कोई २ नखरेबाज मीठी चुटीली कहानियां कहकर आनन्द और हास्यकी वर्षा करने लगीं, परन्तु कुछ भी फल नहीं हुआ। मदनमालतीका मुरझाया हुआ मन फिर डहडहा नहीं हुआ। वह चांदनीमें चुरने लगी, शीतल समीरमें झुलसने लगी, और सखियोंकी कहानियोंसे ऊब उठी। ऊंची २ उसासें लेनेके सिवाय वह सब प्रकारसे निश्चेष्ट हो रही। भाग्यके फेरसे सुखदाई पदार्थ भी दुखदाई हो जाते है। परन्तु यथार्थमें पदार्थोंमें सुखदुःख देने रूप कोई भी शक्ति नहीं है। सुख और दुःख मान लेना आत्माका कार्य है। जिसे आत्मा सुखरूप मान लेता है, वह सुखदाता हो जाता है। और जिसे दुःखरूप मान लेता है, वह दुःखदाता हो जाता है। पानीको बरसता हुआ देखकर किसान सुखी होता है, परन्तु पथिक दुःखी होता है। क्यों? इसलिये कि वह उसमें सुखरूप कल्पना कर लेता है और वह दुःखरूप। अस्तु इस वेदान्तज्ञानके लिखनेका हमको अवकाश नहीं है। अभिप्राय केवल

इतना है कि वे सब सुखकी सामग्री मदनमालतीको वियोग कल्पनासे दुःख ही दुःखरूप दिखने लगीं। बेचारी सखियोंका कुछ भी उपाय सफलीभूत नहीं हुआ।

अनुमान दो घंटे तक मदनमालतीका यही हाल रहा। इतनमें एक शान्तरूपा ब्रह्मचारिणी वहां पर आई। जिसे देखते ही मदनमालती सम्हल कर उठ खड़ी हुई और अपनी विरह दशाको छुपाती हुई प्रणाम करके ब्रह्मचरिणीके बैठ जानेपर विनयके साथ बैठ गई। यह ब्रह्मचारिणी मदनमालतीकी अध्यापिका थी। बालकपनसे इसीके पास वह पढ़ती लिखती है। इसी कारण मदनमालती उसका इतना विनय करती है। ब्रह्मचारिणीने कुशल प्रश्नके पश्चात् कहा, मालती! महारानीके द्वारा चिरंजीवी भूपसिंहके दुःखके समाचार सुनकर मै तुम्हारे पास दौड़ी आई हूं। तुम्हें मै बहुत बुद्धिमती और सुशील बालिका समझती हूं, इसलिये इस विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं देखती। संसरणरूप संसारमें ऐसे सैकड़ों उलट पुलट प्रतिदिन हुआ करते है, और विचारशील पुरुष उन्हें सदा धैर्य्यसे सहन करते है। यह सब अपने पूर्वकर्मके पापोंका उदय है। इनका फल भोगे विना छुटकारा नहीं है। धैर्य धारण करके भोगोगी तो भोगना पड़ेंगे, और विचालित शोकित होकर भोगोगी, तो भोगना पड़ेंगे। परन्तु जो धीरतासे सहन कर लेगी, तो इतना लाभ होगा कि आर्तध्यानसे नवीन कर्मोंका बंध नहीं होवेगा। अन्यथा यह तो भोगना ही है। और इससे नवीन कर्मबंध करके आगामी कालमें फिर उनके उदयफलके भोगनेकी अधिकारिणी

होओगी। इसलिये, प्यारी बेटी! दुःखको विस्मरण करके जितने दिन तक यह वियोग-रात्रि रहे और पतिसंयोगरूपी दिवसका उदय न हो, तब तक एक भुक्ता होकर रह और सौभाग्यमात्र शृंगारको रखकर निरन्तर जिनेन्द्रदेवका स्मरण किया कर। अपने प्राणनाथके गुणोंका सदा चिन्तवन और उसकी मंगलकामना प्रत्येक कुलीन स्त्रीका धर्म है। पतिके वियोगमें दुःखी होनेसे ही कोई स्त्री पतिव्रता नहीं कहला सकती; क्योंकि उसमें उसका सुखस्वार्थ है। और सुखस्वार्थके नष्ट होनेपर कौन दुःखी नहीं होता? परन्तु जिस स्त्रीके वियोगावस्थामें ऐसे उच्च विचार रहते हैं कि "मैं दुखी हूं, सो तो अपने कर्मके उदयसे हूं' परन्तु मेरे जीवनाधारको किसी प्रकारका कष्ट न हो. वे सुखसे रहें। मेरे वियोगका दुःख भी उन्हें न सतावे। क्योंकि जो उनका सुख है, वही मेरा सुख है—" वही सच्ची पतिपारायणा स्त्री है। जो स्त्रियां प्रतिदिन जिनदेवकी पूजा करती हैं, संयमसे रहती है, धर्मध्यानमें लगी रहती हैं और दुखिया भूखे जीवोंपर दया करके दान दिया करती है, उन्हें उनके पति बहुत शीघ्र आकर मिलते हैं। क्योंकि सम्पूर्ण सुखोंकी जड़ धर्म है। धर्मकी महिमा वचनसे नहीं कही जा सकती। मदनमालती यह सब सुनकर रह गई, उसने कुछ उत्तर न दिया। परन्तु उसकी मुखमुद्रा देखकर ब्रह्मचारिणी जान गई कि मेरे कहनेका इसपर कुछ असर हुआ है। और उसी समय दासियोंको कुछ और भी समझा बुझा कर वहांसे चली गई।

इसके पश्चात् मदनमालतीने शोक परित्याग कर दिया, और

वह अपनी गुरानीकी आज्ञानुसार उसी दिनसे व्रतनियमसंयम पूर्वक रहने लगी। एक सदावर्त भी उसने शीघ्र खोल दिया, जिसमें सम्पूर्ण दीन दुखियोंको भोजन वस्त्र दिये जानेकी व्यवस्था हो गई।

तेरहवां परिच्छेद।

दूसरे दिन फिर मुनिपरिषद् एकत्र हुआ। सामान्य व्याख्यान हो चुकनेपर रतनचन्दने खड़े होकर विनयपूर्वक पूछा, भगवन्! आज कृपा करके यह बतलाइये कि कर्म कितने प्रकारके है? उनका आत्मासे सम्बन्ध किस प्रकार होता है? वे फल किस प्रकार देते है? और फिर आत्मासे उनका सम्बन्ध किस प्रकारसे छूटता है?

मुनिराज—कर्मके मुख्य भेद आठ है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। इनमेंसे पहला ज्ञानावरणीयकर्म आत्माके ज्ञान गुणका घात करता है। अर्थात् जब ज्ञानावरणी जातिकी कर्मवर्गणाओंसे आत्माका सम्बन्ध होता हैं, तब उसकी ज्ञानरूपी शक्तिपर एक प्रकारका परदा पड़ जाता है, जिससे वह शक्ति अपना काम नहीं कर सकती। आत्माकी स्वाभाविक ज्ञानशक्ति इतनी है कि यदि उसपर कोई आवरण न हो, तो वह संसारके तीन काल सम्बन्धी समस्त पदार्थोंको एक समयमें जान सकता है। परन्तु इन कर्मोंसे ढँके रहनेके कारण वह उतना नहीं जान सकता, अथवा थोड़ा बहुत उपशम होनेसे अर्थात् आवरणके न्यूनाधिक होनेसे थोड़ा बहुत जान सकता

है। दूसरा दर्शनावरणीयकर्म आत्माके दर्शनगुणका घात करता है। अर्थात् उसके कारण आत्माकी अनन्तदर्शनशक्ति ढँकी हुई रहती है। तीसरा वेदनीयकर्म आत्माके अव्याबाधगुणका घात करता है। अर्थात् वेदनीय जातिकी कार्माणवर्गणाओंके सम्बन्धसे आत्माकी बाधारहित शक्ति ढॅक जाती है। चौथे मोहनीयकर्मके दो भेद हैं, एक दर्शनमोहनीय और दूसरा चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीयकी कर्मवर्गणाओंसे आत्माका सम्यग्दर्शनगुण दब जाता है, और चारित्रमोहनीयसे चारित्रगुण ढँक जाता है आयुकर्म आत्माके अवगाहनगुणका घात करता है, नामकर्म सूक्ष्म गुणका घात करता है, गोत्रकर्म अगुरुलघुका घातक है, और अन्तरायकर्म वीर्य (पराक्रम) गुणका घातक है।

उदाहरणके लिये ज्ञानावरणीयका स्वभाव परदेके समान है। जिस प्रकार परदा पदार्थको यथार्थ नहीं देखने देता, उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्मपुद्गल आत्माके प्रवेशोंसे सम्बन्ध करके तत्त्वज्ञान नहीं होने देते। दर्शनावरणीका स्वभाव द्वारपालके समान है। अर्थात् जिस प्रकार द्वारपाल परका दर्शन नहीं होने देते, उसी प्रकार इस कर्मके परमाणु परका दर्शन नहीं होने देते। मोहनीयका स्वभाव मदिराके समान है। अर्थात् जिस प्रकार मदिरा जीवोंको असावधान कर देती है, उसी प्रकार मोहनीयकर्म आत्माको संसारमें पागलसा बना देता है। वेदनीयका स्वभाव शहदलपेटी छुरीके समान है। जैसे छुरी चाटनेसे मीठी लगती है, परन्तु आखिर जीभका छेदन करती है। उसी प्रकार वेदनीय थोड़े समयके लिये साता दिखाकर

असातासे पीड़ित रखता है। आयुका स्वभाव खोड़ेके (काठ) समान है। जैसे खोड़ेमें चोरका पांव अटका देते हैं, और जिस प्रकार उसके रहते चोर नहीं निकल सकता, उसी प्रकार आयुकर्मके पूर्ण हुए विना आत्मा नरकादिसे नहीं निकल सकता। नामकर्मका स्वभाव चित्रकारके समान है। जिस प्रकार चित्रकार नाना प्रकारके आकार बनाता है, उसी प्रकार नामकर्म आत्मासे सम्बन्ध करके नाना प्रकार मनुष्य तिर्यञ्चादि आकार बनाता है। गोत्रकर्मका स्वभाव कुंभकारके समान है। जिस प्रकार कुंभकार छोटे बड़े नाना प्रकारके वर्तन बनाता है, उसी प्रकार गोत्रकर्म, नीचे ऊंचे गोत्रोंमें उत्पन्न करता है। और अन्तरायका स्वभाव उस राजभंडारीके समान है, जो राजाके दिलानेपर भी किसीको दान नहीं देता। जैसे भंडारी भिक्षुकोंको लाभ नहीं होने देता, उसी प्रकार अन्तरायकर्म आत्माके दानलाभादिमें विघ्न डाल देता है।

यह तो पहले ही कह चुके हैं कि जिस समय आत्मा रागद्वेषसे संतप्त होता है, उस समय उसके साथ कार्माणवर्गणाओंका सम्बन्ध होता है। इस सम्बन्धको ही बन्ध कहते है। यह बन्ध चार प्रकारका है। प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध। कर्ममें आत्माके गुणोंके घात करनेकी शक्तिका नाम प्रकृतिबंध है। अर्थात् सामान्य कर्मवर्गणाके परमाणुओंमें जब ऊपर कहे अनुसार ज्ञान दर्शन आदि आत्माके गुणोंके घात करनेरूप पृथक २ स्वभाव उत्पन्न हो जाते है, तब वह प्रकृतिबन्ध कहलाता है। आत्माके असंख्य प्रदेशोंमेंसे एक २ प्रदेशपर अनन्तानन्त कर्मवर्गणाओं, संसारी

जीवके प्रदेशों और पुद्गलके प्रदेशोंके एकक्षेत्रावगाही होनेको प्रदेशबन्ध कहते है। कार्माणवर्गणाओंका उनके स्वभावसे च्युत न होनेको अर्थात् कौन वर्गणा कितने समय तक आत्माके साथ बंधरूप रहेगी, इस प्रकारकी स्थितिका प्रमाण बँधनेको स्थितिबन्ध कहते हैं। और कर्मोंकी हीनाधिक फलदान शक्तिको अनुभागबंध कहते हैं। इन चार प्रकारके कर्मबन्धोंमें प्रकृति और प्रदेशबंध योगोंसे होते है। और स्थिति तथा अनुभागबंध कषायोंसे होते हैं। यहां तुम्हें यह भी जान लेना चाहिये कि पुद्गलविपाकीशरीर नामक नामकर्मके उदयसे मन वचन कायसंयुक्त जीवकी उस शक्ति विशेषको योग कहते है, जो कर्मोंके आगमनमें कारणस्वरूप होती है। और आत्मा के क्रोध, मान, माया और लोभ रूप परिणामोंको कषाय कहते हैं।

प्रत्येक कर्मकी मुख्य चार अवस्था होती है। उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम। कर्म अपनी बँधी हुई स्थितिको पूर्ण करके जिस समय फल देता है, उस समय उस फलदान अवस्थाको उदय कहते है। जैसे किसी जीवने पांच वर्षके लिये कोई कर्म बाधा और वह पांच वर्षकी स्थिति पुरी करके जब कर्मफल देनेके सम्मुख हुआ, तब उसकी उस अवस्थाको उदय अवस्था कहते है। कारणवश कर्मशक्तिकी अनुद्भूति होनेको उपशम कहते है। जैसे मैले जलसे भरे हुए गिलासमें निर्मली डाल देनेसे उसका मैल नीचे बैठ जाता है और स्वच्छ जल हो जाता है। उसी प्रकारसे जीवके परिणामोंके निमित्तसे कर्मरूपी मल कुछ काल तक फल देने योग्य नहीं रहता है। उस अवस्थाको उपशम कहते है। आत्मासे किसी कर्मके सर्वथा छूट

जानेको क्षय कहते है । कर्मके जो आठ भेद पहले कह चुके हैं, वे मुख्यतासे दो प्रकारके है, एक घाती और दूसरे अघाती । जो जीवके गुणोंका घात करते हैं उन्हें घाती कहते है, और जो नहीं करते है, उन्हें अघाती कहते है । इसी प्रकार घातीके दो भेद हैं । एक देशघाती, और दूसरा सर्वघाती । कर्मके समूहको स्पर्धक, और जितने कर्मपरमाणु एक समयमें उदय आवें उतने परमाणुओंके समूहको निषेक कहते है । वर्तमान निषेकमें सर्वघाती स्पर्धकोंका उदयाभावक्षय अर्थात् विना फल दिये ही आत्मसे छूट जाना, देशघाती स्पर्धकोंका उदय और वर्तमान निषेकको छोड़ आगेके निषेकोंका सत्ता अवस्थारूप उपशम, कर्मकी ऐसी मिश्रित अवस्थाको क्षयोपशम कहते हैं ।

कर्म और जीवका सम्बन्ध हम समझते हैं, तुम्हें अवगत हो चुका होगा । अब यह बतलाना है कि अनादि कालसे इन कर्मोंके पंजेमें फँसा हुआ आत्मा उनसे छुटकारा किस प्रकारसे पाता है । पहले कहा जा चुका है कि बन्धके कारण योग और कषाय हैं । इसलिये यह बात हर कोईकी समझमें आ सकती है कि मोक्षका उपाय योग कषायके अभावरूप होगा । क्योंकि कारणके अभावसे कार्यका भी अभाव हो जाता है । इसलिये यह बिचारना चाहिये कि योग कषायका अभाव किस प्रकारसे होता है।

यह तो निश्चय ही है कि योग कषायका अभाव सम्यग्ज्ञानके विना नहीं हो सकता । क्योंकि किसी कार्यके करनेका जब तक यथार्थ ज्ञान न होगा, तब तक उसका सिद्ध होना असंभव है और

सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन पूर्वक होता है। अर्थात् जब सम्यग्दर्शन होता है तब ही सम्यग्ज्ञान होता है। इसी कारण पूर्वाचार्योंने सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानसहित योग कषायके अभावरूप चारित्रको मोक्षका मार्ग बतलाया है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान ये दोनों ही जीवके भिन्न २ गुण है। जिस प्रकार अंधकारका नाश होनेपर सूर्यकी किरणोंसे समस्त दिशायें एक प्रकारकी निर्मलता धारण करती हैं, उसी प्रकार दर्शनमोहके उपशम होनेपर जीवके एक प्रकारकी निर्मलता होती है, और उसीको सम्यग्दर्शन कहते है। अथवा जैसे कोई मनुष्य मद्य अथवा धतूरेके नशेसे मूर्च्छित हो जाता है। परन्तु कुछ काल पीछे उस नशेके दूर होनेपर उसका चित्त एक प्रकारके उल्लाघ (निरोगता) रूप होता है। उसी प्रकार अनादि कालसे यह जीव दर्शनमोहनीयके हितके विषयमें मूर्च्छितसा हो रहा है। परन्तु कारण विशेषसे दर्शनमोहनीयका उपशम होने पर उस जीवके आत्महितके विषयमें कपाटसे खुल जाते है। उस समय उसके एक प्रकारका जो प्रासाद (नैर्मल्य) प्रगट होता है उसीको सम्यग्दर्शन कहते है। जिसको यह सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया है, वही जीव अपने आत्माका अनुभव कर सकता है। इस अनुभवको स्वानुभूति कहते है। यद्यपि स्वानुभूति ज्ञानका ही परिणाम विशेप है, तथापि वह सम्यग्दर्शनके विना किसी जीवके नहीं होता। इसीलिये किसी २ आचार्यने स्वानुभूतिको ही उपचारसे सम्यग्दर्शन कहा है। श्रद्धा रुचि और प्रतीति ये तीनों ज्ञानके पर्याय है, तत्त्वार्थके सम्मुख बुद्धिको श्रद्धा कहते है, तत्त्वार्थके ग्रहणको

रुचि कहते है और तत्त्वार्थके विश्वासको प्रतीति कहते है। शुभकर्ममें मन वचन कायके व्यापारको आचरण कहते है। इन श्रद्धादिक गुणोंमेंसे किसी जीवके एक, किसीके दो, किसीके तीन और किसीके चारों गुण होते है। जब ये श्रद्धादि गुण स्वानुभूतिसहित होते हैं, तब तो गुणरूप ही होते है; परन्तु जब स्वानुभूतिरहित होते हैं तब वे तदाभास अर्थात् मिथ्यात्वरूप होते है। इसलिये स्वानुभूतिसहित श्रद्धा आदिको उपचारसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

रतनचन्द—भगवन्! आपकी कृपासे मैंने कर्मविषयको ठीक २ जान लिया। अब जैनशासनमें सप्ततत्त्व कौन २ से माने है, और उनका स्वरूप क्या है, यह जाननेकी मेरी उत्कट इच्छा है।

मुनिराज—रतनचन्द! जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व है। इनमेंसे तुम्हें जीव अजीव और बंधका स्वरूप सामान्यतः बतला दिया जा चुका है, शेष चारके विषयमें कहना बाकी है। तौ भी यहापर प्रकरणके सम्बन्धसे सबका ही कह देना उचित होगा। दो प्रकारके हेतुओंका सन्निधान होनेपर उत्पन्न हुए चैतन्यरूप परिणामको उपयोग कहते हैं। और यह उपयोग ही जीवका लक्षण है। इसके दो भेद है, एक दर्शनोपयोग और दूसरा ज्ञानोपयोग। आत्माके प्रतिभासका नाम दर्शन है और परके प्रतिभासका नाम ज्ञान है। ये दर्शनोपयोग तथा ज्ञानोपयोग दोनों ही एक चेतना गुणके पर्याय हैं।

जीवतत्त्वके दो भेद है। मुक्त और संसारी। जो कर्मबंधसे छूट करके स्वाधीन शाश्वत, अविनाशी सुखका अनुभव करते हैं, उन्हें

मुक्त कहते है। और जो दुःखरूप संसारमें परिभ्रमण किया कहते हैं, उन्हें संसारी कहते है। संसारी जीवोंके दो भेद हैं, त्रस और स्थावर। जिनमेंसे त्रस, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ऐसे चार प्रकारके है। पंचेन्द्रियके समनस्क (मनसाहित) और अमनस्क (मनरहित) दो भेद हैं। और समनस्क जीवोंके देव, मनुष्य तिर्यंच और नारकी ये चार भेद है। स्थावर जीवोंके पांच भेद है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति। वनस्पतिके दो भेद है, प्रत्येक और साधारण। जिस वनस्पतिमें एक शरीरका एक स्वामी हो, उसे प्रत्येक और जिसमें एक शरीरके अनेक स्वामी हों, उसे साधारण कहते हैं। पृथ्वी, जल तेज, वायु और साधारण वनस्पतिके वादर और सूक्ष्म ये दो २ भेद हैं। पृथ्वी आदिसे जिनका अवरोध (रुकावट) न हो सके, उन्हें सुक्ष्म कहते है। और जिनका अवरोध हो जावे अर्थात् जो पृथ्वी आदिको पार करके न जा सकें, उन्हें वादर कहते हैं।

चेतनारहित द्रव्योंको अजीव कहते है। उनके पुद्गल, धर्म, अधर्मादि पांच भेद है, जिन्हें छह द्रव्योंके वर्णनमें कर चुके है।

आत्मा और कर्मके परस्पर प्रवेश होनेको बन्ध कहते हैं। कर्मके द्रव्यकर्म और भावकर्म दो भेद है। पुद्गलपिंडको द्रव्यकर्म कहते है। और उस कर्मके सम्बन्धसे उत्पन्न हुए रागादि परिणामोंको भावकर्म कहते है। बन्धके तीन भेद है, । भावबन्ध, द्रव्यबन्ध और उभयबन्ध। रागरूप परिणाम होनेको भावबन्ध, कार्माणवर्गणाके स्कंधोंमें आत्माके साथ बंधनेकी शक्तिको द्रव्यबन्ध और आत्मप्रदेश तथा कर्मरूप हुए पुद्गल प्रदेशोंके परस्पर सम्बन्ध होनेको उभयबंध कहते है।

बन्धके कारणको अस्रव कहते हैं। इसके चार भेद हैं। द्रव्यब-न्धका उपादान कारण, द्रव्यबन्धका निमित्तकारण, भावबन्धका उपा-दानकारण और भावबन्धका निमित्तकारण। जिससे कार्यकी उत्पत्ति होती है अथवा जो कार्यकी उत्पत्तिमें सहायक होता है, उसे कारण कहते है। यह निमित्त और उपादान इस प्रकार दो भेदरूप होता है। जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमें, उसे उपादानकारण कहते हैं। जैसे मिट्टी घड़ेकी उपादानकारण है; क्योंकि वह स्वयं घटरूप हो जाती है। और जो पदार्थ दूसरेकी उत्पत्तिमें सहायक होता है उसे निमित्तकारण कहते हैं। जैसे घड़ेके बननेमें कुम्हारके दंड चक्र आदि कारण है। अभिप्राय यह है कि द्रव्य अनादिकालसे जो अन-न्तपर्यायें धारण करता रहता है, उन पर्यायोंमें पूर्वक्षणवर्ती पर्या-यको उपादानकारण और उत्तरक्षणवर्ती (आगामी) पर्यायको कार्य कहते है। घड़ेकी पूर्वक्षणवर्ती मिट्टी पर्याय उपादानकारण और उत्तरक्षणवर्ती घड़ेकी पर्याय कार्य है।

जिस समय आत्मा और कर्म ये दोनों बन्धके पर्यायको पाते हैं, उससे पहले क्षणमें जो कार्माणवर्गणाओंके स्कन्ध बन्धके सम्मुख थे अर्थात् बँधना चाहते थे, वे द्रव्यबन्धके उपादानकारण और आत्माके रागादि परिणाम द्रव्यबन्धके निमित्तकारण हैं। इसी प्रकार जिस समय आत्मा भावबन्धरूप पर्यायमें परिणत है, उसके पूर्व क्षणमें आत्माके जो कुछ पर्याय है, वे भावबन्धके उपादानकारण और उदय तथा उदीरणा अवस्थाको प्राप्त पूर्वके बँधे हुए कर्म भावबन्धके निमि-त्तकारण है। क्योंकि यह आत्मा उन्हीं कर्मोंके, निमित्तसे रागादि स्वरूप भावबन्ध पर्यायको प्राप्त होता है।

आस्त्रवके रुकनेको संवर कहते है। यह दो प्रकारका है—द्रव्य-संवर और भावसंवर। आते हुए कर्मके रुकनेको द्रव्यसंवर और आत्माके गुप्ति, समिति, धर्म, परिपहजय, तप, अनुप्रेक्षा तथा चारित्ररूप भावोंको भावसंवर कहते हैं। भावसंवर कारण है और द्रव्यसंवर कार्य है। मनवचनकायके योगोंके भलीभांति निग्रहको गुप्ति, प्रमादके रोकनेको समिति, उत्तमक्षमा आदि आत्माके दश स्वभावोंको धर्म, भूख प्यास आदि वावीस परीषहोंके जीतनेको परीपहजय, इच्छाके निरोधको तप, अनित्यादि वारह भावनाओंके चिंतवनको अनुप्रेक्षा और सामायिकादि पांच संयमोंको चारित्र कहते है।

कर्मके एकदेश क्षयको (खिरनेको) निर्जरा कहते हैं। इसके भी दो भेद है, द्रव्यनिर्जरा और भावनिर्जरा। आत्मासे एकदेश कर्मोंके छूट जानेको द्रव्यनिर्जरा और जिन भावोंसे वे कर्म छूटते हैं, उन्हें भावनिर्जरा कहते है। निर्जराके सविपाक और अविपाक ये भी दो भेद हैं। अनादि कालसे जिनका आत्माके साथ वीजवृक्षका सा सम्बन्ध है, उन कर्मोंका अपनी स्थिति पूरी होनेपर फल देकर खिर जानेको सविपाक निर्जरा कहते है। और जो कर्म उदयमें न आये हों, उन्हें तपके वलसे उदयावलीमें आकर खिर जानेको अविपाक-निर्जरा कहते है।

वन्धके कारणोंके अभाव और निर्जराके सद्भावसे समस्त कर्मोंसे मुक्त हो जानेको मोक्ष कहते है। मोक्षके भी दो भेद हैं, द्रव्यमोक्ष और भावमोक्ष। आत्मा तथा कर्मके परस्पर सम्वन्ध छूटनेको द्रव्यमोक्ष और द्रव्यमोक्षके कारणभूत परिणामोंको भावमोक्ष कहते हैं।

समस्त कर्मोंसे रहित होनेपर यह आत्मा अपने उर्द्धगति स्वभावसे ऊपर गमन करके लोकके अन्तमें विराजमान हो जाता है। धर्म द्रव्यका अभाव होनेके कारण उसकी लोकके बाहर गति नहीं होती। और उस मुक्तात्माके रागद्वेषादिकोंका सर्वथा अभाव हो जाता है, इसलिये फिर कर्मबन्ध नहीं होता, और इस कारण चतुर्गतिरूप संसारमें उसका परिभ्रमण नहीं होता। मोक्षमहलमें वह सदा काल अविनाशी अतीन्द्रिय सुखका अनुवभन करता है।

सँप्ततत्त्वका स्वरूप समाप्त हो चुकनेपर उस दिनकी व्याख्यानसभा भी समाप्त की गई।

चौदहवां परिच्छेद।

हीरालाल जौहरी रतनचन्दका इकलौता पुत्र था। जब हीरालाल उत्पन्न हुआ था, तब रतनचन्दकी माता जीवित थी। नातीका जन्म सुन कर उसके आनन्दका पार नहीं रहा था। अपनी एक पड़ोसिन ब्राह्मणीको बहुतसी दानदक्षिणा देकर उसने कहा था, राधा! आज मेरा अँधेरा घर प्रकाशमान हो गया। तुम्हारे सबके पुण्य-प्रतापसे मेरा यह दीपक जगमगाता रहे—मेरी यही लालसा है। अब मै अपने नातीको गोदीमें लिये हुए बड़े आनन्दसे मरूंगी, अब मुझे किसी बातकी अभिलाषा नहीं है।

रतनचन्दकी माता बड़ी भोली और सीधी साधी थी। अपने पुत्रके समान अपनी बहू रामप्यारीपर भी निःसीम प्रेम रखती थी। रामप्यारीके सिरमें जरासा भी दर्द होता था, तो बुढ़िया विकल

हो जाती थी । बीसों वैद्यों और मंत्रवादियोंके घर उसके बुलावा पहुंचते थे और उनके भले होते थे । रामप्यारी बहुत बुद्धिमती स्त्री थी । इसलिये ऐसी जरा २ सी बातोंमें वैद्योंको बुलानेके लिये वह निषेध करती, परन्तु उस बेचारीकी सुनता कौन था? बुढ़ियाके आगे किसीकी भी दाल नहीं गलने पाती थी । आख़िर रामप्यारीने मन ही मन यह निश्चय कर लिया था कि छोटी मोटी तकलीफोंको किसीपर प्रगट ही नहीं करूंगी ।

रामप्यारी एक सुशिक्षित घरकी लड़की थी । इसलिये सम्पूर्ण गृहकार्योंमें दक्ष होनेके सिवाय वह भले प्रकार पढ़ी लिखी भी थी । वह जानती थी कि बालक छोटी अवस्थामें जैसे साँचेमें ढाला जावेगा उसका आगामी जीवन उसी प्रकारका होगा । इसलिये बालक हीरा-लालको वह सदा अपने ही पास रखना चाहती थी, और इस बातसे बड़ी सावधान रहती थी कि उसके हृदयपर बुरे बालकोंके दुर्गुणोंकी छाया न पड़ने पावे । परन्तु रतनचन्दकी भोली माता प्रेमाधिक्यके कारण उसके इस कार्यमें बाधक होती थी । प्रायः वह उसे अपनी गोदमें लेकर दीवानखानेमें जा बैठती थी और मुहल्लेके बुरे भले बालक बालिकाओंको बुलाकर उनके साथ विनोद करती और मोदक बाँटती थी । इस कौतुकसे और क्या हानि हुई, सो तो हम नहीं कह सकते । परन्तु एक दिन दूध पिलानेमें देरी हो जानेके कारण बालक हीरालालने रामप्यारीको तोतले अस्पष्ट अक्षरोंमें एक अश्लील गाली दी थी, जिसे सुनकर बुढ़िया बड़ी प्रसन्न हुई थी ।

हीरालाल जब पांच वर्षका हुआ तब एक दिन रामप्यारीने गुप्तरूप-

से शुभमुहूर्त निकलवाकर विद्यारंभ करा दिया था। खेलके बहानेसे वह प्रतिदिन घंटा आध घंटा उसे कुछ न कुछ बतला दिया करती थी। इससे १०-१५ दिनमें ही हीरालाल वर्णमाला सीख गया था। उस समय तो रतनचन्दकी माके कानों तक यह बात नहीं पहुंची। परन्तु एक दिन किसी खिलाड़ी लड़केके मुंहसे यह बात सुनकर बुढ़िया बड़ी अप्रसन्न हुई। उसने रामप्यारीसे कहा, बहू! तेरे सिरपर तो कलियुग सवार हो गया है। तुझे यह नहीं मालूम है कि छोटी अवस्थामें पढ़ानेसे लड़के कमजोर हो जाते है। अभी ये उनके खेलने खानेके दिन हैं। अभीसे उसके सिरपर यह पढ़नेकी चिन्ताका पत्थर रख दिया जावेगा, तो इसका शरीर कैसे बढ़ेगा? और हमारा हीरा क्या किसी कंगाल-का लड़का है, जो बिना पढ़े भूखों मर जावेगा? उसे किस बातकी कमी है? बैठा २ खावेगा और गुमाश्तोंपर हुक्म किया करेगा। खबरदार! अब यदि मैने कभी पढ़ानेकी बात सुनी, तो तुझसे बोलना छोड दूंगी और रोटी नहीं खाऊंगी! इसपर रामप्यारीने अपनी अक्ति भर बहुत कुछ समझाया कि मै इस तरहसे पढ़ाती हूं कि इसे कुछ परिश्रम न पड़े, खेल ही खेलमें बतलाती रहती हूं; परन्तु बुढ़ियाने एक न सुनी। लाचार मन ही मनमें दुःखी होकर रामप्यारीने उस समय पढ़ाना छोड़ दिया और विचार किया कि पढ़ना नहीं, तो न सही, कुछ नैतिकशिक्षा ही इसे देती रहूंगी; परन्तु उसकी यह इच्छा भी पूर्ण नहीं हुई। थोड़े ही दिनमें उसके एक दूसरा बालक उत्पन्न हुआ और दो तीन दिन जीकर मर गया। साथ ही वह भी बीमार हो गई। रतनचन्दने

बड़े २ वैद्योंसे दवाई कराई, परन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। खाना पीना सब छूट गया, एक मात्र हड्डियोंका पंजर रह गया। रामप्यारी की यह दशा देखकर रतनचन्दको जो कष्ट होता था, उसका वर्णन नहीं हो सकता। उस दुःखका अनुमान वे ही कर सकते हैं, जिनपर कभी ऐसा अवसर आ चुका है। उन्हें उस घरमें जहां कि रामप्यारी का पलंग बिछा था, खड़ा नहीं रहा जाता था और अन्य कहीं जाते थे, तो जी उथल पुथल हुआ जाता था।

एक दिन वृद्धा माता हीरालालको बाहर बहला रही थी, और दूसरे सेवक लोग अपने २ काममें लगे हुए थे, कि रतनचन्दको एकान्तमें पलंगके पास खड़े हुए देखकर रामप्यारीने कठिनताके साथ धीरेसे कहा, "प्राणनाथ! मै आपके समक्ष प्राणत्याग करूंगी, इससे बढ़कर सुखसौभाग्य और मेरा क्या हो सकता है? परंतु मेरे पीछे न जाने हीरालालकी क्या गति होगी? यह चिन्ता मुझे बहुत सताती है। वह छह सात वर्षका हो गया, तौ भी उसके पढ़नेकी ओर किसीका ध्यान नहीं है। अब भी यदि वह न पढ़ा, तो और कब पढ़ेगा? अब मै बहुत समय तक नहीं जीऊंगी। एक बात मैं बहुत दिनसे कहना चाहती हूं, परन्तु कही नहीं जाती। इतना कहते २ रामप्यारीके नेत्रोंसे आसूंके दो बूंद निकल पड़े। रतनचन्दने उन्हें अपने दुपट्टेसे पोंछकर उस भाग्यवतीके मुंहपर हाथ फेरा और कठिनाईसे हृदयको सम्हालकर कहा, प्रिये! कहो, क्या कहती हो? रामप्यारीने उस समय रतनचन्दके मुखका एक अपूर्व भावसे निरिक्षण करते हुए कहा, जीवनसर्वस्व! कहीं इससे मेरे हृदयको

छोटा नहीं समझ लेना, वह बहुत विस्तृत है। परन्तु संसारकी अवस्थाका विचार करके कहना पड़ता है कि अब तुम दूसरा विवाह नहीं करना। हीरालालकी कुशल चाहना हो, तो रामप्यारीके नाथ! अब किसी दूसरीके नाथ नहीं बनना। रामप्यारीसे और अधिक न बोला गया, गला भर आया। आंखोंसे आसुओंकी धारा बह निकली। तब रतनचन्दने रामप्यारीका सिर अपनी गोदमें रख लिया और मुंहपर हाथ फेरते हुए रोते २ कहा, प्राणवल्लभे! ऐसा ही होगा। तुम्हारी सम्मतिका पालन करनेके लिये मै सर्वतोभावसे तयार हूं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं समझना। रतनचन्द रामप्यारीको छोड़कर अब किसीको प्यारी कहके संबोधन नहीं करेगा। यह सुनकर रामप्यारीके क्षीणमुखपर एक प्रकारकी आभासी झलक आई। एक वार पतिकी ओर लालायित नेत्रोंसे देखकर उसने कृतज्ञता प्रगट की। उसी समय वृद्धामाताके आ जानेसे रतनचन्द पलंगपरसे उतर पड़ा और और बाहर चला गया।

उसी रातको रामप्यारीकी अस्वस्थ्यता अधिक बढ़ गई। और प्रातःकाल होनेके पहले अपने पति और पंचपरमेष्ठीका नाम स्मरण करते हुए उसने प्राणोत्सर्ग किया। चारों ओर हाहाकार मच गया। उस समय वृद्धा बेहोश होकर गिर पड़ी। रतनचन्दको घर बाहर अंधकार ही अधकार दीखन लगा।

धीरे २ रामप्यारीको मरे हुए चार वर्ष बीत गये। रतनचन्द बहुत दिनसे दूकानादिके कार्योंसे उदासीन हो गये थे, वह भी करने लगे। मित्र दोस्तोंमें उठने बैठने लगे, हँसी मज़ाक करने लगे।

सारांश यह कि सांसारिक कार्योंमें सर्व प्रकारसे पहलेकी नाईं अस्तव्य-स्त रहने लगे, परन्तु रामप्यारीको नहीं भूले। हीरालालके मुँहकी ओर देखते ही उन्हें उसका स्मरण हो आता था। वृद्धा माता प्रतिदिन समझाती थीं, नगरके प्रतिष्ठित लोगोंको ला लाकर समझानेको कहती थी, जातिकी विवाह योग्य कन्याओंके रूप गुणोंकी अवसर पाकर स्वयं प्रशंसा करती थी और दूसरी बराबरकी स्त्रियोंसेकराती थी। परन्तु रतनचन्द दूसरा विवाह करना स्वीकार नहीं करते थे। रामप्यारीके कहे हुए वचन उनके हृदयपर अच्छी तरहसे अंकित हो रहे थे। उस समय उन्हें भूल जाना उनकी शक्तिसे बाहर था।

हीरालाल अपनी दादीके लाड़ प्यारमें धनवानोंके जैसे लड़के हुआ करते है, वैसा ही हो गया। रामप्यारीकी अंकित की हुई थोड़े बहुत गुणोंकी छाया जो कुछ उसके हृदयपर थी, वह भी साफ हो गई। खेलकूद और तत्सम्बन्धी पदार्थोंके एकत्र करनेके सिवाय उसे कुछ भी नहीं रुचता था। और रतनचन्दको अपनी अन्यमनस्कता तथा प्रपंचोंके मारे इतना अवकाश नहीं मिलता था कि हीरा-लालकी देखरेख रख सके, अथवा उसके विद्याभ्यासमें सहायक हो। नगरीकी एक पाठशालामें नाम लिखाकर ही वह निश्चिन्त हो चुके थे कि हीरालाल पढ़ता है। परन्तु हीरालाल बुरे लड़कोंके दुर्गुण सीखनेके सिवाय और कुछ नहीं करता था। पाठशालाके अध्या-पकका विद्यार्थियोंको प्रायः भय रहा करता है, परन्तु हीरालालको वह भी नहीं था। क्योंकि उसकी दादीके द्वारा अध्यापक महाश-यको बहुत कुछ प्राप्ति हुआ करती थी। दादी हाथ जोड़के कह दिया

करती थी कि पंडितजी! मेरे हीरालालको मत मारियो—उसे प्यारसे पढ़ा दिया कीजियो। सारांश यह कि हीरालालके पठनपाठनकी व्यवस्था आजकलके धनवानोंके लड़कोंसे बहुत कुछ मिलती जुलती थी।

खेटपुरमें एक धनपाल नामके सेठसे रतनचन्दकी गाढ़ मित्रता थी। रतनचन्दको अपने हृदयपर भी जितना विश्वास नहीं था, उतना अपने मित्रपर था। धनपाल उमरमें कुछ बड़े थे, इसलिये रतनचन्द उन्हें बहुत मानते थे, और उनकी दी हुई सम्मतिका बहुत आदर करते थे। बुढ़ियाने अपने उपायोंको निफल देखकर अन्तमें इन्हीं धनपालसे अपनी इच्छा प्रगट करनेका मनसूबा किया और एक आदमी भेजकर एक दिन उन्हें बुला भेजा।

धनपालसे वृद्धाने कहा, बेटा! तुझे इसलिये बुलवाया है कि रतनचन्दको विवाह करनेके लिये राजी कर ले। मैंने बहुत उपाय किये, परन्तु वह नहीं मानता है। भला तूं ही कह, स्त्रीके विना घरकी क्या शोभा है? भला, मेरे किस बातकी कमी है, जो विवाह न करूं। देख न, नगरमें लोगोंकी चरचाके मारे कान नहीं दिये जाते है। मुझसे तो मुंह भी नहीं दिखलाया जाता है। और न अब इस घरमें खड़ा रहा जाता है। यदि तेरे कहनेसे भी वह नहीं मानेगा, तो देख लेना मै आत्महत्या कर लूंगी। इसके बाद बुढ़िया रोने लगी। धनपालने जैसे तैसे समझा बुझाकर उसे उस समय शान्त किया और उसकी इच्छामें सहमत होकर पीछा छुड़ाया।

इसके पश्चात् धनपालकी रतनचन्दसे भेंट हुई। एकान्तमें बहुत समय तक दोनोंमें शास्त्रार्थ होता रहा, और अन्तमें धनपालके पक्षकी इस प्रकारसे विजय हुई। उन्होंने कहा, तुम्हारी अवस्था विवाहके योग्य अर्थात् लोक और शास्त्र दोनोंकी मर्यादाके भीतर है। वृद्धा माताका अतिशय आग्रह है। सिवाय इसके तुम्हारे यहां कोई दूसरी घरद्वारकी सम्हालनेवाली भी तो कोई नहीं है। माके जीवनका ठिकाना ही क्या है? न जाने कब कूच कर दें। फिर भला तुम ही कहो, हीरालालका कौन होगा? और तुम क्या समझते हो कि जैसी तुम्हारी परिणति आज है, वैसी ही सदा बनी रहेगी। नहीं ऐसा स्वप्नमें भी ख्याल न करो। क्योंकि संसारबद्ध पुरुषके समय समयपर भाव बदला करते है। बाह्य कारणोंके मिलनेसे कब कैसे परिणाम होंगे, इसका निश्चय नहीं है। गृहवासमें रहकर विषयवासनाओंको दबाये रखना सबका कार्य नहीं है। नीतिमें कहा है,—"बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वानमपिकर्षति" अर्थात् बलवान् इन्द्रियोंके समूहको भी आकर्षित करते है। इसलिये विचार करो कि अभी तुम इस प्रकारसे वैरागी बने रहे और पीछे अवस्था पकजानेपर किसी कारणसे तुम्हें विवाह करनेके लिये बाध्य होना पड़े, तो संसारमें कितना परिहास होगा? अतएव अच्छा हो, यदि तुम इस सोहती अवस्थामें ही ससारके एक ऋणसे मुक्त हो जाओ। और भी जहां तक मै जानता हूं, यदि योग्य अवस्थामें एक स्त्रीके मृत्यु हो जानेपर दूसरा विवाह करना हो, तो कुछ अनुचित कर्म नहीं है। गृहस्थधर्मका निर्वाह बिना स्त्रीके नहीं हो सकता। जिस घरमें स्त्री नहीं

है, उस घरमें शांति नहीं है, सुख नहीं है, विश्राम नहीं है, और सच पूछो, तो उस घरमें लक्ष्मीका निवास ही नहीं हो सकता है, जैसा कि लोक समझते हैं। यह स्त्रीरत्न विषयवासनाकी निवृत्तिका उपकरणमात्र नहीं है, किन्तु परम्परा मोक्षस्वरूप गृहस्थमार्गका पथदर्शक दीपक है। संसारमें रहकर जो इस रत्नकी अवहेलना करते हैं, उन्हें प्रायः सुखशान्ति मिलती ही नहीं है। स्त्रीके समान सुदक्ष मंत्री, स्त्रीके समान सच्चा स्वामिभक्त सेवक, स्त्रीके समान सुस्वादुभोजन करानेवाला पाचक, स्त्रीके समान परिश्रमनिवारक दिव्यं-मंत्र, स्त्रीकंठके समान जगन्मनोहर वाद्य, स्त्रीके प्रसन्नमुखके समान चिन्ताखेद नाशक नन्दनवन, और स्त्रीके रमणीय समागमके समान स्वर्ग, संसारमें दूसरा नहीं है ! नहीं है !! इसलिये यदि तुम स्त्रीका परिग्रह नहीं करते हो, तो इस संसारको ही क्यों नहीं छोड़ देते ? और यदि संसारको छोड़नेकी तुम्हारी शक्ति नहीं है, तो भाई ! मेरा कहना मान लो, और अपनी माताकी इच्छा पूर्ण करनेमें अब विलम्ब मत करो। रतनचन्द इसका कुछ उत्तर देना ही चाह थे कि इतनेमें एक आदमी घवड़ाया हुआ आया और बोला, सेठजी नेमिचन्द सेठने आपको इसी समय बुलाया है। उनकी अवस्था बहुत खराब हो रही है। यह सुनते ही रतनचन्द और धनपाल दोनोंके दोनों उस आदमीसे कुछ पूंछतांछ करते हुए नेमिचन्द सेठके घर जा पहुंचे।

पन्द्रहवां परिच्छेद।

नेमिचन्द कंचनपुरके एक साधारण श्रेणीके वणिक् है। वे बहुत धनवान् तो नहीं हैं, परन्तु सत्यनिष्ठाके कारण उनकी प्रतिष्ठा वहांके बड़े २ धनवानोंसे किसी प्रकार कम नहीं है। इस समय वे मृत्युशय्यापर पड़े हुए हैं। उनकी एक मात्र कन्या रामकुमारी उनके सिरानेके पास उदासमुख बैठी है। उसकी अवस्था इस समय अनुमान १३ वर्षके होगी। यों तो वह वैसे ही सुरूपवती थी, परन्तु इस समय यौवनके प्रारंभकी आभासे उसका शरीर बहुत ही मनोहर हो गया है। जो एक बार उसे देख लेता है वह फिर भी उसे देखना चाहता है। उसके प्रत्येक अंगकी शोभाका वर्णन करके हम अपने पाठकोंको चलचित्त नहीं बनाना चाहते और इतना ही कहकर हम आगे चलते है कि वह सुन्दर थी। जिस समय रामकुमारी तीन चार वर्षकी थी, उसी समय उसकी माताने उससे विदा मांग ली थी। पिताने बड़ी कठिनाईसे उसका पालन किया है। दूसरी कोई सन्तान न होनेके कारण नेमिचन्दने उसे ही अपने आंखोंकी तारा बना रक्खी थी। नेमिचन्दकी उमर इस समय ६० वर्षके अनुमान है। आज वे अपनी दुलारी रामकुमारीको अकेली छोड़कर जानेकी तयारी कर रहे है। इस समय उन्हें अपने मरनेका उतना दुःख नहीं है, जितना रामकुमारीको कुमारी छोड़का जानेका है। कई वर्षसे वे उसके विवाहका विचार करते थे, परन्तु जिस समय उन्हें इस बातका स्मरण होता था कि हमारी दुलारी बेटी विवाह होते ही हमसे अलग हो जावेगी। उस समय उसके सब विचार आंसुओंकेद्वारा बह जाते

थे। वे नहीं जानते थे कि मेरा जीवन कितना बड़ा है। इसी भूलके कारण आज नेमिचन्दका हृदय उत्तप्त उद्विग्न हो रहा है, शरीरकी शक्ति अधिकाधिक क्षीण होती जाती है। न जाने कितने स्वास बाकी रह गये है, यह समझ करके और अधिक विचारपूर्वक निश्चय करनेका अवसर न देखकर उन्होंने रतनचन्दको बुलाया है। रतनचन्दके चरित्रोंको वे बालकपनसे जानते है और इस कारण उसपर प्रीति भी रखते है।

नेमिचन्दके घर रतनचन्द प्रायः आया जाया करते थे, और जरूरत होनेपर रामकुमारीसे बातचीत भी करते थे। रामकुमारी भी उनके साथ बार्तालाप करनेमें कुछ संकोच नहीं करती थी। परन्तु आज न जाने क्यों रतनचन्दके आते ही वह वहांसे भाग गई! बहुत देरसे अपने पिताकी चिन्ताव्यग्रतापर विचार करते २ शायद उसने इसी तत्त्वका शोध किया था।

रतनचन्द और धनपालने आते ही शरीर कुशलता पूछी। मुमूर्ष नेमिचन्द्रने एक वार रतनचन्दको सिरसे पैर तक देखा, और थोड़ी देर तक नेत्र बन्द करके कुछ बिचार किया। पश्चात् बहुत धीमी आवाजसे कहा, रतनचन्द! मेरी यह अन्तिम दशा है। अच्छा हुआ जो तुम आ गये, यह कहकर नेमिचन्दने सिरहानेके पास रामकुमारीको न देखकर पूछा, दुलारी कहा चली गई? रामकुमारी पास ही दीवालकी ओटमें खड़ी थी। उसने पिताकी आवाज सुन ली, परन्तु आई नहीं। तब रतनचन्द स्वयं उसका नामोच्चारण करते हुए बुलालानेको उठे। बड़ी मुश्किल हुई। रामकुमारीने देखा, नहीं जाऊंगी तो अब हाथ

पकड़ा जावेगा। इसलिये तत्काल ही लज्जित होती हुई नीची दृष्टि किये हुए पिताके समीप आ खड़ी हुई। एक ओर उसके आगे पिताकी मृत्युके पश्चात्का वियोग-विपत्तिका दृश्य नाचता था और दूसरी ओर एक नवीन विचारकी उथलपुथल उसके हृदयको अस्थिर बना रही थी। पिताकी मुमूर्षु मूर्तिको देखकर उस समय उसके नेत्रोंमें आंसू भर आये। वह गद्गद् कंठसे बोली, पिताजी! क्या आज्ञा है?

रतनचन्द और धनपाल पलंगके पास ही पड़ी हुई कुर्सियोंपर बैठे थे। उनमेंसे रतनचन्दकी कुर्सी सिरानेकी ओर थी और धनपालकी कुर्सी उसीसे लगी हुई परन्तु दाहिनी ओर थी। नेमिचन्द का मस्तक एक तकियेके सहारे कुछ ऊंचा हो रहा था। यद्यपि वे चाहते थे कि मै थोड़े समयके लिये टिकके बैठ जाऊं, परन्तु अशक्तता बहुत बढ़ गई थी। मस्तक ही बड़ी कठिनतासे तकियेके सहारे रह सकता था। अपनी प्यारी बेटीके मुँहसे " क्या आज्ञा है?" यह प्रश्न सुनकर उन्होंने कहा, जरा मुझे अपना बायॉ हाथ तो बतला। उस समय रामकुमारीका शरीर कंटकित हो गया। न जाने क्यों डरते २ उसने अपना हाथ आगेको बढ़ाया। उसी समय नेमिचन्दने कहा, रतनचन्द! तुम मुझे सदासे मानते आये हो। क्या आज भी मेरी बात मानकर तुम मुझे सुखी कर सकते हो? " कहिये, क्या बात है? मै उसे माननेके लिये सब प्रकारसे तयार हूं।" इस प्रकार कहते हुए रतनचन्द कुर्सीसे उठकर बात सुननेकी उत्कंठासे आगेकी ओर झुके। उसी समय नेमिचन्दने रामकुमारीका हाथ पकड़के रतनचन्दके हाथमें दे दिया और कहा,

"बस, इस कन्याका पाणिग्रहण करो, यही मेरी अन्तिम वासना है। मुझे इसीसे सीमाधिक सुख प्राप्त होगा। मै अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी भी तुम्हें ही बनाता हूं।"

रतनचन्द अवाक्। एक क्षणभर पहले जिसका स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था, वह बात कार्यमें परिणत होनेके सम्मुख हो गई! जिसका कभी विचार ही नहीं किया, उसका उत्तर दें, तो क्या दें? और ऐसे महत्त्वके विपयका जिससे जीवनके सुख दुःखोंका सारा फैसला होता है। क्या इतनी जल्दी विचार करके उत्तर दिया जाना संभव है? बड़ा ही कठिन प्रश्न था। मृत्युशय्यापर पड़े हुए वृद्ध पुरुषकी आज्ञाका उल्लंघन करूं, अथवा स्वर्गीया रामप्यारीको हारे हुए वचनोंकी अवहेलना करूं। लज्जावनता सुन्दरीका सुकोमल कर-पल्लव छोड़ दूं, अथवा पतिप्राणा साध्वीका दिया हुआ व्रत तोड़ दूं। इस विकट द्वन्दयुद्धमें पड़कर रतनचन्द चकित स्तंभित हो रहा। अपना कर्तव्य क्या है, यह विचारनेकी शक्ति ही उसमें न रही। मूर्तिमंत पापाणके समान वह खड़का खड़ा रहा गया। उसके दाहिने हाथमें रामकुमारीका दाहिना हाथ ज्योंका त्यों थमा हुआ था।

धनपाल इस अपूर्व दृश्यको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। वह "एवमस्तु, एवमस्तु" कहकर उठ खड़ा हुआ। और रतनचन्दकी समाधि भंग करके उसने कहा, वाहजी! तुमने भी खूब ध्यान लगाया अब उस बेचारीका हाथ छोड़ोगे भी, या यों ही खड़े रहोगे? लज्जा आती हो, तो उत्तर देनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि एक तो इसका कुछ उत्तर ही नहीं है; और जो है, वह इतनी

देर तक मौन धारण करके प्रगट भी तो कर चुक हो ! क्योंकि "मौनं सम्मतिलक्षणं" कहा है। इसके पश्चात् धनपालने अपना लक्ष्य बदल कर नेमिचन्दसे कहा, आपने बहुत उत्तम विचार किया और यही आपका कर्तव्य था। रतनचन्दजीकी ओरसे मैं इस सम्बन्धको स्वीकार करता हूं। इनकी माता भी इस सम्बन्धको बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार करेंगी, आप निश्चिन्त होकर शांतिलाभ कीजिये। नेमिचन्दने यह सुनकर एक बार रतनचन्द और रामकुमारीकी ओर देखकर नेत्र बन्द कर लिये और फिर नहीं खोले।

नेमिचन्द्रकी अन्त क्रिया की गई। रामकुमारीने कई दिन तक पितृवियोगका शोक मनाया। और कुछ दिन पीछे रतनचन्द पुनर्विवाहके बंधनसे जकड़ दिये गये। उनकी माता नवावधूको पाकर आनन्दमें मग्न हो गई। हीरालालको उसके साथके खिलाड़ी लड़के "मैया नई पुराना बाप, हीरा बेटा सूता कात" आदि तुकबन्दियां बना बनाकर चिढ़ाने लगे।

जिस रातको रतनचन्दका रामकुवारीके साथ प्रथम समागम हुआ। उसी रातके पिछले पहरमें उन्होंने स्वप्नमें देखा कि एक दिव्यविमान धीरे २ आकाशसे नीचे उतरा है। उसमें बैठी हुई एक त्रैलोक्यमोहनी सुन्दरी परिहासपूर्वक कहती है, "रामप्यारीके नाथ! अन्तमें तुम प्रतिज्ञाका पालन न कर सके! और एक नवमुग्धाके नाथ बन गये। कहते थे, संसारमें अब किसीसे प्यारी नहीं कहूंगा; परन्तु वह भी भूल गये। सच तो कहो, आज तुमने कितनी वार "प्यारी! प्राणप्यारी!" मंत्रका जाप्य किया है। अस्तु क्या चिन्ता है।

कुछ दिन इस मंत्रका फल भी अनुभव करके देख लो कि कितनी शान्ति मिलती है। अन्तमें तो तुम मेरे ही होओगे। एक दिन इसी दिव्यविमानमें मै तुम्हारे साथ बिहार करूंगी। पतिसेवाका फल मुझे अवश्य मिलेगा। कृत्रिम प्रेम थोड़े ही दिन टिकता है, परन्तु अकृत्रिम अगाध प्रेम अन्त तक एक रूपमें स्थिर रहता है।" इतना कहकर वह अप्सरा वहांसे अन्तर्ध्यान हो गई। रतनचन्दको पीछे२ मान हुआ कि वह उनकी पतिप्राणा साध्वी रामप्यारी थी।

रतनचन्दका विवाह समाप्त होते ही बुढ़िया माताने हीरालालके विवाहका सूत्रपात किया। और आखिर दूसरे वर्ष वह भी "चतुर्भुज बाना दिया गया। उस समय उसकी अवस्था १२ वर्षकी थी। अब यह कहनेकी जरूरत नहीं रही कि वह जो कुछ थोड़ा बहुत विद्याभ्यास करता था, उसकी भी इतिश्री यहीं हो गई। इधर पौत्रवधूका मुख देखकर कुछ दिनमें बुढ़िया दादी चल वसी। रतनचन्द अपनी जननीके अकृत्रिम स्नेहका स्मरण करके बहुत दुःखी हुए।

बस, रतनचन्द और हीरालालकी पूर्व कथाका सार यही है। यहां इसे प्रगट करना हमने इसलिये उचित समझा कि पाठकगण इस बातका विचार कर सकें कि मनुष्यका चारित्रगठन कब और कैसे होता है, तथा उसका परिपाक कब और किस रूपमें होता है। इस परिचयसे और भी अनेक बातोंकी शिक्षा मिलनेकी सभावना है।

सोलहवां परिच्छेद।

तीसरे दिन मुनिपरिषत्के एकत्र होनेपर रतनचन्दने विनयपूर्वक प्रश्न किया कि—महाराज! आज कृपा करके यह बतलाइये कि

मोक्षमार्गके पूर्ण होनेका क्रम क्या है ? यह सुनकर आचार्य भगवान्‌ने कहा, रतनचन्द्र ! आजका तुम्हारा प्रश्न बहुत ही अच्छा हुआ । इसके उत्तरको सुनकर तुम्हें बहुत समाधान तथा संतोष होगा । जैनमार्गका सच्चा गौरव इसी विषयके सुननेसे प्रगट होगा ।

कारणके दो भेद हैं, एक समर्थ कारण और दूसरा असमर्थ कारण । सहकारी समस्त सामग्रीके सद्भावपूर्वक सम्पूर्ण प्रतिवन्धकोंके अभावको समर्थ कारण कहते है, और भिन्न २ सहकारी सामग्रीको असमर्थ कारण कहते है । कार्यकी सिद्धि असमर्थ कारणसे नहीं होती, किन्तु समर्थ कारणके सद्भाव होते ही हो जाती है । मोक्षका समर्थ कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रकी एकत्रता तथा पूर्णता है । उसके होते ही तत्काल मोक्ष होता है । परन्तु इन तीनोंकी एकत्रता पूर्णता युगपत् नहीं होती—क्रमपूर्वक होती है । तुम्हारा प्रश्न इसी क्रमके विषयमें है । अच्छा तो मैं अब इसके उत्तरका प्रारंभ करता हूं ।

अनादिकालसे चतुर्गतिमें परिभ्रमण करते हुए जीवोंमेंसे जिस जीवका अर्धपुद्गलपरावर्तन प्रमाण संसारकाल शेष रहता है, वह जीव सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका पात्र होता है । क्षयोपशम, देशना, विशुद्धि, प्रायोगिक तथा करण इन पांच लब्धियोंका सन्निधान होते ही सम्यग्दर्शनके प्रतिपक्षी मिथ्यात्व (दर्शनमोह) तथा अनन्तानुवन्धी चार कषाय इन पांच प्रकृतियोंका उपशम होता है । उस समय आत्मामें जो सम्यग्दर्शक परिणाम प्रगट होता है, वह प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन है । इस सम्यग्दर्शनके लाभसे आत्मामें जो विशुद्ध परिणाम

होते हैं, उनसे मिथ्यात्व प्रकृतिके तीन खंड हो जाते हैं । इससे पहले अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके दर्शन मोहनीयकर्मकी एक मिथ्यात्व प्रकृति ही थी। उक्त तीन खंडोंमेंसे एक खंडको सम्यक्त्वप्रकृति कहते है। विशुद्ध परिणामोंके बलसे इन परमाणुओंमें अनुभागशक्ति इतनी क्षीण हो जाती है कि वे सम्यक्त्वका निर्मूल घात तो नहीं कर सकते, परन्तु शङ्का आदिक मल उत्पन्न करते है। दूसरे खण्डका नाम मिश्रप्रकृति है । इसके परमाणुओंका अनुभाग ईसे प्रकार क्षीणाक्षीण हो जाता है कि इसके उदयसे आत्मामें मिश्रित दही गुड़के स्वादकी तरह सम्यक्त्व तथा मिथ्या-त्वरूप जुदे जुदे परिणाम नहीं होते, किन्तु मिश्रित परिणाम होते हैं। तीसरा खण्ड मिथ्यात्व प्रकृति स्वरूप ही है। अब इस जीवके सम्यग्दर्शनके प्रतिपक्षभूत दर्शनमोहकी प्रकृति तीन तथा चारित्रमोहकी अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्टय इस प्रकार सात प्रकृति हुई। इन सात प्रकृतियोंमेंसे यदि मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय हो जाय, तो यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको छोड़कर मिथ्यादृष्टि संज्ञक प्रथमगुणस्थानवर्ती हो जाता है। यदि मिथ्यात्वका उदय न हो और अनन्तानुबन्धियों मेंसे किसी एकका उदय हो जाय, तो अनन्तानुबन्धीके उदयसे स्वानुभूतिरूप स्वरूपाचरणका घात हो जाता है। स्वरूपाचरण और सम्यग्दर्शनका अविनाभाव होनेसे स्वरूपाचरणके अभावसे प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन भी छूट जाता है। यहांपर मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय न होनेसे मिथ्यात्व भी नहीं है, तथा अनन्तानुबन्धीका उदय होनेसे सम्यग्दर्शन भी छूट गया, इसलिये इस जीवकी इस अवस्थाको **सासादनगुणस्थान** कहते है। जिस जीवके मिश्रप्रकृतिका उदय

हो जाता है, वह मिश्रपरिणामोंका अनुभव करनेसे तीसरा मिश्र गुण-स्थानवर्ती कहलाता है। और जिस जीवके सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होता है, उसके दर्शनमोहका क्षयोपशम होनेसे क्षयोपशम अथवा वेदकसम्यक्त्व कहा जाता है। यही वेदकसम्यग्दृष्टी जीव केवली अथवा श्रुतकेवलीके पाद मूलमें अनन्तानुवन्धीका विसंयोजन (अ-प्रत्याख्यानादि बारह प्रकृतिरूप परिणमावना) कर दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त होता है। प्रथमोपशमसम्यक्त्व, क्षयोपशमिक तथा क्षायिक ये तीनों ही सम्य-क्त्वसहित जीव चतुर्थ गुणस्थानवर्ती कहलाते है। चौथे गुणस्थानके ऊपर सम्यग्दृष्टि जीव ही होते है। तथा सम्यग्दर्शनके सद्भावसे ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान हो जाता है। यहां इतना विशेष है कि प्रथमो-पशम तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थानसे सातवें गुणस्थान पर्यन्त ही होते है। और क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्ति चौथे पांचवें छट्ठे सातवें इनमेंसे किसी एकमें होती है।

सम्यग्दर्शन गृहण करनेके पश्चात् कोई जीव प्रत्याख्यानावरण कषायके उदयसे हिंसादिक पांच पापोंका सर्वथा त्याग करनेमें अस-मर्थ होकर उनका एक देशत्याग करके श्रावकके व्रतोंका धारण करता हुआ देशविरत संज्ञक पंचम गुणस्थानवर्त्ती होता है। तथा जिस जीवके प्रत्याख्यानावरण कषायका उपशम हो जाता है और संज्वलन और नोकषायरूप चारित्रमोहनीय[1] कर्मका मंद उदय

---

१ चारित्रमोहनीयकर्मके २५ भेद हैं। जिनमेंसे अनतानुवंधी क्रोध मान माया लोभ स्वरूपाचरण चारित्रके घातक हैं। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादिक ४ देश चारित्रके घातक हैं। प्रत्याख्यानावरण क्रोधादिक ४ सकलचारित्रके घातक है। सज्वलन क्रोधादिक ४ तथा हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्री पुरुष नपुंसक वेद ९ सब मिलकर १३ यथाख्यातचरित्रके घातक हैं।

होता है, वह चौथे अथवा पांचवें गुणस्थानको त्याग कर हिंसादिक पंचपापोंको सर्वथा छोड़ अप्रमत्त संज्ञक सातवें गुणस्थानको धारण करता है। पश्चात् संज्वलन तथा नोकषायके तीव्र उदयसे विकथादिक प्रमादोंको प्राप्त होकर प्रमत्त संज्ञक छठे गुणस्थानमें पदार्पण करता है। छट्ठे और सातवें इन दोनों ही गुणस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है। और इन दोनों ही गुणस्थानोंको यह जीव अनेक बार छोड़ता तथा ग्रहण करता है। जब तक सातवें गुणस्थानमेंसे यह जीव छट्ठे गुणस्थानको जाया करता है, तब तक उस सातवें गुणस्थानको **स्वस्थानअप्रमत्त** कहते है। और जब यह जीव श्रेणी चढ़नेको सन्मुख होता है, तब इस गुणस्थानको **सातिशयअप्रमत्त** कहते है। श्रेणी शब्दका अर्थ नसेनी है। यहां उपमार्थमें श्रेणी शब्दका ग्रहण है। अर्थात् मोक्षरूपी महलके शिखरपर चढ़नेके लिये जो नसेनीका काम देवे, उसे श्रेणी कहते है। अष्टकर्मोंका नाश किये विना मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। और आठों कर्मोंका सरदार मोहनीयकर्म है। मोहनीय कर्मका नाश किये विना शेष सात कर्मोंका नाश नहीं होता। इसलिये सबसे पहले मोहनीय कर्म नाश किया जाता है। इस मोहनीय कर्मके २८ भेद है। जिनमेंसे दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृति--और चारित्रमोहनीयकी अनंतानुबंधी क्रोधादिक चार इस प्रकार ७ प्रकृति सम्यग्दर्शनको घात करती है। शेष चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृति चारित्रकी घातक है। अनंतानुबन्धीचतुष्क मुख्य तथा स्वरूपाचरण चारित्रका घातक है। परन्तु उपचारसे स्वरूपाचरणचारित्रके अविनाभावी सम्यग्दर्शनका

घातक है। प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टी श्रेणी चढ़नेका अधिकारी नहीं है, और वेदक सम्यग्दृष्टी श्रेणी चढ़नेसे पहले अनंतानुबंधी चतुष्कका विसंयोजन करके दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टी होता है। अथवा उन तीनोंका उपशम करके द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी होता है। श्रेणीके दो भेद हैं, एक उपशमन श्रेणी, और दूसरी क्षपक श्रेणी। जिसमें चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंका उपशम किया जाय, उसको उपशम श्रेणी कहते हैं। और जिसमें उक्त २१ प्रकृतियोंका क्षय किया जाय, उसको क्षपक श्रेणी कहते हैं। श्रेणीका प्रारंभ आठवें गुणस्थानसे होता है। सातिशय अप्रमत्तमें श्रेणीके सम्मुख अवस्था है। दशवें गुणस्थानके अन्तमें उपशम श्रेणीवाला २१ प्रकृतियोंका उपशम कर चुकता है और क्षपकश्रेणीवाला क्षय कर चुकता है। इसके पश्चात् चारित्रमोहनीयकर्मकी उपशांत अवस्थाको भोगनेवाले जीवको **उपशांतकषाय** संज्ञक ग्यारहवें गुणस्थानका धारक कहते है। और शांत अवस्थाको भोगनेवाले जीवको **क्षीणमोह** संज्ञक बारहवें गुणस्थानका धारक कहते हैं। इन दोनों गुणस्थानवाले जीवोंकी विशुद्धतामें कुछ भी अंतर नहीं है। केवल इतना विशेष है कि ग्यारहवें गुणस्थानवाला जीव अपने स्थानसे च्युत होकर नीचेके गुणस्थानोंमें आता है और बारहवें गुणस्थानवाला अपने स्थानसे नीचे न गिरकर ऊंचा चढ़ता हुआ नियमसे मोक्षको जाता है। ये दोनों ही गुणस्थानवाले समस्त कषायोंके अभावसे वीतराग छद्मस्थ कहलाते है। क्षायिकसम्यग्दृष्टी जीव उपशम और क्षपक दोनों ही

श्रेणी चढ़ सकता है, किंतु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी केवल उपशम श्रेणी ही चढ़ सकता है—क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ता । क्षपकश्रेणी चढ़नेका अधिकार केवल क्षायिकसम्यग्दृष्टीको ही है । चारित्रमोहनीय की २१ प्रकृतियोंको उपशमावने तथा क्षपावनेके लिये यह जीव अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तकरण संज्ञक तीन करणोंको करता है । उनमेंसे अधःप्रवृत्तकरण सातवें, अपूर्वकरण आठवें और अनिवृत्तकरण नववें गुणस्थानमें होता है । करण नाम परिणामोंका है । इन परिणामोंमें प्रति समय अनंतगुणी विशुद्धता होती जाती है, जिसके बलसे कर्मोंका उपशम तथा क्षय और स्थिति खंडन तथा अनुभागखंडन होते है । इन तीनों करणोंका काल यद्यपि सामान्यालापसे अन्तर्मुहूर्त मात्र है, तथापि अधःकरणके कालके संख्यातवें भाग अपूर्वकरणका काल है । और अपूर्वकरणके कालके संख्यातवें भाग अनिवृत्तकरणका काल है । अधःकरणके परिणाम असंख्यातलोकप्रमाण हैं । अपूर्वकरणके परिणाम अधःकरणके परिणामोंसे असंख्यातलोकगुणित हैं और अनिवृत्तकरणके परिणामोंकी संख्या उसके कालके समयोंके समान है । अर्थात् अनिवृत्तकरणके कालके जितने समय हैं, उतने ही उसके परिणाम है । इन सबका खुलासा अंक संदृष्टिद्वारा कहते हैं:—

कल्पना करो कि अधःकरणके कालके समयोंका प्रमाण १६ अपूर्वकरणके कालके समयोंका प्रमाण ८ और अनिवृत्तकरणके कालके समयोंका प्रमाण ४ है । अधःकरणके परिणामोंकी संख्या ३०७२, अपूर्वकरणके परिणामोंकी संख्या ४०९६, और अनि-

वृत्तकरणके परिणामोंकी संख्या ४ है। एक समयमें एक जीवके एक परिणाम होता है, इसलिये एक जीव अधःकरणके १६ समयोंमें १६ परिणामोंको ही धारण कर सकता है। अधःकरणके परिणाम जो १६ से अधिक कहे हैं वे नाना जीवोंकी अपेक्षासे कहे है। यहां इतना विशेष है कि अधःकरणके १६ समयोंमेंसे प्रथम समयमें यदि कोई जीव अधःकरण मांडेगा, तो उसके अधःकरणके समस्त परिणामोंमेंसे पहले १६२ परिणामोंमेंसे कोई एक परिणाम होगा। अर्थात् तीन कालमें चाहे जब, चाहे जो, जब कभी, अधःकरण मांड़ेगा, तो उसके पहले समयमें नंवर १ से लगाकर नंवर १६२ तकके परिणामोंमेंसे उसकी योग्यता अनुसार कोई एक परिणाम होगा। इस ही प्रकार किसी भी जीवके उसके अधःकरण मांड़नेके दूसरे समयमें नंवर ४० से लगाकर नंवर २०५ तक १६६ परिणामोंमेंसे कोई एक परिणाम होगा। इस ही प्रकार आगेके समयोंमें भी मेरे हाथमें जो यह यंत्र है, इसके अनुसार जान लेना चाहिये कि अधःकरणके अपुनरुक्त परिणाम केवल ९१२ है, और समस्त समयोंमें संभव पुनरुक्त और अपुनरुक्त परिमाणोंका जोड़ ३०७२ है। इस अधःकरणके परिणाम चय (समानवृद्धि) वर्द्धित है। अर्थात् पहले समयके परिणामसे द्वितीय समयके परिणाम जितने अधिक है, उतने ही उतने द्वितीयादिक समयोंके परिणामोंसे तृतीयादिक समयोंके परिणाम अधिक हैं। इस दृष्टांतमें चयका प्रमाण ४ है, स्थानका प्रमाण १६ और सर्व धनका प्रमाण ३०७२ है। प्रथम स्थानमें वृद्धिका अभाव है, इसलिये अंतिम स्थानमें एक घाटिपद (स्थान) प्रमाण चयवर्द्धित है। एक

घाटि पद्के आधेको चय और पदसे गुणा करनेसे $\frac{१५\times४\times१६}{२}$=४८० चयधनक प्रमाण होता है।

भावार्थ—प्रथम समयके समान समस्त समयोंमे परिणामोंको भिन्न समझकर वर्द्धित प्रमाणके जोड़को चयधन वा उत्तर-धन कहते है। सर्वधनमेंसे चयधनको घटाकर शेषमें पद्का भाग देनेसे प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंजका प्रमाण $\frac{३०७२-४८०}{१६}$=१६२ होता है। इसमें क्रमसे एक एक चय जोडनेंसे द्वितीयादिक समयोंके परिणाम पुंजका प्रमाण होता है। एक घाटिपद प्रमाण चय मिलानेंसे अंत समय संबधी परिणाम पुंजका प्रमाण १६२+१५×४=२२२ होता है। एक समयमें अनेक परिणामोंकी संभावना है, इसलिए एक समयमें अनेक जीव अनेक परिणामोंको ग्रहण कर सकते हैं। अतएव एक समयमें नाना जीवोंकी अपेक्षासे परिणामोंमें बिसदृशता है। एक समयमें अनेक जीव एक ही परिणा-मको ग्रहण कर सकते है, इसलिये एक समयमें नाना जीवोंकी अपेक्षासे परिणामोंमें सदृशता है। भिन्न समयोंमें अनेक जीव अनेक परिणामोंको ग्रहण कर सकते है, इसलिये भिन्न समयोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षासे परिणामोंमें विसदृशता है। जो परिणाम किसी एक जीवके प्रथम समयमें हो सकता है, वही किसी जीवके दूसरे समयमें किसी तीसरे जीवके तीसरे समयमें और किसी चौथे जीवके चौथे समयमें हो सकता है। जैसे कि १६२ नंबरके परिणामकी प्रथम, द्वितीय, तृतीय, और चतुर्थ समयमें संभावना है।

इतना कहकर मुनिराजने एक पत्रपर लिखा हुआ यंत्र सबको दिखलाया:—

नंबर समय	परिणामोंकी संख्या और नंबर.	अनुक्रष्टि रचना.			
	२२२	५४	५५	५६	५७
१६	नं० ६९१—९१२	६९१—७४४	७४५—७९९	८००—८५५	८५६—९१२
	२१८	५३	५४	५५	५६
१५	नं० ६३८—८५५	६३८—६९०	६९१—७४४	७४५—७९९	८००—८५५
	२१४	५२	५३	५४	५५
१४	५८६—७९९	५८६—६३७	६३८—६९०	६९१—७४४	७४५—७९९
	२१०	५१	५२	५३	५४
१३	५३५—७४४	५३५—५८५	५८६—६३७	६३८—६९०	६९१—७४४
	२०६	५०	५१	५२	५३
१२	४८५—६९०	४८५—५३४	५३५—५८५	५८५—६३७	६३८—६९०
	२०२	४९	५०	५१	५२
११	४३६—६३७	४३६—४८४	४८५—५३४	५३५—५८५	५८६—६३७
	१९८	४८	४९	५०	५१
१०	३८८—५८५	३८८—४३५	४३६—४८४	४८५—५३४	५३५—५८५
	१९४	४७	४८	४९	५०
९	३४१—५३४	३४१—३८७	३८८—४३५	४३६—४८४	४८५—५३४
	१९०	४६	४७	४८	४९
८	२९५—४८४	२९५—३४०	३४१—३८७	३८८—४३५	४३६—४८४
	१८६	४५	४६	४७	४८
७	२५०—४३५	२५०—२९४	२९५—३४०	३४१—३८७	३८८—४३५
	१८२	४४	४५	४६	४७
६	२०६—३८७	२०६—२४९	२५०—२९४	२९५—३४०	३४१—३८७
	१७८	४३	४४	४५	४६
५	१६३—३४०	१६३—२०५	२०६—२४९	२५०—२९४	२९५—३४०
	१७४	४२	४३	४४	४५
४	१२१—२९४	१२१—१६२	१६३—२०५	२०६—२४९	२५०—२९४
	१७०	४१	४२	४३	४४
३	८०—२४९	८०—१२०	१२१—१६२	१६३—२०५	२०६—२४९
	१६६	४०	४१	४२	४३
२	नं० ४०—२०५	४०—७९	८०—१२०	१२१—१६२	१६३—२०५
	१६२	३९	४०	४१	४२
१	नं० १—१६२	१—३८	४०—७९	८०—१२०	१२१—१६२

इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर पूर्वाचार्योंने अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण इस प्रकार कहा है:—

जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिम भावे हि सरि सगा होंति ।
तम्हा पढमं करणं अधापवत्तो तिणिद्दिट्ठं ॥

अर्थात्—क्योंकि इस करणमें उपरितन और अधःस्तन (ऊपर और नीचेके) समय संबंधी परिणामोंमें सदृशता होती है, इसलिये इस करणका नाम अधःप्रवृत्तकरण कहा है । इस अधःकरणमें रचनाका अभिप्राय ऐसा है कि ऊपर और नीचेके समय संबंधी परिणामोंमें जितने समय तक सदृशताकी संभावना है, उतने ही उतने खंड समस्त समयसंबंधी परिणामोंके किये गये है । और उनमेंसे प्रत्येक खंडमें परिणामोंकी संख्या इतनी इतनी है कि जितने परिणाम क्रमसे अनंतर २ समयोंमें सदृश है ।

भावार्थ—जैसे प्रथम समय संबंधी परिणामपुज १६२ के ३९, ४०, ४१ और ४२ ये चार खंड इस क्रमसे किये गये है कि नंबर १–३९ तक ३९ ऐसे परिणाम है जो ऊपर किसी भी समयमें नहीं पाए जाते, इतने ही परिणामपुंजका नाम प्रथम खंड है । दूसरे खंडमें नंबर ४०–७९ तक ४० परिणाम ऐसे है, जो प्रथम और द्वितीय दोनों समयोंमें पाये जाते है । तीसरे खंडमें नंबर ८०–१२० तक ४१ परिणाम ऐसे है, जो प्रथम द्वितीय और तृतीय इन तीनों समयोंमें पाये जाते है । और चतुर्थ खंडमें नंबर १२१–१६२ तक ४२ परिणाम ऐसे है, जो प्रथम द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ इन चारों समयोंमें पाये जाते है । इस ही प्रकार अन्य समयोंमें

भी जानना। अधःकरणके ये समस्त परिणाम ऊपर ऊपर पूर्व पूर्व परिणामसे उत्तर उत्तर परिणाम अनंत अनंत गुणी विशुद्धता लिये हुए हैं।

जिस प्रकार अधःकरणमें ऊपर और नीचेके समय संबंधी परिणामोंमें सदृशता पाई जाती है, उसी प्रकार अपूर्वकरणके परिणामोंमें सदृशता नहीं पाई जाती; किंतु प्रति समय अपूर्व अपूर्व ही परिणाम होते है। इस ही लिये इस करणका नाम अपूर्वकरण है। अर्थात् ऐसे परिणाम पहले संसार अवस्थामें कदापि नहीं हुए थे। अंकसंदृष्टिसे अपूर्वकरणकी रचना इस प्रकार है।

नंबर समय.	परिणामोंकी संख्या.	परिणामोंके नंबर.
८	५६८	३५२९–४०९६
७	५५२	२९७७–३५२८
६	५३६	२४४१–२९७६
५	५२०	१९२१–२४४०
४	५०४	१४१७–१९२०
३	४८८	९२९–१४१६
२	४७२	४५७—९२८
१	४५६	१—४५६

सर्वका जोड़—४०९६ होता है।

इस यंत्रमें सर्वधन ४०९६ चयका प्रमाण १६ स्थानका प्रमाण ८ है। चय धनका प्रमाण $\frac{७\times१६\times८}{२}$=४४८। प्रथम समय संबंधी परिणामपुंजका प्रमाण $\frac{४०९६-४४८}{८}$=४५६ है। एक एक चय जोड़नेसे

द्वितीयादिक समय संबंधी परिणामपुंजका प्रमाण होता है। एक घाटि-पद प्रमाणचय जोड़नेसे अंत समय संबंधी परिणाम पुंजका प्रमाण ४९६×७×१६=९६८ होता है। इस यंत्रमें सर्वथा स्पष्ट है कि एक समयमें अनेक परिणामोंकी संभावना होनेसे अनेक जीव अनेक तथा एक परिणामको ग्रहण कर सकते है। इसलिये एक समयमें नाना जीवोंकी अपेक्षासे सदृशता तथा विसदृशता दोनों हो सकती है। किंतु जो परिणाम निम्न समयमें संभव है, वह परिणाम ऊपरके समयमें कदापि संभव नहीं है। इसलिये भिन्न समयोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षासे विसदृशता ही है, सदृशता नहीं है।

जिस प्रकार नाना जीवोंके एक समयमें संस्थादिककी अपेक्षासे भेद है, उसी प्रकार एक समयमें नाना जीवोंके परिणामोंमें जहां भेद नहीं हो, उसे अनिवृत्तकरण कहते है। उसकी अंकसंदृष्टिसे रचना इस प्रकार है:—

नंबर समय.	परिणाम संख्या.	परिणाम नंबर.
४	१	४
३	१	३
२	१	२
१	१	१

भावार्थ—इस अनिवृत्तकरणके कालके ४ समय है, और चार ही इसके समस्त परिणामोंका प्रमाण है, इसलिये एक समयमें एक ही परिणाम है। अतएव एक समयमें अनेक जीवोंकी परिणाम सदृश ही होते हैं, विसदृश नहीं होते। तथा भिन्न समयोंमें विसदृश ही

होते है, सदृश नहीं होते। जिस प्रकार यह स्वरूप दृष्टांतद्वारा कहा है, उस ही प्रकार यथार्थमें लगा लेना चाहिये। दृष्टान्तको ही यथार्थ न समझ लेना चाहिये। इस प्रकार नववें गुणस्थानका स्वरूप कहकर अब आगे दशवें गुणस्थानका स्वरूप कहते है।

अनेक प्रकार अनुभागशक्तिको धारण करनेवाली कर्मवर्गणाओंके समूहको स्पर्द्धक कहते है। नववें गुणस्थानसे पहले संसार अवस्थामें जो स्पर्द्धक पाये जाते है, उनको पूर्वस्पर्द्धक कहते है। अनिवृत्तकरणके परिणामोंसे जिनका अनुभाग क्षीण हो गया है, उनको अपूर्व स्पर्द्धक कहते है। इसी प्रकार अनिवृत्तकरणके परिणामोंसे जिनका अनुभाग अपूर्वस्पर्द्धकसे भी क्षीणतर हो गया है, उसको वादरकृष्टि कहते है। तथा जिनका अनुभव वादरकृष्टिसे भी क्षीणतर हो गया है, उसको सूक्ष्मकृष्टि कहते है। तीन करणके परिणामोंसे क्रमसे लोभकषायके विना चारित्रमोहनीयकी शेष वीस प्रकृतियोंका उपशम अथवा क्षय होनेपर सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त लोभकषायके उदयको अनुभव करते हुए जीवके सूक्ष्मसांपराय संज्ञक दशवां गुणस्थान होता है। ग्यारहवें और वारहवें गुणस्थानके स्वरूप पहले कह चुके है। अब आगे तेरहवें गुणस्थानका स्वरूप कहते है।

इस जीवके अनादिवद्ध अष्टकर्मोंकी १४८ प्रकृति है। उनमेंसे तद्भवमोक्षगामी जीवके नरक, तिर्यंच, देव और आयु इन तीन प्रकृतियोंकी सत्ता ही नहीं होती है। जिस कालमें यह जीव क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है, तव पूर्वोक्त सात प्रकृतियोंका क्षय कर

लेता है। इस प्रकार तद्भवमोक्षगामी जीवके सातवें गुणस्थानके अंतमें दश प्रकृतियोंकी सत्ता नष्ट हो गई, तथा जीवके नववें गुणस्थानमें ३६ प्रकृतियोंका नाश करके दशवें गुणस्थानमें लोभप्रकृतिका नाश पूर्वक बारहवें गुणस्थानके अन्तमें १६ प्रकृतियोंका नाश करता है। इस प्रकार चार घातिया कर्मोंकी ४७ और अघातिया कर्मोंकी १६, कुल मिल कर ६३ प्रकृतियोंके नाशसे इस जीवके केवलज्ञानकी उत्पत्ति होती है, तथा योगोंका इसके सद्भाव है। इस कारण यह जीव संयोगकेवली संज्ञक तेरहवें गुणस्थानवर्ती कहलाता है। इस तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीवको सकलपरमात्मा तथा अर्हन् कहते हैं। इनके अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनतवीर्यरूप अनतचतुष्टय प्रगट होते हैं। ये अपनी दिव्यध्वनिद्वारा भव्यजीवोंको धर्मोपदेश देकर संसारमें मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति करते है। यहा इस जीवके मोक्षके कारणभूत सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी तो पूर्णता हो गई है, परंतु कषायोंका सर्वथा नाश होनेपर भी योगोंको सद्भाव होनेसे योग और कषायके अभावस्वरूप चारित्रकी पूर्णता नहीं हुई है। इस ही कारण अभी मोक्ष भी नहीं हुई है। मूल शरीरको विना छोड़े आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलनेका नाम समुद्घात है। उस समुद्घातके सात भेद है। १ वेदनासमुद्घात, २ कषायसमुद्घात, ३ आहारकसमुद्घात, ४ वैक्रियकसमुद्घात, ५ मारणांतिकसमुद्घात, ६ तैजससमुद्घात और ७ केवलसमुद्घात। वेदनाके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेका नाम वेदनासमुद्घात है। कषायके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलनेका नाम

कषायसमुद्‌घात है। छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके शंका उत्पन्न होनेपर जो आहारक शरीरका पुतला मस्तकमेंसे निकल कर केवलीके निकट शंका दूर करनेको जाता है, उसके साथ आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलनेका नाम आहारकसमुद्‌घात है। देवादिक अनेक शरीरधारणादिक रूप जो विक्रिया करते हैं, उसके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलनेका नाम वैक्रियकसमुद्‌घात है। मरणसे पहले उत्पत्तिस्थानको स्पर्श करनेके लिये आत्मप्रदेशोंका शरीरसे निकलनेका नाम मारणातिकसमुद्‌घात है। शुभाशुभ तैजस शरीरके साथ आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेका नाम तैजससमुद्‌घात है।

तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीवके आयुकर्मकी स्थितिसे शेष कर्मोंकी स्थिति जब हीनाधिक होती है, तब उन सब कर्मोंकी स्थिति समान करनेके लिये केवलसमुद्‌घात करता है। इस केवलसमुद्‌घातके चार भेद है। दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूर्ण। प्रथम समयमें आत्माके प्रदेश चौदह राजू ऊंचे तथा शरीरकी चौड़ाईके प्रमाण व्यासवाले गोल दण्डाकार हो जाते है। इसको दण्डकेवलसमुद्‌घात कहते हैं। दूसरे समयमें जब आत्माके प्रदेश पूर्व पश्चिम अथवा उत्तर और दक्षिण दिशामें लोकांतको स्पर्श करें और चौड़ाईमें शरीरकी चौड़ाईके प्रमाण हों, ऐसी अवस्थाको कपाटसमुद्‌घात कहते हैं। वातवलयके विना समस्त लोकमें जब तीसरे समय आत्मप्रदेश व्याप्त हो जाते है, ऐसी अवस्थाको प्रतरसमुद्‌घात कहते हैं। चौथे समयमें जब आत्माके प्रदेश वातवलयसहित समस्त लोकमें व्याप्त हो जाते है, ऐसी अवस्थाको लोकपूर्णसमुद्‌घात कहते हैं। इसके पश्चात् पुनः

पांचवें समयमें आत्माके प्रदेश प्रतररूप होते है। छठे समयमें कपाटरूप, सातवें समयमें दण्डरूप और आठवें समयमें पुनः शरीराकार हो जाते हैं। इस प्रकार केवल समुद्घात करनेके पश्चात् अपने गुणस्थानके अंतमें योगोंका निरोध करके अयोगकेवली संज्ञक चौदहवें गुणस्थानको प्राप्त होता है। इस गुणस्थानका काल "अ इ उ ऋ ऌ" इन पांच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारण कालके समान है। इस गुणस्थानके उपान्त समयमें ७२ और अन्त समयमें १३ इस प्रकार ८५ प्रकृतियोंका नाश करके उर्द्धगमन स्वभावसे मोक्ष धामको प्रस्थान करता है।

इस व्याख्यानके समाप्त होनेपर उस दिनकी सभा विसर्जन की गई।

सतरहवां परिच्छेद।

जब तक जयदेव कचनपुरमें रहा, तब तक हिरालाल अपनी सम्पत्ति आदिके विषयमें चूं तक न कर सका। यद्यपि संसारमें यही प्रसिद्ध था कि रतनचन्दका उत्तराधिकारी हीरालाल है, परन्तु अपने उस दिनके दुराचारसे वह इतना डरपोंक हो गया था कि अपनी दूकानमें भी जानेका साहस नहीं कर सकता था। उस दुर्दिनके पश्चात् जिस दिन कि जयदेवने रामकुंवरिके साथ उसे रिहाई दी थी, चार छह दिन तो वह कुछ स्मशानवैराग्यके समान विरक्त तथा उदास रहा था, परन्तु पीछे पापिनी रामकुंवरिकी छेड़छाड़से तथा सम्पत्ति आदिके प्राप्त करनेकी चिन्ताओंसे वह अपने दुष्कृत्योंको

भूल गया। उसके हृदयपर थोड़ी बहुत पश्चात्तापकी रेखा थी, ज्यों २ दिन वीते, वह भी विलीन हो गई।

उसी समय एक दो दर्शनीय मित्र भी जैसे कि पापियोंको प्रायः मिल जाया करते है, हीरालालसे आ मिले। उन्होंने चार ही छह दिनमें अपनी वाक्पटुतासे आशाके बड़े २ दृश्य दिखलाकर हीरालाल को चेला बना लिया और उसके अन्तरंगकी सब बातें पूछ लीं। उनकी दर्शनीय मित्रताके प्रबल प्रवाहमें हीरालालने अपने अपयशके भयको निःशक बहा दिया। उसे इस बातका भान भी न रहा कि यदि ये लोग मुझसे विरुद्ध हो जावेंगे, तो मैं मुंह दिखानेके योग्य भी न रहूंगा।

जयदेवकी दृष्टि बहुत विस्तृत थी। वह बहुत दूर तक देखता था और तदनुसार बहुत दूर तक विचारता भी था। हीरालालको एक दो वार उक्त मित्रोंके साथ बैठा देखकर वह समझ गया कि इन लोगोंके द्वारा कोई अघटित घटना अवश्य होगी। और इसीलिये गुप्तरूपसे वह उनकी गति मतिपर ध्यान रखने लगा। एक रात्रिको रामकुंवरि हीरालाल और उसके मित्रोंकी गुप्तमंत्रणा हुई कि जयदेवको यमालय पहुंचाये विना हम लोगोंका कार्य सिद्ध न होगा, इसलिये उसके शीघ्र खपा डालनेका कोई प्रयत्न करना चाहिये। दूसरे सवेरे ही जयदेवके गुप्तचरने उसे इस मत्रणाका समाचार सुनाया। और उसे सुनकर जयदेवने जो कुछ किया, सो पहले कहा जा चुका है।

जयदेवके चले जाने पर हीरालालको इस बातकी प्रसन्नता हुई

कि अब मुझे अपनी सम्पत्तिका अधिकार मिल जावेगा। यद्यपि वह यह जानता था कि जयदेव मुझे दूकानके प्रबन्ध करनेके अयोग्य ठहरा गया है, इसलिये तत्काल ही मुझे अपना अधिकार नहीं मिलेगा। परन्तु उसे यह आशा अवश्य थी कि आज नहीं, चार छह महीने पीछे, आखिर मै उसे प्राप्त कर ही लूंगा। सर्वथा ही अधिकारच्युत कर दिया जाऊंगा, इसका उसे स्वप्नमें भी ध्यान नहीं था। क्योंकि उसे यह विश्वास था कि जयदेवके सिवाय मेरा दुष्कृत्य अन्य कोई नहीं जानता है। और वह अपनी सज्जनताके कारण मेरे दोषोंको अपने साथ ही ले गया होगा। बसीयतनामा भी उसीके नामका था, इसलिये उसका भी अब कुछ भय नहीं रहा। क्योंकि अब वह वापिस नहीं आवेगा। वह बड़ा ही निस्पृह तथा निर्लोभी पुरुष था। द्रव्यप्राप्तिकी लालसा उसे कभी देखी ही नहीं। इसलिये या तो बसीयतनामाको वह फाड़ चीरके फेंक गया होगा, अथवा अपने साथ ही लिये गया होगा। इस प्रकारके मनोरथके घोडे दौड़ाते हुए हीरालालने उस दिन जब कि सारा नगर जयदेवके शोकमें व्याकुल हो रहा था, बड़ी खुशी मनाई। और अपनी मित्रमंडलीका उस दिन खूब सत्कार किया।

इस खुशीकी चहलपहल कई दिन तक रही। मित्रोंकी मिजवानीमें, नाचरंगमें और यहां वहाके खुशामदखोरोंको पारितोषिक देनेमें, हीरालालने सैकड़ों रुपये फूंक दिये। यद्यपि उसके पास अधिक पूंजी नहीं थी, जो कुछ जयदेवने निर्वाहके लिये दिया था वही था। परन्तु सारी सम्पत्तिका अधिकार मिलनेकी आशामें इसका उसे

कुछ ख्याल ही नहीं रहा। रामकुँवरि भी इसी आनन्दमें मग्न थी। स्त्रियोंको जेवर प्राणसे भी प्यारा होता है, परन्तु उसने उस समय हीरालालसे कह दिया कि जरूरत हो तो इसे भी काममें ले आना।

हीरालालके पास जो कुछ द्रव्य था, वह खर्च हो चुका। नवीन आमदनीका कुछ ठिकाना नहीं था। परन्तु मित्रमंडली बढ़ती जाती थी, और साथ २ खर्चके नवीन २ द्वार भी खुलते जाते थे। यद्यपि अपने भावी अधिकारकी प्राप्तिकी प्रसन्नतामें हीरालालको वह खर्च एक सामान्य बात मालूम पड़ती थी, परन्तु उस सरीखी आशा अन्य लोगोंको नहीं थी। इसलिये प्रतिष्ठित महाजनोंकी तो बात ही क्या? साधारण दूकानदार भी उसके साथ कोरजी लेनदेन करने को हिचकते थे। सब ही 'आज नकद कल उधार' का व्यवहार रखते थे। सारांश यह कि विना नकदीके हीरालालको बजारमें एक पैसेकी भी वस्तु नहीं मिलती थी। एक दिन किसी राज्यकीय कर्म-चारीकी संभावना करनेके लिये हीरालालको रुपयोंकी अवश्यकता हुई, परन्तु घरमें रुपये नहीं थे। सिवाय जेवरके कोई ऐसी वस्तु भी नहीं थी, जिसे बेच कर काम चलाया जाय। लाचार वह जेवर वेचनेके लिये ही तयार हुआ। यद्यपि रामकुँवरिने अपने अलंकार देनेके लिये कह दिया था, परन्तु हीरालालका साहस नहीं हुआ कि उससे विक्रीके लिये जेवर मागें। क्योंकि निरन्तर ही उसे यह भय लगा रहता था कि कहीं रामकुँवारि अप्रसन्न न हो जावे। केवल प्रेमपिपासाकी पूर्तिके लिये ही वह रामकुँवरिको प्रसन्न रखनेके प्रयत्नमें नहीं रहता था। किन्तु दूकानका अधिकार पानेमें भी वह रामकुँ-

वरिको एक बड़ा भारी साधन समझता था । क्योंकि रामकुँवरिकी स्वीकारताके विना उसके पतिकी जायदादका सम्पूर्ण अधिकारी हीरालाल नहीं हो सकता था ।

उन दिनों हीरालालकी परिणीता स्त्री सुभद्रा कचनपुरमें ही थी । जयदेवने उसे इसलिये बुलवाया था कि शायद उसके संसर्गसे हीरालाल सुधर जायगा । यद्यपि सुभद्रा ऐसी ही बुद्धिमान और रूपवान स्त्री थी कि हीरालालको सदाचारी बना लेना उसके लिये कोई कठिन कार्य नहीं था । परन्तु रामकुँवरिकी कृपासे तथा और भी अनके कुत्सित पुरुषोंकी संगतिके प्रतापसे उसे अपने पतिसंसर्गका बहुत कम सौभाग्य प्राप्त होता था । वह बहुत प्रयत्न करती थी कि कभी पतिसे एकान्तमें वार्तालाप करनेका अवसर प्राप्त हो, परन्तु रामकुँवरिके षड्यंत्रके कारण वह बहुधा उससे वञ्चित रहती थी। कभी २ तो उसे दर्शनोंका भी लाभ नहीं होता था।

जब तक कंचनपुरमें जयदेव रहा, तब तक हीरालाल सुभद्रासे मिलता था, और रामकुंवरि भी उसके इस कार्यमें बाधा नहीं डाल सकती थी । परन्तु जबसे उसने कंचनपुर छोड़ा, तबसे तो सुभद्राका भाग्य सर्वथा ही फूट गया । रातदिन एकान्तमें बैठी हुई वह अपने भाग्यपर रोती थी, और अपने सुकोमल सुन्दर शरीरको इस विषयवेदनाकी अग्निमें झुलसाती रहती थी ।

सावनका महीना है । रात्रिके बारह बज चुके है। पानी रिमझिम २ बरस रहा है । अंधकारका अटल अधिकार हो रहा है । कभी २ चंचला चमक कर संसारकी क्षणभंगुरताका ज्ञान करा रही है ।

सड़कोंपर आवागमन सवर्था बन्द है। सारा नगर घोर निद्रामें मग्न हो रहा है। कहीं २ संयोगी नायक नायिकाओंके प्रणयकलहकी—विनय आनुनयोंकी घुसफुस सुनाई देती है। परन्तु इतनी अस्पष्ट कि मकानोंकी दीवालोंसे कान लगाये विना उनका कुछ अर्थ भान नहीं होता। वियोगी नायक करवटें बदल रहे है, और नायिकायें मेघोंको, मयूरोंको, कोयलोंकी, झिल्लियोंको जिनके शब्द सुनती हैं, उन्हींको कोस रही है। गलियां कर्दममय और मुख्यमार्ग जलमय हो रहे हैं। ऐसे समयमें घरसे निकलना सबका काम नहीं है। तो भी " मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखं " की उक्तिके अनुसार एक अज्ञात पुरुष एक बड़े भारी कम्बलसे अपने शरीरको छुपाये हुए रतनचन्द जौहरीकी हवेलीके पास पहुंचा, और पश्चिमकी ओर गलीमें जाकर एक खिड़कीके नीचे भीतके सहारे खड़ा हो गया। खिड़कीमेंसे एक टिमटिमाते हुए दीपकका प्रकाश बाहर आता था। खिड़की जमीनसे इतनी उंची थी कि मनुष्य खड़ा होकर उसमेंसे भीतरका दृश्य कठिनाईसे देख सकता था। उसमें लोहेके सींकचे लगे हुए थे। खिडकीके पास ही एक दरवाजा था, जिसके किवाड़ बन्द थे। भीतर एक युवा पलगपर बैठा हुआ है। और एक अबला उसके पैरोंसे लपट रही है। युवा अपने हाथोंसे निवारण करना चाहता है, परन्तु अबला पैर नहीं छोड़ती है। उसके नेत्रोंसे अविरल आंसुओंकी धारा वह रही है, जिससे युवाके पैरोंका अभिषेक हो रहा है। अबला कह रही है कि " प्राणश्वर! दासी और कुछ नहीं चाहती है। रातादिनके २४ घंटोंमें केवल एक वार दर्शन चा-

हती है। परन्तु हाय! आप उसमें भी कंजूसी करते है। अब कुछ दिनसे उसकी भी प्राप्ति दुर्लभ हो गई है। मै मानती हूं कि आप को कुमार्गमें जाते हुए रोककर, बुरी संगतिके दोष दिखाकर मैने एक अपराध किया है, आपके हृदयको दुःख पहुंचाया है, परन्तु जीवन-धन! वह अपराध इतना बड़ा नहीं है, जिसपर मुझे यह दंड दिया जावे? यद्यपि स्वामिकार्यमें बाधा उपस्थित करना सेवकका कर्तव्य नहीं है, तथापि यदि वह कार्य दुःखकर दोषास्पद हो तो उसका निवारण करना अपराध भी नहीं गिना जा सकता। इसके सिवाय नाथ! मै आपकी अर्धांगिनी हू। नीतिके अनुसार आपके सम्पूर्ण सुख दुःख तथा पाप और पुण्यकी भागिनी हूं। इसलिये विचार कीजिये कि आपको उन्मार्गमें जाते हुए देखकर, आपकी तथा आपके कुलकी कीर्तिपर कालिमा फिरते हुए देखकर, और अपने सुखसौभाग्यको नष्ट होते देखकर मै कैसे चुप रहू? मै बहुत चाहती हू कि आपसे इस विषयमें कुछ भी न कहूं, क्योंकि इससे लाभके स्थानमें हानि होती है, आप अधिकाधिक अप्रसन्न होते जाते है। परन्तु क्या करूं, यह मूर्ख हृदय नहीं मानता है, और फिर भी अधीर होता है। इसे बहुत समझाया कि "मूर्ख! तुझे प्राणनाथके गुणदोषोंसे क्या? उनकी आलोचना करने-वाला तू कौन? वे दूसरी हजार स्त्रियोंसे प्रसन्न रहें, और मुझपर अप्रसन्न रहें, इससे तुझे क्या? पूर्वजन्ममें जिसने जैसे कर्म कमाये है, उसे उनके वैसे ही फल मिलते है, इसमें हर्ष विषाद क्यों? तुझे तो उनका प्रतिबिंब स्थापित करके अहर्निशि पूजन करना

चाहिये, भक्ति करना चाहिये और उसके द्वारा उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। यही तेरा कर्तव्य है?" परन्तु जड़ हृदय नहीं समझता है, और बारंबार मुझे आपसे प्रार्थना करनेके लिये अधीर करता है। मेरे सच्चे उपास्यदेव! एक वार मेरी परीक्षा करके देखो कि आपकें चरणोंमें मेरी कैसी अनन्य भक्ति है। मेरे हृदयको चीर कर देखो कि आपकी मनोमोहनी मूर्ति उसमें कैसे आदरभावसे चित्रित है और एक वार आज्ञा देकर देखो कि दासी आपके लिये किस प्रकार क्षणभरमें अपने प्राणोंका उत्सर्ग करती है। नाथ! इतने पर भी मै अपने सौभाग्य सुखकी अधिकारिणी नहीं हूं, आपको प्रसन्न करनेमें समर्थ नहीं हूं, तो मेरा दुर्दैव! परन्तु जीवनसर्वस्व! एक बार यह भी तो बतलाओ कि अन्यत्र आपको कितना सुख मिलता है? कितनी शान्ति मिलती है? और जिन्हें आपने सुखशान्तिका उपकरण माना है, वे आपको कितने दिन उस सुख शांतिका दान करती रहेंगी? यदि इन प्रश्नोंका आप यथार्थ उत्तर दे देवेंगे, तो मुझे मालूम हो जावेगा कि आगे आपका जीवन सुखशान्तिताके साथ व्यतीत होगा, तो मुझे प्रसन्नता होगी— फिर मुझे कोई चिन्ता नहीं रहेगी। आनन्दसे मै अपनी जीवनलीला समाप्त कर दूंगी। मुझे जो कुछ चिन्ता है, वह आपके आगामी जीवनकी है। मुझे सुख हुआ तो क्या? और दुःख हुआ तो क्या? उसकी कुछ गिनती नहीं है। यथार्थमें आपका सुख दुख ही मेरा सुख दुख है। और इसीलिये आपको दुखके मार्गपर चलते हुए देखकर मै अधीर हो जाती हूं। आप यदि कलसे उन्मार्ग

छोड़कर सुमार्गसे लग जावें, तो फिर चाहे मुझे अपनी स्नेहपात्री बनावें चाहे नहीं, मुझे कोई दुःख नहीं रहेगा। और साथ ही यदि आप दिनमें केवल एक बार दर्शन देना स्वीकार कर लेंगे, तो संसार में मै अपने बराबर किसीको सुखी नहीं समझूंगी।" इसके पश्चात् युवतीने आसूं पोंछते हुए कहा, "नाथ! इतनी रातको आज अचानक दासीपर कृपा की, यह सौभाग्यका विषय है, परन्तु न जाने क्यों इस समय आपका मुख कुछ चिन्ताग्रस्त तथा उद्विग्न दिख रह है? यदि दासीसे कहनेमे कुछ हानि न हो तो इसका कारण कहिये।"

जब तक युवती उपर्युक्त बातें करती रही, तब तक युवा निस्तब्ध भावसे सुनता रहा। बाहर खड़े हुए अज्ञातपुरुषके हृदयपर उस अबलाके वाक्योंका इतना असर हुआ कि आखोंमें आसू भर आये, और हृदय उमड़ आया। वह समझता था कि युवाके हृदयपर भी ऐसा ही असर होगा। क्योंकि अबलाकी बातें पत्थरको भी पिघलानेवाली थीं। परंतु यथार्थमें उस युवाके हृदयपर शतांश असर भी न हुआ। वह बोला, आजकल दूकानका अधिकार पानेके प्रयत्नसे रातदिन शरीरको चैन नहीं मिलती है। इसीसे शायद तुम्हें मेरा मुंह उदास दिखा होगा, और कोई बात नहीं है। इस समय मुझे कुछ रुपयोंकी आवश्यकता हुई है, इसलिये तुम्हारे पास आया हूं। यदि तुम अपना गहना दे दो, तो काम निकल सकता है।

सुभद्रा—जीवनधन! जब यह शरीर ही आपका है, इन प्राणों पर भी आपका अधिकार है, तब फिर तुच्छ गहना तो किस गिनती

में है? लीजिये, ले जाइये! परन्तु जीवितेश्वर! मैने जो अनेक प्रार्थनायें कीं, उनका आपने एक भी उत्तर न दिया—एक शब्द भी नहीं कहा; जिससे आत्माको कुछ संतोष होता। हाय! अरण्यमें पड़े हुए अशरण्यजीवके रोदनके समान मेरी सब प्रार्थनायें विफल हुईं। वायुमंडलमें टकराकर नष्ट हो गईं। अस्तु, मेरी उक्त बातें आपको उचित नहीं जँची, तो जाने दीजिये। "दूध पिला पिला कर पाले हुए काले सांप अमृतसेचन करेंगे?" भले ही आप अपने इस विचारको ब्रह्मवाक्य समझिये। अब मै आगे कभी उनकी चरचा नहीं करूंगी। आपकी जो इच्छा हो, प्रसन्नतासे कीजिये। परन्तु एक बार यह तो कहे जाइये कि इस दासीको प्रतिदिन एकबार दर्शन मिला करेंगे कि नहीं?

इसके पश्चात् अबलाने फिर युवाके पैर पकड़ लिये और कहा, "नाथ! और सब कुछ दुःख सहन करनेको दासी तयार है, परन्तु दर्शनवियोग नहीं सह सकती। एक दर्शनकी आशासे मै इन प्राणों को रख सकती हूं। अन्यथा निश्चय समझिये कि अब ये प्राण नहीं रहेंगे। जब प्यारेके दर्शन भी नहीं मिलेंगे, तब संसारमें रहना ही किस लिये?"

हमारे पाठक समझ ही गये होंगे कि उक्त युवा और कोई नहीं, रतनचन्दके सुपूत हीरालाल है, और अबला उनकी स्त्री सुभद्रा है। इसलिये आगे युवा आदि सांकेतिक शब्द न लिखकर हम इन्हें हीरालाल तथा सुभद्रा ही लिखेंगे?

हीरालालका जैसा कुछ स्वभाव था, और वर्तमानमें सुभद्राकी ओर जैसा कुछ सद्भाव था, उसके अनुसार वह सुभद्राको दो चार गालियां सुनाये विना नहीं जाता। परन्तु सुभद्राकी बातचीत और भावभंगी ऐसी हृदयद्रावक तथा प्राभाविक थी कि उसके कारण हीरालालके विचार बदले तो नहीं, परन्तु ढीले अवश्य हो गये। और इस परिवर्तनके कारण वह यह कह कर चला गया कि "अवकाश मिलेगा, तो आया करूंगा।" गहनेका सन्दूक जो सुभद्राने लाकर रक्खा था, उसे साथ लेता गया। सुभद्रा जहांतक देख सकी हीरालालकी ओर देखती रही और पीछे किवाड़ लगाकर अपनी कर्मगतिपर घंटों विचार करती २ सो गई।

अज्ञात पुरुष कम्बलसे शरीर छुपाये हुए हीरालालके पीछे २ चला गया।

यहां यह कह देना उचित होगा कि रतनचन्दकी रहनेकी हवेलीमें नीचेके एक कमरेमें जिसका कि अभी हम वर्णन कर चुके है, सुभद्रा रहती थी और हवेलीके ऊपर पूर्वकी ओरके कमरेमें जिसका कि जीना पूर्वको ही था, रामकुँवरि रहती थी। लोगोंके हृदयमें किसी प्रकारकी शंका उत्पन्न न हो, इस विचारसे जयदेवने रामकुँवरि तथा हीरालालको उक्त हवेलीमेंसे निकालना उचित नहीं समझा था। आज हीरालाल ऊपर रामकुँवरिके निकटसे सुभद्राके कमरेमें आया था, क्योंकि जयदेवके जानेके पश्चात् उसका और उसके मित्रोंका अड्डा रातदिन ऊपरके कमरेमें ही रहता था।

यद्यपि सुभद्रा हीरालालको समझाती थी. और उसे बुरे मार्गपर

चलनेसे रोकती थी, तथापि हीरालाल उससे अप्रसन्न नहीं रहता था। वह रातको उसीके कमरेमें जाकर विश्राम करता था। परन्तु रामकुँवरिको जब यह बात मालूम हुई कि सुभद्रा अपने पतिको अच्छी शिक्षा देती है तब उसे अपनी मायाके नष्ट हो जानेकी चिन्ता हो गई। इसलिये उसने थोड़े ही दिन पीछे हीरालालके कृत्रिम मित्रोंके द्वारा एक षड्यंत्र रचकर सुभद्राकी ओरसे उसका चित्त बदल दिया। और तबसे हीरालालने सुभद्राके पास जाना आना सर्वथा बन्द कर दिया। परन्तु बेचारी सुभद्रा षड्यंत्रकी बातसे अज्ञान ही रही। वह नहीं जान सकी कि ऐसा क्यों हुआ ?

अठारहवां परिच्छेद।

आज कंचनपुरमें बड़ा कोलाहल मच रहा है। जहां तहांसे लड़कोंके झुंड़के झुड हाथोंमें कंकर पत्थर लिये हुए दौड़े जा रहे हैं। प्रौढ़ नरनारी भी कौतुक देखनेकी लालसासे जल्दी २ कदम बढ़ाये जा रहे है। दिनके ११ बजे हैं, कामका समय है, थोड़ा २ पानी बरस रहा है, तौ भी लोग इस विचित्र सम्मेलनमें शामिल होनेके लिये आकुल व्याकुल हो रहे है। बातकी बातमें राजद्वारके सम्मुख हजारों आदमियोंकी भीड़ इकट्ठी हो गई। देखा, दो गधे एक विलक्षण प्रकारसे सजाये गये है और उनमेंसे एकपर एक पुरुष और दूसरेपर एक स्त्रीकी सवारी कराई गई है। दोनोंके सिर तत्काल ही सफाचट किये गये है और उन पर अतिशय काला तैलमिश्रित रंग पोत कर कलगीके स्थानमें एक २

बुहारी बांध दी गई है। वस्त्र भी दोनोंको काले पहनाये गये है। लोहेके बड़े २ बिढंगे आभूषण पहना कर तो दोनोंको साक्षात् राक्षस ही बना दिया है। बड़ा ही भयावना दृश्य था, लोग देखनेके लिये टूटे पड़ते थे। थोड़ी देरमें यह सवारी राजमार्गपरसे अग्रसर हुई। चारों ओरसे धिक्कार! धिक्कार! छिः! छिः! के शब्दोंकी बौछार होने लगी। पीछे २ एक विचित्र ही प्रकारके शब्द करनेवाले बाजे बजने लगे। आगे २ काली ध्वजा पताकायें चलने लगीं, जिनपर मोटे २ अक्षरोंमें इस प्रकारके अनेक वाक्य लिखे हुए थे, "किये हुए कर्मोंका फल, जो जस करै सो तस फल चाखा। इस लोकमें पापोंका फल इस प्रकारसे मिलता है आगे इससे भी भयंकर फल भोगना पड़ेंगे?"

उद्दंड लड़के चारों ओरसे कंकड़ फेंकने लगे, और आनन्दमें उछल उछल कर नाना प्रकारकी तुकबंदिया जोड़ २ कर गाने लगे। पाठकोंके विनोदके लिये उनकी एक तुकबंदीका नमूना हम यहां पर देते हैः—

रामकुंवरि हीराका जल्सा, देखो लड़को! दौड़।
किये कर्मका मजा चखाओ, यारो! करो न देर।
मारो कंकर मारो पत्थर, मारो कंडे ईंट।
धूल उड़ाओ देओ गाली, गाओ बांके गीत॥

थोड़ी दूर चलकर प्रौढ़ लोग हर्ष, विषाद, आश्चर्य, ग्लानि, पश्चात्ताप आदि नाना प्रकारके भावोंमें तन्मय होते हुए और परस्पर रामकुंवरि हीरालालकी चर्चा करते हुए अपने २ घरोंको लौटने लगे। कोई कहता था, अफसोस हीरालालने रतनचन्द जौह-

रीके नामको डुवा दिया। कोई कहता था, मालूम नहीं हुआ, महाराजने एकाएक किस अपराधपर इन दोनोंकी ऐसी दुर्दशा की; कहीं ऐसा न हो कि ये विचारे निर्दोष हों और लोगोंके कहने सुननेसे इन्हें यह दंड दिया हो। कोई कहता था, सन्देह तो मुझे भी वहुत दिनसे था, परन्तु विश्वास नहीं होता था। अव निश्चय हो गया कि अवश्य ही ये दोनों परस्पर पापपंकमें लिप्त थे! कोई कहता था, मै भी वहुत दिनसे हीरालालको बुरी संगतिमें देखता था। यह उसीका फल है। सारांश यह कि सव ही लोग इस समय अपनी २ बुद्धिके अनुसार फैसला देकर अपने २ घर जा रहें थे—केवल वालकगण उस जुलूसकी शोभा वढ़ानेवाले रह गये। नगरके प्रत्येक मार्गसे चारों ओर हीरालाल रामकुंवरिकी सवारी निकाली गई और अन्तमें उन दोनोंको उसी ठाठसे, थोड़ेसे, राज्यसेवक कंचनपुर राज्यकी सीमासे वाहर करनेके लिये ले गये।

यह समाचार ज्यों ही सुभद्राके पास पहुंचे कि शोकके उद्रेकसे वह अचेत हो गई। और थोड़ी देरमें जव सचेत हुई, तव अपने भाग्यपर वड़ी करुणध्वनिसे रोने लगी। हाय! संसारमें अव मैं जीकर क्या करूंगी? जव नाथ ही चले गये, तव मै किसके लिये जीऊं! हाय! हाय! मैने कितना समझाया, पर प्राणनाथने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। और अन्तमें मुझपर यह चिर—वियोगका पहाड़ लाके पटक दिया।—नाथ! तुम्हारे सम्मुख रहते हुए मै सव कुछ दुःख सह सकती थी, परन्तु अव तुम्हारे वियोगमें मै तीन लोकके पर ई सुख भी नहीं सह सकती। हे कंचनपुर नरेश! तुमने यह

क्या अनर्थ किया? हाय! मुझ अबलापर तुम्हें कुछ भी दया न आई। यदि ऐसा ही करना था, तो मुझे भी उनके साथ कर दिया होता। इससे मै बहुत प्रसन्न होती।

हाय! अब मै अन्त समयमें पतिका मुख निरीक्षण किये विना भी कैसे मरूं? और उनके वियोगमें जीऊं भी कैसे? हाय! मैं कहीं की भी न हुई। इस अभागी गर्भका अब मैं क्या करूं? इसका रक्षण कैसे होगा? हा कन्त! यदि अब मैं अपने प्राण देती हूं, तो अपने और तेरे घात करनेके पातककी भागिनी होती हूं। और जो रक्षा करती हूं तो प्राणनाथके असह्य वियोग-तापसे उत्तप्त होना पड़ेगा। तू न होता, तो आज प्रसन्नताके साथ मै उनकी अनुगामिनी हो जाती, अथवा इस पापमयी संसारसे छुटकारा पानेके लिये, तथा मनुष्य जन्मको सफल करनके लिये जैनेश्वरी दीक्षा ले लेती। परन्तु दोनोंमेंसे एक भी नहीं हुआ।

सुभद्रा इस प्रकार रोरोकर अपने दुःखको किसी तरह हलका कर रही थी कि इतनेमें रतनचन्दजीकी दुकानका प्रधान मुनीम विनीतचन्द्र आया और बोला, मैं श्रीमान् कंचनपुर नरेशकी आज्ञानुसार आपके पास आया हूं। क्योंकि आप सेठ रतनचन्दजीकी दूकानकी स्वामिनी बनाई गई हैं। आजसे उक्त दूकानका काम काज आपकी इच्छानुसार चलाया जावेगा। मै दुकानका प्रधान मुनीम हूं, इसलिये सूचना देनेके लिये आया हूं। जो कुछ उचित समझें, मुझे आज्ञा दें। महाराजने यह भी संदेशा भेजा है कि "गत बातोंको भूलकर आप संतोष पूर्वक अपने चरित्रकी रक्षा करती हुई रहें। महाराजकी

ओरसे इस बातका सविशेष ध्यान रहेगा, कि आपको किसीकी ओरसे किसी प्रकारका कष्ट न पहुचे। आप निःशंक होकर अपनी हवेलीमें निवास करें। इसके सिवाय मै एक विश्वासपात्र नौकर और दो तीन सदाचारिणी दासियोंकी तजवीज करके आया हूं। वे आज संध्या तक आपकी सेवामें उपस्थित हो जावेंगी। उनके आ जानेसे आपको शारीरिक कष्ट न उठाना पड़ेगा। यह सच है कि आपपर एक असह्य कष्ट आकर पड़ा है, और उसके आगे यह सब वैभव तुच्छ है; परन्तु अपनी शारीरिक अवस्था देखकर इस समय संतोष किये बिना और दुःखको भुलाये विना गत्यन्तर ही नहीं है। इससे अधिक और मै क्या कहूं, आप स्वयं बुद्धिमती है—सब कुछ सोच समझ सकती है। इसके उत्तरमें सुभद्राने कुछ भी नहीं कहा, और मुनीमने भी उत्तरकी आवश्यकता न समझकर अपनी राह ली।

यहां पाठक बड़ी उलझनमें पड़ें होंगे कि एकाएक हीरालाल तथा रामकुंवरिकी ऐसी दुर्दशा क्यों की गई? और सुभद्रा दूकानकी अधिकारिणी क्यों बनाई गई? इसलिये हम उनके समाधानके लिये लिखना उचित समझते है, कि गत रात्रिको सुभद्राके कमरेके पास जो अज्ञात पुरुष कम्बल ओढ़े हुए खड़ा था, वह और कोई नहीं, स्वयं कंचनपुर नरेश थे। प्रजाके सुख दुःखकी सुधि लेनेके लिये वे निरन्तर दूसरे चौथे दिन गुप्त रूपसे नगरमें घूमा करते थे। और इसलिये उनका सम्पूर्ण राज्यकार्य केवल तिलका पहाड़ बनानेवाले अथवा सुमेरुको राई बनानेवाले राज्यकर्मचारियोंके भरोसेपर नहीं चलता था; जिस विषयमें उन्हें संदेह होता था, उसका वे स्वयं अपनी दृष्टिसे

निवारण करते थे। छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े आदमीसे मिलनेमें उन्हें संकोच नहीं होता था। सबके साथ वे एक सी दया और शिष्टताका वर्ताव करते थे। खेद है कि वर्तमानमें भारतवासियोंको ऐसे राजाओंकी प्राप्ति स्वप्नसी हो गई है। यहां तो अब राज्यकर्मचारी ही सब कुछ हैं। जैसा चाहे, वैसा सफेद स्याह करनेका उन्हें अधिकार है। जिसका परिणाम यह हुआ है कि प्रजा अत्याचारकी चक्कीमें पिसी जाती है और राजेश्वरके कानों तक उसकी भनक भी नहीं पहुँचती।

कंचनपुर नरेश उसी वेशमें हीरालालके साथ २ चले गये। थोड़ी दूर चल कर हीरालाल एक मकानमें प्रवेश करके अपने एक मित्रके साथ बाहर निकला। इस समय उसके हाथमें गहनेकी पेटी नहीं, किन्तु रुपयोंकी एक थैली थी। पश्चात् सौ डेढ़ सौ कदम चलकर वह एक दूसरे मकानमें गया। उसके तीसरे मॅजिलके एक दीवानखानेमें एक शमादान जल रहा था, और पांच सात आदमी बैठे हुए थे। हीरा-लालके पहुंचते ही वे सबके सब प्रसन्न हुए, मानों इसके आनेकी राह देख रहे थे। कंचनपुर नरेश एक किवाड़की ओटमें छुपकर भीतरकी सब बातें सुनने लगे।

यह दीवानखाना एक प्रतिष्ठित राज्यकर्मचारीका था, जिसके हाथमें सब प्रकारके आज्ञापत्र, योग्यतापत्र आदि लिखनेका अधिकार था। थोड़े ही दिन हुए पुराने कर्मचारीके मरनेसे इसकी नियुक्ति की गई थी। इसका नाम सुन्दरलाल था। इसका बाहरी रंगढंग बोलचाल तथा कार्य करनेकी और उसमें सम्मति देनेकी शैली ऐसी अच्छी थी कि प्रत्येक पुरुष इसे विश्वासकी दृष्टिसे देखता था। महाराज भी इसको

विश्वस्त कर्मचारी समझते थे। परन्तु यथार्थमें इसका हृदय वहुत काला था। हीरालालने अपने मित्रोंके जरिये, जो कि वहां पहले हीसे जमें हुए थे, पांच सौ रुपयेकी एक थैली सुन्दरलालको भेंट की और अपनी इच्छा प्रगट की। इस विषयमें वहुतसा वार्तालाप हुआ, जिसे महाराजने खूव ध्यान देकर सुना। सवका सारांश केवल इतना ही था कि सुन्दरलालने सवके सम्मुख प्रतिज्ञा की, कि मैं महाराजसे हीरालालकी योग्यता और चलनकी सिफारिश करके जैसे वनेगा तैसे उसे दूकानका सम्पूर्ण स्वत्व दिलवा दूंगा।

सुन्दरलालकी प्रतिज्ञा सुनकर महाराजको इतना क्रोध आया कि उसके आवेशमें वे उसे उसी समय दंड देनेको तयार हो गये। परन्तु तत्काल ही कुछ सोचकर और योग्य अवसर न देखकर वे वहासे दवे पैर चुपचाप चल दिये।

राजमहलमें लौटकर उन्होंने उसी समय दो तीन गुप्तचरोंको बुलाया। और उन्हें आज्ञा दी कि आज रात भरमें जिस तरह वन सके, उस तरह रामकुँवारि और हीरालालके चालचलनका सच्चा २ अनुसंधान करके प्रातःकाल हमको सूचित करो।

गुप्तचर (जासूस) 'जो आज्ञा' कहकर उसी समय चले गये, और महाराज विश्राम करनेके लिये शयनागारमें गये। प्रातःकाल सोकर उठते ही महाराजको जासूसोंने अपनी २ विज्ञप्ति पृथक् २ सुनाई। जिसे सुनकर महाराजने जयदेवके कथनको और अपने अनुमानको यथार्थ पाया।

उसी दिन दरवारमें सुन्दरलालने मौका पाकर महाराजसे हीरा-

लालकी सिफारिश की और उसका हक उसे देनेके लिये भी प्रार्थना की । महाराज उस समय अपने क्रोधका संवरण न कर सके । उन्होंने उच्चैःस्वरसे कहा, " इस पापीको इसी समय हथकड़ी डालकर ले जाओ और एक सालके लिये जेलमें ठूंस दो ! हीरालालके मित्रोंको भी यही सत्कार करो । इसके सिवाय हीरालाल और रामकुँवरिको राजकीय पद्धतिके अनुसार कालामुंह करके देशसे निकाल दो और रतनचन्दकी दुकानका सम्पूर्ण अधिकार हीरालालकी साध्वी स्त्री सुभद्रा को दे दो । " इस आज्ञाके सुनते ही दरवारमें सन्नाटा छा गया। लोग एक दूसरेके मुंहकी ओर देखने लगे । एकाएक विद्युत्पात होनेसे मनुष्यकी जो दशा होती है, सुन्दरलालकी वही दशा हुई । महाराज क्रोधसे आरक्त नेत्र किये हुए उसी समय अन्तःपुरमें चले गये ।

उन्नीसवां परिच्छेद ।

रात्रिके ग्यारह बज चुके हैं । सूर्यपुरसे उद्यानवाले राजमहलके फाटकपर एक बलिष्ठकाय सिपाही पहरा दे रहा है । उसकी उमर ३५ वर्षके अनुमान होगी । शरीर उंचा परन्तु सुडौल है, सिरपर एक बड़ा भारी सफेद साफा बंधा हुआ है, कमरमें तलवार लटक रही है, एक हाथमें बरछी लिये हुए है और दूसरा हाथ मूंछोंपर है । साफेको छोड़कर बाकी सब पोशाक खाकी रंगकी है । पैरोंमें दूर तक सुनाई देनेवाले आवाजदार जूते है ।

समीप ही एक सुन्दरी स्त्री द्वारके सहारे बैठी हुई है। उसके दोनों हाथ रस्सीसे बंधे हुए है। स्त्रीका नाम मालती है। यह दो तीन दिनसे राजमहलमें सुशीलाके पास जाया करती थी। और उससे घंटों तक गुप्तरूपसे वार्तालाप किया करती थी। आज किसी चाणाक्ष दासीने दोनोंके कथोपकथनमें यह सन्देह करके कि ये दोनों भाग जावेंगी, उदयसिंहको सूचना दी थी। जिससे उन्होंने मुश्कें बांधकर रात भर पहरेमें रखनेकी और सवेरे समक्षमें उपस्थित करने की आज्ञा दी थी। तदनुसार कैद करके यह पहरेदारकी रक्षामें सौंपी गई है।

मालती नवीना नहीं प्रवीना प्रौढ़ा स्त्री जान पड़ती है। तौ भी वाहिरी वेषभूषासे, चमकदमकसे, रंगढंगसे अपने सौन्दर्यको ऐसा वनाये है कि हजार नवीनाओंको नीचा दिखलाती है। उसके कज्जल रेखारांजित, आकर्णविस्तृत, वड़े २ चंचल नेत्र और ताम्बूलरागलिप्त पक्वबिम्बाधरोष्ठ ही उसकी सम्पूर्ण शोभाके अनुमानके लिये बस हैं।

पहरेदार इधर उधर टहलता अवश्य है, परन्तु उसकी दृष्टि मालतीको वरावर अपना केन्द्र वनाये हुए है। यह देखकर मालतीके हृदयमें छुटकारेकी आशाका संचार हो रहा है।

थोड़ी देरमें अवसर पाकर उसने पहरेवालेके साथ वार्तालाप करना प्रारंभ किया। पहरेवाला हो, चाहे यमदूत हो, सुन्दरी रमणी के साथ वार्तालाप करनेकी इच्छा किसे नहीं होती? मालती पहले यहां वहांकी सामान्य वातें करके उससे नाम धाम, गृहकर्म सुखदुख आदिकी वातें पूछने लगी। अपने विषयमें मालतीकी इतनी उत्सुकता देखकर पहरेवाला वहुत प्रसन्न हुआ। मालती भी अवसर देखकर

अपने अस्त्र शस्त्र बाहिर निकालके रखने लगी। एक ओर मालतीका अमृतमय रसालाप और दूसरी ओर उसके साथ २ उन विशाल नेत्रोंका अव्यर्थ कटाक्षपात! बेचारा पहरेवाला पानी २ हो गया। जब मालतीने देखा, मेरे शस्त्र बराबर काम कर रहे हैं, तब वह कोमल स्वरसे बोली, "मुझे न जाने क्यों डर लगता है। इस समय ठाकुर साहब! जरा आप मेरे पास आकर न बैठे जावें?"

पहरेदार चटसे मालतीके समीप जा बैठा। कुछ देर यहां वहांकी बातें हो चुकनेपर मालतीने ठाकुर साहबपर दो चार कटाक्ष संधान कर कहा, "आपके मस्तकपर पसीना बहुत आ रहा है, एक बार मेरे बन्धन खोल दो, तो मै हवा कर दूं। पीछे फिर बांध देना।"

ठाकुर साहबके मस्तकपर पसीनेकी एक बूंद भी नहीं थी। परन्तु मालती "विना पसीना देखे कैसे कह देगी? और इन सुकोमल हाथोंकी हवा भला किसको नसीब हो सकती है?" यह विचार कर ठाकुर साहबने तत्काल ही बंधन खोल दिये। तब मालती अपने अंचलके द्वारा कुछ देर तक हवा करके थम रही। पीछे ठाकुर साहब का साहस नहीं हुआ कि उस लावण्यवतीसे बंधनेके लिये फिर कहें। बेचारा स्वयं ही उसके बंधनमें बंध चुके थे!

थोड़े समयके पश्चात् मालतीने कहा, ठाकुर साहब! तुम्हारी स्त्री क्या तुमसे प्यार नहीं करती?

पहरेवालेने किंचित् विस्मित् होकर पूछा, क्यों?

मालतीने कहा,—"यदि करती होती, तो ऐसी पावसकी रात्रियोंमें तुम सरीखे स्वामीको घरसे बाहर जाने देती ?"

ठाकुर साहबने एक लम्बी सांस ली।

मालतीने शस्त्र संधानकर कहा, "ठाकुर साहब ! क्या कहूं, कहनेमें लज्जा आती है, किन्तु यदि तुम मेरे स्वामी होते तो ऐसे समयमें तुम्हें कभी बाहर नहीं जाने देती।"

पहरेवालेने फिर एक लम्बी सांस ली।

"आहा ! यदि तुम प्राणनाथ होते तो,...." इतना कहकर मालती अटक रही, और उसने भी एक सांस ली। साथ ही पहरेवालेको अपने तीक्ष्ण कुटिल कटाक्षोंका निशाना बनाया। बेचारेका मस्तक चकरा गया। वह धीरे २ मालतीके और भी पास खिसक गया। मालती भी थोड़ी सी उसकी ओर खिसक आई। और इसी समय उसने पहरेवालेके हाथपर अपने कोमल करपल्लव स्थापित कर दिये। बस क्या था ? ठाकुर साहबकी अकल कूच कर गई। मालती कहने लगी, पूछनेमें संकोच तो होता है, परन्तु पूछती हूं कि, क्या तुम पीछे कभी मेरा स्मरण करोगे ?

पहरे०—तुम्हारा स्मरण नहीं करूंगा ? नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता।

मालती—क्या तुमसे एक मनकी बात कहूं ?

पहरे०—कहो न, कहो।

मालती—नहीं, अब नहीं कहूंगी। न जाने तुम उससे मेरे विषयमें क्या समझो।

पहरे०—नहीं! नहीं! कहो, कहनेमें क्या हर्ज है? मैं तो तुम्हारा दास हूं।

मालती—मेरा जी होता है कि अपने पापी पतिका मुंह काला करके तुम्हारे साथ रहने लगूं।

इतना कह कर मालतीने फिर एक कटाक्षपात किया। पहरेदार आल्हादसे उछल पड़ा।

पहरे०—रहोगी?

मालती—रक्खोगे, तो रहूंगी।

पहरे०—तुम्हें रक्खूंगा नहीं! किन्तु प्यारी! तुम्हरा दास होके रहूंगा।

"इस अपूर्व प्रेमका तुम्हें क्या पारितोषिक दूं? अच्छा, यही ग्रहण करो।" यह कहकर मालतीने अपने गलेका एक सुवर्णहार उतार कर पहरेदारके गलेमें पहना दिया। उस समय ठाकुर साहब सशरीर स्वर्गमें जा पहुंचे। मालती बोली, शास्त्रमें कहा है कि, "अपने गलेगी माला दूसरेके गलेमें डालना विवाह कहलाता है।"

पहरेदारने हँसते २ कहा, "तब तो तुम्हारे साथ मेरा विवाह हो गया!"

"इसमें अब सन्देह ही क्या रहा?" यह कह कर मालती कुछ देर तक निस्तब्ध सी हो रही। मानो किसी गहन चिन्तामें मग्न है। पहरेदार बोला, क्या सोच रहीं हो?

मालती—जान पड़ता है मेरे लिलाटमें सुख नहीं लिखा है। मैंने अच्छा नहीं किया। मेरे लिये तुम अपने बालबच्चोंको नहीं छोड़

सकोगे। और यहां तुम्हारे साथ रहकर मुझे सुख नहीं मिल सकता।

पहरेदारने गर्वके साथ कहा, क्यों क्या अड़चन है? यहां हमारे सुखमें कौन बाधा डाल सकता है?

मालती—बाधा डालनेवाला वही जले मुंहका मेरा पति है। वह बड़ा विकट है। यदि सुन पावेगा, तो हम दोनोंको रसातलको पहुंचाये विना न रहेगा। उसका नाम याद कर मुझे तो कॅपकॅपी छूटती है। इसके सिवाय सवेरे मुझे राजकुमारके समक्ष भी तो तुम्हें पेश करना पड़ेगा! उस समय क्या करोगे? स्त्रियोंके लिये उनकी जैसी कुछ नियत रहती है, सो तो तुम जानते ही हो।

पहरे०—सो तो कुछ बात नहीं है। (मूंछपर हाथ फेरते हुए) मेरे जीते जी वह तुम्हारा मनहूस पति कुछ नहीं बिगाड़ सकता। और राजकुमारकी भी मजाल नहीं है कि तुम्हारी ओर नजर उठा कर देख सके। बहुत करेगा, अपनी नौकरी छीन लेगा।

मालती—सो तो मुझे भी तुम्हारे बल पौरुषका भरोसा है। परन्तु आखिर विटम्बना ही रही। जिस स्वातंत्र्य सुखके लिये मैं तरसती थी, वह तो नहीं मिला।

पहरे०—(बहुत देर तक सोचकर) तब क्या करना चाहिये?

मालती—(उदास होकर) कुछ नहीं। मेरे पीछे तुम कष्टमें क्यों पड़ते हो! मेरा जो कुछ होगा, होता रहेगा। समझ लूंगी, मेरे भाग्यमें सुख लिखा ही नहीं है, (आंखोंमें आंसू भरकर) हाथ जोड़ती हूं। अब तुम इस विषयको छोड़ दो। और अपना काम करो। अभी जो बातें हुई है, उन्हें भूल जाओ।

इस समय मालतीने ऐसी विलक्षण मुद्रा बनाई और इतना शोकका उद्रेक दिखलाया कि ठाकुर साहबका जी मोम हो गया।

पहरे०—(हाथ पकड़कर) प्यारी! ऐसी बातें मत करो। तुम्हें अब मै कभी नहीं छोड़ सकता। जैसा तुम कहो, मै वैसा करनेके लिये राजी हूं। तुम्हारी आज्ञा हो तो मै अभी साथ चलने को तयार हू। तुम्हारा शोक मुझसे देखा नहीं जाता। तुम्हारे लिये मै सब कुछ कर सकता हूं।

यह सुनकर मालती अपने प्रयत्नको सफलताके मार्गपर आया समझकर मन ही मन प्रसन्न हुई। परन्तु ऊपर उदासीनताकी छाया दिखलाती हुई बोली—नहीं, मुझे तो दृढ़ विश्वास हो चुका है कि विधाताने मेरे लिलाटमें सुख नहीं लिखा। क्या आश्चर्य कि मेरे साथ तुम्हें भी दुःख भोगना पड़े, इसलिये तुम इस प्रपचमें मत पड़ो।

इस समय ठाकुर साहबको अपनी पिछली बातपर दृढ़ता दिखानेका जोश चढ़ा। आप खड़े होकर बोले—नहीं, मै निश्चय कर चुका जहां तुम कहो, अभी चलनेके लिये तयार हूं। अच्छा तो तुम यहीं बैठना, मै घर जाकर रास्तेके खर्चके लिये कुछ रुपये और जरूरी समान लेकर आता हूं।

मालती—(कटाक्ष संधान कर) अजी, मुझे धोखा क्यों देते हो? साफ क्यों नहीं कहते कि ठकुराइनसे मिलनेको जाता हूं।

पहरे०—नहीं! प्यारी! सचमुच अब मै तुम्हारा दास हो चुका हूं। इसमें धोखा नहीं है। मै बहुत जल्दी लौटके आता हूं।

मालती—(मुसकुराकर) और तब तक मैं कहीं भाग गई तो ? रस्सीसे बांधे जाओ न ?

पहरे०—खैर ये हँसी मजाककी बातें फिर करना। अभी काम सिद्ध करने दो।

मालती—लौटके आवोगे, तो सही ?

पहरे०—क्या दो चार दिनमें आऊंगा, जो ऐसा कहती हो। बस गया और आया।

मालती—देखो! तुम्हें मेरे सिरकी कसम है! कहीं ठकुराइनके प्रेममें न उलझ जाना।

पहरे०—नहीं! नहीं! प्यारी! तुम मुझे इतना अविश्वासी मत समझो।

मालती—अच्छा जाओ, परन्तु यह तो कहो कि मुझे अकेले यहां डर नहीं लगेगा ? हाय! मेरी तो छाती धड़कती है।

पहरे०—नहीं, यहां डर किस बातका है ? मुझे देर नहीं लगगी।

ठाकुर साहबके जीमें मालतीके विषयमें तिलार्द्ध भी संशय नहीं रहा। बच्चाजी, ऐसे उल्लू बने कि आगा पीछा सब भूल गये। यह भी नहीं सोचा कि यह वही स्त्री है, जिसे मैंने घंटे भर पहले रस्सीसे कसके बांधा था।

पहरेवालेने पीठ फेरी कि मालतीने अपनी सफलतापर प्रसन्न होते हुए बंगलेके भीतर प्रवेश किया। रात अधीसे ज्यादा बीत चुकी थी, इसलिये बंगलेकी प्रायः सम्पूर्ण दासियां अचेत होकर खुर्राटे लगा रही थीं। आज विशेष निश्चिन्ततासे सोनेका कारण

मी था। सुशीला मालतीके पकड़े जानेसे बहुत व्याकुल थी। कभी बाहर जाती थी और कभी भीतर आती थी। अभीतक उसकी आंखोंमें निद्राका आभास भी नहीं था। यद्यपि उसे अपनी प्यारी सखी मालतीकी बुद्धिमानीका बड़ा भारी विश्वास था, तौ भी उसके पकड़े जानेसे सचिन्त्य हो गई थी। जिस दिनसे सुशीलाके यहा मालतीका आवागमन प्रारंभ हुआ है, उसी दिनसे उसकी चर्यामें एक विलक्षण प्रकारका परिवर्तन हो गया है। मुखमंडलपर दीप्ति आ गई है, नेत्र प्रफुल्लित रहते है, शरीरमें स्फूर्ति—चचलता दिखलाई देती है। और उदासी बिदा ले गई है। यद्यपि वह अपने इस परिवर्तनको छुपानेका बहुत कुछ प्रयत्न करती है, परन्तु उसमें सफल नहीं होती! समय २ पर उसके मुखमंडलपर जो हंसीकी रेखा झलक आती है, उससे वहांकी दासियां इस परिवर्तनका कारण जाननेके लिये उत्कंठित हो जाती है। मालतीके पैरकी आहट सुनकर सुशीला कमरेसे बाहर दौड़ आई और यह पूछनेके लिये आतुर हुई कि तुम कैसे छूट आई? परन्तु इसके पहले ही मालतीने कहा, तो अब देर मत करो। इस समय थोड़ा भी बिलम्ब होगा तो सर्व नाश हो जावेगा। पहले बंगले भरके दीपकोंको बुझा देना चाहिये, पीछे यहासे चलना चाहिये। यह कह कर मालती शीघ्रतासे दीपनिर्वाण करने लगी। सुशीलाने भी उसे इस कार्यमें सहायता दी। जब बंगला सर्वथा अंधकारमय हो गया, तब दोनोंकी दोनों उसी फाटक परसे बाहर निकल गई, जहा कि पहले पहरेदारका पहरा था।

फाटक पार करते ही एक युवाने आकर मालतीका हाथ पकड़

लिया, और कहा, मालती महाशया ! अब कहां जाती हो ? मैं तुम्हारे साथ भाग चलनेके लिये तयार हूं-तुम्हारी बाट ही देख रहा था। देखो, तुम्हारे लिये मैं अपने बालबच्चे सब छोड़ आया। राह खर्चके लिये जो कुछ रुपयों पैसोंकी अवश्यकता थी, सो भी ले आया हूं। युवाके ये वाक्य सुनकर सुशीला कांप उठी कि, हाय ! यह क्या विपत्ति आई, मालती भी चमक उठी, परन्तु तात्कल ही प्रसन्न होकर बोली, हां ! हां ! चलिये। परन्तु याद रखिये, मालती के लिये मदनमालती छोड़ देनी पड़ेगी ! सुनते ही युवा खिलखिला उठा और बोला वाह ! क्या अच्छा अनुप्रास मिलाया है।

मालती—जान पड़ता है, आप यहां बहुत देरसे आ गये है।

युवा—हां जिस समय ठाकुर साहबसे आपका वार्तालाप प्रारंभ हुआ था, उसी समय मै यहां आ गया था। जब आज ११ बज चुके और आपका आगमन न हुआ, तब मुझे चिन्ता हुई और आखिर बात क्या है, यह जाननेके लिये मुझे यहा तक आना पड़ा।

मालती—अच्छा तो अब देरी करनेका समय नहीं है। जिस तरह बने रात ही रात यहांसे दो तीन कोस निकल चलना है। इस समय डेरेपर जानेकी आवश्यकता तो नहीं थी, परन्तु मालिनको सचेत कर चलना अच्छा है। इसलिये आप डेरेपरसे होकर आ जाइये। हम धीरे २ चलते है।

उधर थोड़ी देरमें मनके लड्डू पागते हुए ठाकुर साहब घरसे लौटे। परन्तु फाटकपर आकार देखते हैं, तो कोई नहीं है। एक बार

पुकारा 'मालती!' यहा वहा देखा, परन्तु कुछ भी उत्तर नहीं मिला और न कोई दिखाई दिया। सोचा, शायद बंगलेमें चली गई होगी। भीतर जाके देखा, तो बंगला अंधकारमय हो रहा है। वहा भी डरते २ पुकारा, 'मालती!' परन्तु किसीने उत्तर नहीं दिया। उस समय ठाकुर साहबका माथा ठनका। समझ आई कि मालतीने धोखा दिया। अब तो वह दासियोंका नाम लेकर जोर जोरसे पुकारने लगा। जिसे सुनते ही दासिया घबड़ाकर उठ बैठीं। और चारों ओर अंधकारका राज्य देखकर 'कर्तव्यविमूढ़' हो यहां वहा दौड़ने लगीं। एक दासीने सुशीलाके कमरेमें जाकर आतुरतासे पुकारा, 'सुशीला! सुशीला!' परन्तु वहां कौन था, जो उत्तर देता। बस सबकी सब दासियां रोने चिल्लाने लगी कि हाय! सुशील भाग गई—सुशीलाको कोई ले गया। दौड़ो! दौड़ो!

यह सुनते ही ठाकुर साहबके रहे सहे प्राण और भी सूख गये। इसी समय रेवती और बलदेवसिंह साधुओंके वेषमें सुशीलाको छुड़ानेके लिये आकर, चकित स्तंभित हो गये थे।

बीसवां परिच्छेद।

भूपसिंह सुवर्णपुर छोड़कर अपने प्राणप्रिय मित्र जयदेवका पता लगाता हुआ गाव गाव नगर नगर घूम रहा था कि अचानक एक दिन एक ग्राममें उसे साधुके वेषमें फिरते हुए, जयदेवसे मिलाप हो गया। जयदेवको कंचनपुर छोड़े हुए उस समय अधिक दिन नहीं हुए थे, परन्तु भूपसिंहको महीनों बीत गये थे।

उस समय एक।एक मिलाप होनेसे दोनों मित्रोंको जो आनन्द प्राप्त हुआ, वह अकथनीय है। कलममें इतनी शक्ति नहीं है कि वह वांचनेवालोंको उसका अनुभव करा सके। उस संयोगसुखका अनुमान वही कर सकते है, जो कभी अपने सच्चे मित्रसे बिछुड़कर मिले हैं। जयदेव भूपसिंहकी मित्रताका वर्णन बहुत कुछ किया जा चुका है, इसलिये हम यहां इस विषयको फिर पल्लवित नहीं करना चाहते। क्योंकि शायद ऐसा करनेसे हमें कथाका परिणाम जाननेकी उत्कंठा वाले पाठकोंकी अप्रसन्नताका भाजन बनना पड़े।

दोनों मित्र सुशीलाका पता लगानेके लिये चले। दोनोंकी यही सम्मति हुई कि पहले सूर्यपुरमें जाकर शोध करना चाहिये। क्योंकि उदयसिंहकी ओरसे उन दोनोंको ही शंका थी। यदि वहां पता न चलेगा, तो फिर कोई दूसरा प्रयत्न करेंगे। सूर्यपुर पहुंचकर वे दोनों एक मालिनके घर जाकर ठहरे। मालिन बड़ी ही चतुरा और चालाक थी। वह सूर्यपुरके राजमहलमें निरन्तर आया जाया करती थी। और वहींसे जो कुछ प्राप्ति होती थी, उसीके द्वारा अपना उदरनिर्वाह करती थी। जिस समय उदयसिंह सुशीलाको लाया था, अन्तः-पुरमें इस बातकी चर्चा चली थी और वह मालिनको स्मरण थी। भूपसिंहने बातों ही बातोंमें उससे इस बातका पता लगा लिया कि राजकुमार कई महीने हुए उद्यानवाले बंगलेमें कहींसे एक सुन्दरी स्त्री लाके रक्खी है।

इसके पश्चात् भूपसिंहने मालिनको पारितोषिकादि देकर धीरे २ अपने हाथमें कर ली और उसे यह निश्चय करा दिया कि मैं

विजयपुरका राजकुमार हूं । जिस समय भूपसिंहने उदयसिंह और निहालसिंहको लढ़ाईमें कैद किया था, उस समय मालिनने भूपसिंह-का नाम सुना था । इस समय उसी शूरवीर भूपसिंहको अपना पाहुना जानकर वह बहुत प्रसन्न हुई । और उसे वह बहुत आदरकी दृष्टिसे देखने लगी । भूपसिंहको भी उसके द्वारा अपने कार्यके सिद्ध होनेकी आशा होने लगी ।

भूपसिंहने जब यह विश्वास कर लिया कि मालिन अपनी सर्वथा आज्ञाकारिणी दासी बन गई है, तब एक दिन उससे कहा, यदि तुम हमारे मित्रको उस स्त्रीके साथ जिसे कि राजकुमारने अपने बंगलेमें लाके रक्खा है, साक्षात करा दो, तो तुम्हें बहुत सा पारि-तोषिक दिया जावेगा ।

मालिन पहले तो डरी, परन्तु पीछे भूपसिंहके आश्वासनसे राजी हो गई । उसने कहा साक्षात तो करा दूंगी, परन्तु आपमेंसे किसी एकको मेरे साथ स्त्रीका रूप बनाकर चलना होगा । यह सुनकर भूपसिंहने जयदेवकी ओर देखा और संकेत मात्रसे अपनी इच्छा प्रगट की कि आपका जाना अच्छा होगा । जयदेव पहले तो स्त्रीवेष बनानेके लिये संकुचित हुए । परन्तु पीछे राजनीतिके चारसमुद्देशका स्मरण होनेसे और भूपसिंहके आग्रहसे उन्हें तयार होना पड़ा । मालिन बड़ी ही चतुरा थी । उसने अपनी रुचिके अनुसार जयदेवको ऐसा सजधजके तयार कर दिया कि उसे स्वयं भ्रम होने लगा कि यह स्त्री है, अथवा स्त्रीरूप पुरुष ।

यहां हम पाठकोंकी यह शका भी दूर कर देना चाहते है कि जयदेव भूपसिंह जैसे वीर पुरुषोंको यह स्वाग रचनेकी क्या आव-

श्यकता थी ? यथार्थमें सुशीलाको संकटमुक्त करनेका कार्य बड़ा हीं जोखिमका था। यदि उसमें जरा भी बलसे काम लिया जाता, तो उसके प्राणोंपर आ बननेका डर था। इसके सिवाय राजा निहालसिंह इस षड्यंत्रसे सर्वथा अलिप्त और अजान थे। उन्हें व्यर्थ हीं सताना अनुचित था, यदि ऐसा न होता तो भूपसिंह जयदेवके आनेके पहलेसे ही राजा विक्रमसिंह तथा रणवीरसिंह सूर्यपुर जैसे कई राज्योंको नष्ट करके सुशीलाको छुड़ा ले जाते, और जासूसादि भेजने की विटम्बनामें न पड़ते। पाठकोंको स्मरण होगा कि राजा विक्रमसिंहने बलप्रयोग करनेका विचार किया भी था, परन्तु इन्हीं कारणोंसे उनके शूरसेन मंत्रीने उन्हें रोक दिया था।

रातको अनुमान ग्यारह बजे मालिनने मालतीको साथ लेकर और अनेक उपयोगी बातें समझाकर उद्यानकी ओर प्रस्थान किया। उस समय नगरमें धीरे २ नीरवता तथा निश्चेष्टताका साम्राज्य जम रहा था। लोगोंके आवागमनके विना मार्ग शून्य हो रहे थे।

बंगलेके द्वारपर पहुंचते ही मालिनने पहरेदारसे हंसते हुए कहा अच्छा आजकल आप हैं यहां? खैर, मुझे तो बड़ी चिन्ता हो रही थी कि न जाने पहरेपर कौन उजड्ड होगा! और मुझे भीतर जाने देगा या नहीं। ठाकुर साहब! आप तो पुराने नौकर हैं, इसलिये मुझे पहिचानते है कि राजमहलमें मेरी कैसी कदर रही है। परन्तु आजकल तो ऐसे नालायक भरती हुए है कि किसीको कुछ समझते ही नहीं है। अच्छा हुआ, जो आप मिल गये, नहीं तो बेचारी बंगला न देख पाती। ले बेटी! चली जा, मै सीधी राजमहलको

जाती हूं। न जाने क्यों इतनी रातको महाराणीने याद किया है। वहांसे लौटकर तुझे लेती जाऊगी, नहीं तो यहीं चम्पाके अथवा और किसीके पास सोजाना। ठाकुर साहब! यह मेरी बहनकी लड़की है। बेच'री देहातकी रहनेवाली है। इसने काहेको कभी ऐसे बंगले देखे होंगे। कल या परसों चली जावेगी। अच्छा है, आज देख लेगी। और रहेगी, तो एकाध वार और देख जावेगी। इतना कहकर मालिनने एक रुपया निकालकर पहरेवालेके हाथपर रख दिया और उत्तरकी प्रतीक्षा न करके वहांसे चल दिया। मालती छमाके भरती हुई फाटक लाघकर बंगलेमें जा पहुची। ठाकुर साहब मालिनकी बातोंमें ऐसे उल्लू बने कि कुछ भी न कह सके। और उसने भी ऐसी चालाकीसे बातचीत की कि बोलनेका मौका ही न आने दिया। ठाकुर साहब शायद पीछे कुछ कहनेका साहस करते, परन्तु तब तक वह एक चांदीकी 'जूती लगाकर चल ही दी। बेचारे रुपयेको जेबमें रखकर कठपुतलीकी नाई खड़े रहे।

नगरके बाह्य प्रदेशमें होनेसे बंगलेमें एक तो योंही सूना सूना मालूम पड़ता है। दूसरे कई दिनसे उस ओर उदयसिंहका आगमन नहीं होता है, इसलिये दास दासियोंकी चहल पहल भी जरा कम रहती है। मालतीने जाकर देखा, दासिया चैनसे खुर्राटे लगा रही हैं। सबकी सब अचेत है। बीचके विशाल कमरेके एक कौनेमें एक चटाईपर हाथका सिराना लगाये हुए सुशीला लेटी है। आंखोंमें निद्राकी छाया नहीं है, तो भी वे मुद्रित है। शरीर पर एक मलिन धोती, मस्तकपर सौभाग्यतिलक और हाथोंमें चूड़ि

योंके सिवाय और कुछ शृंगार नहीं है। वियोगके दुःसह तापसे उसके सम्पूर्ण अंगोपाग झुलस गये है। ऐसा जान पड़ता है कि मानों संयोगस्वर्गकी प्राप्तिके लिये उसने विभूतभूषित शरीरसे तपस्या करनेका उपक्रम किया है। मुखकी कान्ति क्षीण होकर उदासीनता में परिणत हो रही है। कपोलमंडलपर धवलिमा छा रही है। आंखोंसे वही हुई अश्रुधाराओंकी शुष्क रेखायें कंठ पर्यंत दिखाई देती है। भ्रमरराशिके समान श्याम सचिक्कण केश योगियोंकी जटाओंके समान रूक्ष होकर विखर रहे हैं। सारांश यह कि सुशीलाका मनोहर शरीर विरह–वेदनाके कारण सर्वथा परिवर्तित हो गया है।

मालतीरूपधारी जयदेव पहले तो यह सन्देह करके कि यह सुशीला नहीं है, द्वारपर ठिठक रहे। परन्तु किंचित् वारीकीसे देखने से जब उन्हें विश्वास हो गया कि यही मेरी प्रियतमा है, तब भी वे समीप जानेको अग्रसर न हो सके। जहां खड़े थे, वहीं स्तंभित हो रहे। कण्ठ रुद्ध हो गया, मस्तकपर पसीना आ गया, जी उमड़ आया, हर्ष–शोक और करुणाका एक अपूर्व सम्मिलन हुआ। हृदय सब प्रकारके विचारोंसे शून्य होकर जड़ीभूत हो गया। कुछ क्षणके पश्चात् हवाके एक झोकेसे उस कमरेकी खिड़कियां बन्द हो गई। और उनकी आहट पाकर सुशीलाने नेत्र खोल दिये। उनमें निद्राका नाम नहीं था। अपने समीप एक अपरिचित स्त्रीको खड़ी देखकर उसने पूछा, क्यों खड़ी हो?

जयदेव अवाक् हो रहे। बहुत विचार किया, परंतु कंठसे एक अक्षर भी नहीं निकला। उत्तर न पाकर सुशीलाने फिर पूछा, क्यों

बोलती क्यों नहीं हो ? कहो, उस पापात्माका संदेशा हो, तो वह भी कहो । मै दयाकी पात्रा नहीं हू । तुम कौन हो, जो मेरे लिये इस तरह संकोच कर रही हो ? मै मरी तो क्या, और जीती रही तो क्या ? यदि तुम मेरे मारनेकी आज्ञा लाई हो, तो मै उससे बहुत प्रसन्न होऊंगी । मै कलही से उसकी बाट देख रही हू । उस दिन वह दुरात्मा ३ दिनकी अवधि देकर गया था, परन्तु आज ४–५ दिन हो गये ।

जयदेवने बडी कठिनाईसे, बड़ी दृढ़तासे अपने मनको वशमें करके और आगामी कर्तव्यका निश्चय करके कहा, मैं तुम्हारे पतिका सदेशा लाई हूं ।

सुशीला–मुझे क्यों व्यर्थ कष्ट देती हो ? ऐसे सदेशे देनेवाली तो मेरे पास प्रतिदिन ही आया करती हैं, यह कहो कि सदेशेका प्रमाण भी तुम्हारे पास है, या नहीं ?

जयदेव–हा ! देखो, यह मुद्रिका किसकी है ?

मुद्रिकाका नाम सुनते ही सुशीला बिछौनेपरसे उठ बैठी, और उसे हाथमें लेकर बड़े गौरसे देखने लगी । यह मुद्रिका सुशीलाने प्रथमसमागमके समय अपने पतिको प्रेमोपहारस्वरूप समर्पण की थी । उसपर सुशीलाका द्वितीय नाम " सरस्वती " खुदा हुआ था । मुद्रिका पहिचान लेनेके पश्चात् सुशीलाने उस स्त्रीके मुंहकी ओर खूब बारीकीसे देखा । और जीमें यह कहते हुए, कि इस रूपको तो कभी देखा है, पूछा, तुम और भी कोई ऐसा प्रमाण दे सकती हो, जिससे मुझे तुम्हारे विषयमें कुछ भी सन्देह न रहे ?

मालती—हां जितने कहिये, उतने प्रमाण दे सकती हूं। यह देखो, मै तुम्हारे नामकी चिट्ठी भी लाई हूं। ऐसा कहकर मालतीके एक वटुयेमेंसे चिट्ठी निकाल कर दे दी। सुशीलाने उसे खोलकर बांची। ठीक जयदेवके अक्षरोंसे मिलते हुए अक्षर थे। उसमें लिखा हुआ था,—

"प्रिये! जिस स्त्रीके साथ यह पत्र भेजता हूं, वह बड़ी विश्वासपात्रा है। इसके विषयमे कोई सन्देह नहीं करना। अब वियोगके दिन शीघ्र समाप्त होगें। प्रयत्न कर रहा हूं। प्रिय भूपसिंह भी मेरे साथ है। धैर्य्य रखना। तुम्हारे दर्शनके लिये व्याकुलता बढ़ रही है। इस समय इतना ही।

त्वदीय-जयदेव."

इस चिट्ठीको पढ़कर सुशीलाके हृदयकी जो दशा हुई होगी उसका पाठक अनुमान कर सकते है। एक ओर चिरवियोगके अन्त होनेका सीमाधिक हर्ष, दूसरी ओर एक नगरमें रहते हुए भी जीवनसर्वस्वके अदर्शनका शोक, एक ओर संदेशा भेजनेकी कृतज्ञता, दूसरी ओर स्वयं दर्शन न देनेका स्नेहरंजित ईषत्कोप, एक ओर चिर-रोधित-शोकाश्रुओंका प्रवाह, दूसरी ओर संकटमुक्त होनेके पश्चात्का भावी आनन्द, भिन्न २ प्रकारके भावोंके चित्र उसके हृदयपर एकके पीछे एक खिंचने लगे। चिट्ठी पढ़कर एक वार मालती की ओर देखा, फिर चिट्ठीको पढ़ा, फिर देखा और फिर पढ़ा। इस प्रकार कई वार देखा कई वार पढ़ा। चिट्ठीके पढ़नेसे सुशीलाकी मुद्रामें क्या २ फेरफार होता है। मालतीका इस ओर सविशेष ध्यान था। उस समय वह अपने हृदयपर जो शासन कर रही थी, वह बड़े ही साहस—धैर्य और जितेन्द्रियताका कार्य था। परन्तु

अपने अभिन्न शरीरको—अपने अर्धांगको इस प्रकारसे कौन कब तक पृथक् रख सकता है ? जयदेवका (अब मालती कहना छोड़ दीजिये) धैर्य्यस्तभ खिसकने लगा। सुशीलाको चकित विस्मित दृष्टिसे अपनी ओर बार २ निहारते देखकर उसने कहा, क्या अभी तक आपकी शंका दूर नहीं हुई ?

सुशीला—नहीं शंका तो अब नहीं रही। किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हें मैने कभी देखा है, परन्तु स्मरण नहीं आता। अस्तु इस बातको जाने दो और यह कहो कि तुम्हारा डेरा यहासे कितनी दूर है ?

जयदेव—इसके पूछनेसे आपका अभिप्राय क्या है ?

सुशीलाने एक दीर्घनि.श्वास खींचकर उत्तर दिया, योंही पूछती हू।

जयदेव—नहीं, ठीक कहिये। यदि इच्छा हो तो मै उनसे इसी समय मिला सकती हूं।

सुशीलाका मुखकमल खिल उठा ! उसने बड़ी उत्कंठासे पूछा, क्या ऐसा हो सकता है ?

जयदेव—हा, यदि मै चाहूं, तो सब कुछ हो सकता है।

सुशीला—(विनम्र होकर) तो कृपा करके मुझे उनके पास ले चलो।

जयदेव—उन्हें ही यहां न ले आऊं ?

सुशीला—वे क्या यहा आ सकते है ?

जयदेव—क्यों नहीं ?

सुशीला— तो बुला दो ।

जयदेव–कितनी जल्दी बुलाऊं ?

सुशीला–जितनी हो सके ।

जयदेव—मुझे क्या दोगी ?

सुशीला—जो तुम मागोगी ।

जयदेव—देखो, भूलना नहीं !

सुशीला–नहीं ! खूब स्मरण है ।

जयदेव—तो, लो ये आ गये !

सुशीला रोमाञ्चित होकर यहां वहां बड़ी व्याकुलतासे देखने लगी । परन्तु जब देखा कोई नहीं है, तब दीन कातर होकर मालती के मुंहकी ओर देखने लगी । और बोली, कहां है ! जयदेव उस समय बड़ी कठिनतासे चित्तको वशमें किये हुए मुसुकुरा रहे थे । उन्होंने कहा, तुम्हारे समक्ष ही तो हैं !

सुशीलाने मालतीकी ओर लालायित लोचनोंसे देखा । बस, मालती–जयदेवका चित्त उस अपूर्व दृष्टिपातसे धैर्य्यच्युत हो गया । उसी समय उसने सुशीलाको अपने बाहुपाशमें बद्ध करके मुखचुम्बन करते हुए कम्पितस्खलित स्वरसे कहा, यह देखो, मैं उपस्थित हूं । मै ही तुम्हारा अभागा पति हूं । सुशीलाका कोमल हृदय एकाएक उस अचिन्त्य हर्षकी चोटको नहीं संभाल सका । इसलिये उसी पाशवद्ध अवस्थामें वह चेतनाविहीन हो गई । जयदेव भी अपने शरीरको अधिक समय तक नहीं संभाल सके । दोनों एक दूसरेकी ओर अनिमिषनेत्रोंसे देखने लगे । स्नेहकी अविरल अश्रुधारा बहने

लगी । दोनों आक्रन्दन करने लगे । पाठक ! बतलाइये, संयोग सुखमें यह रोना और आसु बहना क्यों होता है ?

मालतीरूपधारी जयदेव उस दिन रात भर सुशीलाके पास रहे । यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि, वह रात दोनों की व्यथा-वार्ताओंमें, पारस्परिक उलहनोंमें और कष्टमुक्त होनेके विचारोंमें ही व्यतीत हो गई । प्रातःकाल होनेके पहले जयदेव बड़े कष्टसे बिदा लेकर अपने डेरेपर चले गये । उस समय तक बंगलेकी दासियां चैनसे नीद ले रहीं थीं । पहरेवाले ठाकुर साहब प्रातःकालकी ठंडी हवाके झोकोंमें फाटकपर बैठे हुए नींदमें आगेको झुके जा रहे थे।

दूसरे दिन रातके ठीक बारह बजे श्रीमती मालतीजी फिर बंगलेके फाटकपर आ पहुंची और ठाकुर साहबको एक चिदानन्द तथा एक तिरछे कटाक्षका दान करती और कमरको बल देती हुई अपने अभीष्ट स्थानपर चली गई । तीसरे दिन भी उन्होंने ऐसा ही किया । परन्तु आज एक दासीने जिसका नाम चम्पा था, मालती को आते हुए देख लिया । उस समय वह लेटी हुई थी, परन्तु उसे निद्रा नहीं आई थी । एक अपरिचित स्त्रीको आते हुए देखकर उसे सन्देह हुआ और इसलिये वह धीरेसे उठकर कमरेकी एक खिड़कीके पास ओटमें खड़ी हो गई । वहांसे सुशीला और जयदेवकी बातें अस्पष्ट रीतिसे सुननेमें आतीं थीं । उस समय वे दोनों वहांसे निकल चलनेकी बातचित कर रहे थे । उससे चम्पा यह तो नहीं समझ सकी कि यह कोई पुरुष है, परन्तु इस विषयमें उसे कुछ भी सन्देह नहीं रहा कि यह कोई धूर्ता स्त्री उसे छुड़ानेके लिये

आई है। बस, उसी समय उसने एक कोठरीमें जाकर एक कागज पर कुछ लिखा और एक दासीको जगाकर उसके हाथमें देकर कहा इसी समय राजकुमारके पास ले जाकर इस पुरजेका जवाब लाओ। दासी तत्काल ही उदयसिंहके पास गई। उदयसिंह उस समय अपने मित्रके साथ फूटे मन्दिरमें जानेको तयार था, क्योंकि उस दिन रविवार था। पुरजेको वांचकर उसने मुंह जबानी कह दिया, कि अच्छा कुछ डर नहीं है। उसको मुश्कें बांधकर कैद कर लो, और पहरेदारकी निगरानीमें छोड़ दो। मैं प्रातःकाल आकर उसका निवटारा कर दूंगा।

दासीने लौटकर वह समाचार चम्पाको आकर सुना दिया। तदनुसार दासियोंने मिलकर मालतीको पकड़के कैद कर लिया और ठाकुर साहबके हवाले कर दिया। मालतीने उस समय जरा भी बलसे काम नहीं लिया। उसने बड़ी सरलतासे अपनी मुश्कें बांध लेने दीं। सुशीला अवश्य ही घबड़ा गई, परन्तु पीछे मालतीके सांकेतिक आश्वासनसे उसे बहुत कुछ ढाढस बंध गया।

इसके पीछे क्या हुआ, सो पहले कहा जा चुका है।

इक्कीसवां परिच्छेद।

जबसे एक राह चलते पथिकसे जयदेव, भूपसिंह और सुशीलाके विजयपुरको लौट आनेके समाचार नगरवासियोंने सुने हैं, तबसे विजयपुरमें आनन्दकी लहरें उच्छलित हो रही है। प्रत्येक बालकके, प्रत्येक युवाके, प्रत्येक वृद्धके, प्रत्येक भिक्षुकके, प्रत्येक धनिकके,

जिसका मुंह देखो उसीके मुंहपर आज मूर्तिमान् आनन्द विराजमान है। प्रत्येक वीथीमें, प्रत्येक मार्गमें, प्रत्येक घरमें, प्रत्येक महलमें, प्रत्येक उद्यानमें, प्रत्येक सरोवरमें, जहां देखो वहां आनन्दकी मनोहारिणी प्रभा प्रस्फुटित हो रही है। राजमार्ग धुजा पताकाओंसे सुसज्जित हो रहे है। महलोंके द्वार मणिमुक्तावेष्टित वंधनवारोंसे और साधारण स्थितिके गृहस्थोंके द्वार पत्रपुष्पग्रंथित वंधनवारोंसे सजाये गये है। मन्दिरोंके द्वारापर मधुर वाद्यध्वनि हो रही है, नृत्य, गायन हो रहे है। सजे हुए पुरुषोंके झुंडके झुंड आनन्द कलरव करते हुए इधर उधर आते जाते दिखाई देते है। मकानोंकी छतोंपर बैठी हुई स्त्रियां मंगल गीत गा रही हैं। जगह २ सदावर्त खुल रहे है। आहार वस्त्रादि जिसे जो कुछ चाहिये, वह मिलता है। देवमन्दिरोंमें पूजन हवनादि पुण्यकर्म हो रहे हैं। साराश यह कि आज विजय-पुर साक्षात् स्वर्ग बन रहा है।

कहनेकी आवश्यकता नहीं है, कि यह आनन्द कोलाहल विजयपुरकी गई हुई शोभाके, गई हुई विद्याके, गई हुई वीरताके, किंबहुना गये हुए प्राणोंके लौट आनेसे हो रहा है। आज विजयपुर और विलासपुरके जीवन-सर्वस्व जयदेव भूपसिंह और सरस्वतीके आनेके समाचार जहा तहा सुनाई पड़ते हैं। विचारशील सहृदय लोग कह रहे है, आज ऊजड़ हुआ विजयपुर फिर बस गया। विजयपुरकी अनाथ प्रजा सनाथ हो गई। विद्वा-नोंके ग्राहक, वीरोंके चाहक और अनाथोंके नाथ आ गये। महा-राजा रणधीरसिंह और विक्रमसिंहके शुष्क तनपिंजरमें उनकी

कीर्तिका यशःपाठ करनेवाले विहंग फिर आ गये। रातदिन प्यास प्यास रटनेवाले पपीहोंकी करुणध्वनि सुनकर मेघोंको दया आ गई। भीषण ग्रीष्मसंतप्तभूमि फिर हरी भरी हो गई। शोकाकुलित अयोध्या रामचन्द्र जानकी और लक्ष्मणके प्रत्यागमनसे हर्षोत्फुल्ल हो गई।

राजमार्गपरसे एक बड़ा भारी जनसमुद्र उत्तरकी ओर उमड़ा जा रहा है। शंख, घंटा, तुरही, भेरी, दुदुंभी, आदि नाना प्रकारके बाजोंका अपार नाद हो रहा है। हाथी घोड़ों और रथ पालकियोंके मारे मार्ग चलना कठिन दिखता है। बन्दीजन विरद गायन करते जाते हैं। आगे आगे प्रधान मंत्री आदि राज्यकर्मचारी और नगरके धनिक जा रहे हैं।

थोड़ी देरमें यह महासमुद्र अपने रंगविरंगे वस्त्रोंकी लहरोंसे लहराता हुआ, कोलाहल स्वरूप शब्द करता हुआ उस उद्यानके समीप पहुँचा, जहां जयदेव भूपसिंह और सुशीलाके ठहरनेकी खबर सुनी थी। यह उद्यान विजयपुरसे अनुमान २ मील उत्तरकी ओर है। छोटा परन्तु बड़ा ही मनोरम है। विजयपुरके सैकड़ों विनोदप्रिय जीव यहा जी बहलानेको आया करते हैं। उद्यानके बीचमें एक छोटासा सरोवर है, जिनके चारों ओर सीढ़ियोंसे बंध हुआ पक्का घाट है। एक ओर एक छोटीसी दालान है। वर्षाके दिनोंमें प्रायः लोग उसीमें बैठकर विश्राम पाते है।

उसी दालानमें इस समय एक बड़ा ही मनोवेधक करुणापूर्ण दृश्य उपस्थित है। महाराज रणधीरसिंह भूपसिंहको छातीसे लगाये

हुए अचेत हैं, भूपसिंह अचेत हैं, श्रीचंद्र अचेत हैं, विद्यादेवी अचेत है, दोनोंके चरणोंसे लपटा हुआ जयदेव अचेत है, विनयचन्द अचेत है, विक्रमसिंह अचेत है और उनकी गोदमें सिर रक्खे हुए सुशीला अचेत है। दूसरी ओर उद्यानके वृक्ष, वल्लरी, पुष्पमंजरी अचेत हैं, सरोवरका निर्मलजल स्थिर अचेत है और हजारों दर्शक जो उस स्थानको घेरे हुए हैं, सबके सब कठपुतलियोंके समान नीरव निस्तब्ध तथा अचेत हैं। जहां देखो तहां अचेतनताका साम्राज्य है।

थोड़ी देरमें इस गंभीर शान्तिका भंग हुआ। शीतल जलसिंचनसे उन सबकी मूर्च्छा दूर हुई और साथ ही आक्रन्दन शुरू हो गया। विचित्र रोदन! किसीको विराम नहीं है। रणवीरसिंह रोदन करते हैं, विक्रमसिंह अश्रुधारासे पृथ्वी परिप्लुत कर रहे हैं, जयदेवकी हिचकी बध गई है, भूपसिंह कातर हो उठे हैं, श्रीचन्द आक्रन्दन करते हैं, विद्यादेवी नीरव होकर आसूं बहाती है, सुशीला रोती है दर्शकगणोंकी भी यही दशा है। किसीके मुंहसे एक शब्द भी नहीं निकलता है—सबके सब मौन धारण किये हैं। अपूर्व मूकाभिनय है! विलक्षण दृश्य है! विचित्र शोभा है! इस सुखके समय, इस शुभ सम्मिलनके समय रोदनका इतना कोलाहल क्यों? क्या कोई इसका उत्तर दे सकता है?

सुशीला विद्यादेवीके चरण पकड़े हुए है, रणवीर भूपसिंहको छातीसे लगाये हुए है, श्रीचन्द जयदेवका आलिंगन कर रहे हैं, पर आक्रन्दन कम नहीं होता। वियोग समयमें संचित हुआ

शोकवारि इस शुभ समयको पाकर हृदय सरोवरके किनारे तोड़कर नयन प्रणालियोंसे प्रवलवेगद्वारा बह रहा है ! परन्तु क्या इस रोदनको शोक कह सकते है ? नहीं। रोदन ही सुख है। चिर-वियोगके पश्चात्, शुभ सम्मिलनके समय रोदन ही सुख है। इस शुभ सम्मिलनका रोदन पृथ्वीका नहीं है, स्वर्गका है। यह आक्रन्दन लवणाक्त अश्रुधारा नहीं, किन्तु पवित्र प्रेम रसकी स्वर्गीय सुधाधारा है। इस प्रेमगंगाके जलमें जिन्होंने कभी अवगाहन किया है, वे धन्य हैं।

कुछ समयके पश्चात् आक्रन्दन कम हुआ। जयदेवने महाराज रणवीरसिंहको और विक्रमसिंहको नमस्कार किया। भूपसिंहने श्रीचन्द्र को तथा विलासपुर नरेशको नमस्कार किया और सुशीलाने तीनोंको प्रणाम किया। सबने यथायोग्य आशीर्वाद दिया। साथ ही वन्दीजनोंने उच्च कण्ठसे गाया, "**जियै यह रामलखनकी जोरी, संगमें सीता वयस किशोरी।**"

इसके पश्चात् ही मंत्री आदि सब लोग आ गये। भूपसिंह और जयदेव सबसे योग्यतानुसार मिले, और किसीको कुशलप्रश्नसे किसीको मिष्टभाषणसे, किसीको मन्दमुसक्यानसे तथा किसीको दृष्टिनिक्षेप मात्रसे ही प्रसन्न करते हुए विजयपुरकी ओर चलने लगे। पीछे २ वह विस्तृत-जन-सागर लहराता हुआ तथा आनन्द कलरव करता हुआ चला। मंत्री आदिने बहुत कुछ कहा कि आप लोग हाथियों पर, घोड़ोंपर अथवा रथपर जावें, परन्तु ऐसा करनेके लिये वे राजी न हुए, और पैदल ही चलनेमें प्रसन्न हुए।

उस समय रणवीरसिंह विक्रमसिंह तथा श्रीचन्द्रकी हर्षके मारे कुछ विलक्षण ही दशा हो गई थी। उस समय वे अपने आपको विस्मृत थे। पगड़ी थी, तो जूते नहीं थे। दुपट्टा था, तो पगड़ी नहीं थी। दूसरे आभूषणोंको तो पूछता ही कौन है? कभी सबके आगे चलने लगते थे, कभी सबसे पीछे हो जाते थे। कभी जयदेवको भूपसिंह कहते थे, और कभी भूपसिंहको जयदेव।

थोड़ी देरमें नगरप्रवेश हुआ। छज्जोंपर बैठी हुई कुलवधुओंने भूपसिंह जयदेव और सुशीलापर पीत अक्षतों और मांगलिक पुष्पोंकी वृष्टि की, बालिकाओंने हँसकर, मुग्धाओंने मुसक्याकर, प्रौढ़ाओंने हर्षके आंसू डालकर, और वृद्धाओंने आशीर्वाद देकर उन तीनों महाभाग्योंका सत्कार किया। अनेक मृगनयनी, गृहलक्ष्मियोंने प्रफुल्लित पंकजके समान दृष्टिनिक्षेपसे आरती उतारी। अनेक चन्द्रमुखी महिलाओंने अपनी मन्दहासयुक्त मुखप्रभासे अभिषेक किया, और अनेक वीणाविनिन्दितकंठवाली युवतियोंने आगमनबधाईका मनोरम गीत गाकर आह्वान किया।

राजमहलके द्वारपर अनेक सौभाग्यवती स्त्रिया जलपूर्ण सुवर्णघट लिये हुए जिनपर कि घृतके दीपक जल रहे हैं, खड़ी हैं और परमाल्हादके करनेवाले मंगलगीत गा रही है। वहा पहुंचते ही भूपसिंह जयदेव तथा सुशीलाकी मंगल आरती उतारी गई। इसके पश्चात् और भी जो राजकीय रीतिया थी, उनकी पूर्ति की गई। राज्यके सम्पूर्ण सेवकोंको तथा बन्दीजनोंको भरपूर पारितोषिक बांटा गया। ब्राह्मणोंको, विद्वानोंको इच्छित दक्षिणा दी गई। उसी समय एक दरवार किया

और सम्पूर्ण आगत पुरुषोंका ताम्बूलादिसे सत्कार करके हर्ष प्रकाशित किया गया।

उस दिन महाराज रणधीरसिंह तथा विक्रमसिंहने जयदेव तथा सुशीलाको राजमहलमें ही रक्खा। श्रीचन्द, विद्यादेवी तथा विनयचन्द्र भी वहीं रहे। वह दिन बड़े ही आनन्दसे व्यतीत हुआ—सारा नगर सुखसागरमें आन्दोलित होता रहा।

दूसरे दिन श्रीचन्दजी जयदेव सुशीलाको अपने घर लिवा ले गये। उस दिन जौहरी श्रीचन्दने भी अपनी शक्तिभर उत्सव करनेमें कोई कसर नहीं रक्खी।

परिशिष्ट

जयदेव भूपसिंहादिकी दुःखरजनी समाप्त हो गई। सौख्य सूर्यका सुहावना उदय हो गया। विजयपुर राज्यकी पंकजप्रजा उस अपूर्व प्रकाशसे प्रफुल्लित हो गई। उधर विलासपुर भी उसी दिन सुशीलादि के आगमन समाचार सुनकर उत्सवमय बन गया।

जयदेवकी सम्मतिसे महाराजा रणवीरसिंहने सुवर्णपुर नरेशके समीप अपने एक मंत्रीको यह समाचार लेकर भेजाकि भूपसिंह मेरे पुत्र है। वे प्रसन्नतासे विजयपुरमें आ पहुंचे है। आप किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करें। यह समाचार फैलते ही सुवर्णपुर भी हर्षोल्लसित हो उठा। महाराज विजयसिंह बड़े भारी ठाठवाटके साथ मदनमालतीको साथ लेकर विजयपुर आये और अपने सम्बन्धियों के सत्कारसे संतुष्ट हुए। मदनमालती अपने प्राणनाथको पाकर

प्रमुदित हो गई। पुत्रवधूके सहित भूपसिंहको देखकर, महाराज रणवीरसिंहके नेत्र शीतल हो गये।

महाराज विक्रमसिंहकी तथा बलवन्तसिंहकी इच्छा थी कि उदयसिंह तथा बलवन्तसिंहको समुचित दंड दिया जावे। परंतु दयावान जयदेव और वीर्यवान भूपसिंहके आग्रहसे वे दोनों सर्वथा क्षमा करके छोड़ दिये गये। एक मंत्रीने कहा था कि शत्रुओंको उनके अपराधका दंड दिये बिना छोड़नेसे वे फिर उपद्रव करते हैं, इसलिये उन्हें छुछे कभी नहीं छोड़ना चाहिये। इसपर भूपसिंहने कहा था कि यदि उदयसिंह फिर सिर उठावेंगे, तो कुछ हर्ज नहीं है, लोगोंके बलका भी अभ्यास होता रहेगा। हमारे शूरवीरोंकी तलवारोंपर जंग तो नहीं चढ़ेगी?

महाराज निहालसिंह (उदयसिंहके पिता) को अपने पुत्रके उक्त काले कृत्योंको सुनकर बहुत दुःख हुआ। उन्होंने आज्ञा जारी कर दी कि उदयसिंह और बलवन्त हमारे राज्य भरमें कहीं आश्रय न पावें।

सूर्यपुरकी मालिनको बुलाकर बहुतसा पारितोषिक दिया गया और विजयपुरमें ही सदाके लिये उसकी जीविकाका प्रबंध कर दिया गया।

जिस समय रेवतीने योगीका वेष धारण किया था और बलदेव-सिंह उसका शिष्य बना था, उसी समय उन दोनोंके हृदयमें स्नेहने अपना स्थान बना लिया था। यह बात किसी प्रकारसे महाराज रणवीरसिंहके कानो तक पहुंच गई। इसलिये उन्होंने

प्रसन्नताके साथ उन दोनोंको सदाके लिये स्नेहबंधनमें बांध दिया। विवाहके पश्चात् एक दिन रेवतीके आनेपर सुशीलाने मुसुकुराते हुए पूछा, आइये ठकुराइनजी! कहिये आपके शिष्य महाशय तो प्रसन्न हैं? रेवतीने चटसे उत्तर दिया, जी! आपकी मालतीजीकी कृपा चाहिये, फिर अप्रसन्नताका क्या काम है?

हीरालालकी स्त्री सुभद्राको एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। गुणवती सुभद्राने बहुत उत्तम रीतिसे लालन पालन करके उसको बड़ा किया। ४–६ वर्षका होनेपर उसकी शिक्षा दीक्षापर कंचनपुर नरेश स्वयं देखरेख रखने लगे। पश्चात् समर्थ होनेपर रतनचन्दकी दूकानका वह स्वामी बनाया गया। सुभद्राने पुत्रकी चिन्तासे निर्वृत्त होकर एक बुद्धिशालिनी अर्यिकाके निकट जिनदीक्षा ले ली।

जयदेवके चले आनेपर कंचनपुर नरेशने रतनचन्दके दानद्रव्यसे एक पाठशाला खोल दी और अच्छे २ विद्वान् अध्यापकोंकी उसमें नियुक्ति कर दी। प्रतिज्ञानुसार कई वर्षके बाद जयदेवने कंचनपुर नरेशसे जाकर भेंट की, और श्रीरतनचन्द पाठशालाका अवलोकन करके संतोष प्रगट किया। कंचनपुर नरेशने जयदेवको स्नेहवश बहुत दिन तक अपने यहां रक्खा।

कुछ दिनमें भूपसिंह और जयदेवको एक २ पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। बड़े आनन्दसे उनके जीवनके दिन अतिवाहित होने लगे। महाराज रणवीरसिंह और जौहरी श्रीचन्द्र पौत्रोंके मुख देख देख कर स्वर्ग सुखोंका अनुभवन करने लगे।

रतनचन्द दीक्षित हो गये। उनका दीक्षानाम "श्रीविमलकीर्तिमुनि" रक्खा गया। गुरुके पास विद्याभ्यास करके कुछ दिनोंमें उन्होंने असाधारण विद्वत्ता प्राप्त कर ली। तपस्या करनेमें भी वे अद्वितीय हो गये। इन्द्रियोंका—विषयलालसाओंका उन्होंने खूब दमन किया। अन्तरंग और बहिरंग तपके शृंगारसे भूषित होकर वे संघके साथ विहार करने लगे। और अपने अपूर्व उपदेशामृतके सेचनसे चिरसंतप्त प्राणियोंके चित्तोंको शान्तिता प्रदान करने लगे। "मैं अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य और अनन्तसुखका स्वामी शुद्ध चिदानन्दस्वरूप हूं। इस शरीरसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। यह पर है। मेरी इसके साथ एकता नहीं हो सकती।" इस भावनाको छोड़के उनका चित्त दूसरी ओर कभी नहीं जाता था।

जयदेव सरस्वती पाठशालाका निरीक्षण करनेके लिये विलासपुर गये थे। महाराज विक्रमसिंहने उन्हें बुला भेजा था। और उसी समय श्रीविमलकीर्तिमुनिका भी अचानक आगमन हुआ था। उस दिन महाराज उनके दर्शनके लिये गये थे कि, मुनिराजके व्याख्यानसे हृदयपटपर संसारका भयानक चित्र खिंच गया। लौटके घर आनेपर भी वे उस चित्रको हृदयसे दूर नहीं कर सके। आखिर अपने राज्यका सम्पूर्ण भार जयदेवको सौंप करके वे दूसरे ही दिन दीक्षित हो गये। महाराणी मदनवेगा भी अपने पतिकी अनुगामिनी हो गई।

उधर विजयपुरमें यह खबर सुनकर महाराज रणवीरसिंह और श्रीचन्द्रको भी वैराग्य उत्पन्न हुआ। इसलिये वे भी अपने गृहका

सम्पूर्ण भार भूपसिंह और जयदेवको सौंप करके दीक्षित हो गये। विद्यादेवीने भी एक अर्यिकाके निकट अर्यिकाके व्रत ग्रहण कर लिये।

इस लोक सम्बन्धी सम्पूर्ण सुखोंको भोग करके जो लोग परलोक के लिये भी यहीं प्रयत्न कर लेते हैं, उनके समान भाग्यशाली और बुद्धिवान् कौन है?

समाप्तोऽयं सुशीलाउपन्यासः।